औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति

डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उ.प्र.)

की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशिका

डॉ. शुभलक्ष्मी श्रीवास्तवा

एसोसियेट प्रोफेसर

मध्यकालीन इतिहास विभाग

शोध छात्र

दुर्गा दत्त त्रिपाठी

एम.ए.

कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान

सुलतानपुर (उ.प्र.) - 228 118

2010

समर्पण

मातृत्व स्नेह

की

जीवन्त प्रतिमूर्ति

डॉ. (श्रीमती) शुभलक्ष्मी श्रीवास्तवा

व

आदरणीय माता जी श्रीमती चन्द्रावती त्रिपाठी

एवं

पिता जी श्री सियाराम त्रिपाठी

को

सादर समर्पित !

कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान

प्रत्यायन परिषद 'नैक' द्वारा 'बी श्रेणी' में मूल्यांकित

सुलतानपुर (उ.प्र.) - 228 118 दूरभाष : 05362-240854

website : knmt.org.in e-mail: knipss_sln@rediffmail.com, knipss_sln@yahoo.com

शुभलक्ष्मी श्रीवास्तवा

सियेट प्रोफेसर

कालीन इतिहास विभाग

आवास

517/5, लाल डिग्गी, सिविल लाइन्स

सुलतानपुर (उ.प्र.) – 228 001

मोबाइल : 05362–240040

ांक

दिनांक ....

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री दुर्गा दत्त त्रिपाठी ने मेरे पर्यवेक्षण में शोध शीर्षक 'औरंगजेब शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति' पर अपना शोध प्रबन्ध सम्पादित किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सर्वथा मौलिक, आलोचनात्मक एवं स्तरीय है। जिसमें औरंगजेब की सकीय कृत्यों पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्धन औरंगजेब की नीतियों, मान्यताओं र उसके विचारों को समझने का अभिनव प्रयास है।

मैं श्री त्रिपाठी के प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पी–एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत करने के लिए अपनी ुमति प्रदान करती हूँ।

(डॉ. शुभलक्ष्मी श्रीवास्तवा)

शोध निर्देशिका

[redacted]
प्रत्यायन परिषद 'नैक' द्वारा 'बी श्रेणी' में मूल्यांकित
सुलतानपुर (उ.प्र.)– 228118 दूरभाष : 05362– 240854
website : knmt.org.in e-mail : knipss_sln@rediffmail.com, knipss_sln@yahoo.com

सेवा में,
कुल सचिव
डा. रा.म.लो. अ.वि.वि.
फैजाबाद (उ.प्र.)

पत्रांक   दिनांक 03-12-2010

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि दुर्गा दत्त त्रिपाठी, डा. शुभ लक्ष्मी श्रीवास्तव के निर्देशन में शोध शीर्षक '**औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति**' पर अपना शोध प्रबन्ध सम्पादित किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सर्वथा मौलिक, आलोचनात्मक एवं स्तरीय है। जिसमें औरंगजेग की शासकीय कृत्यों पर प्रकाश डाला गया है।

मैं श्री त्रिपाठी के प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत करने के लिए अपने संस्तुति प्रदान करता हूँ।

प्राचार्य

के.एन.आई.पी.एस.एस.
सुलतानपुर (उ.प्र.)

Principal
Kamla Nehru Institute of
Physical & Social Sciences
SULTANPUR

3/12/10

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति मध्यकालीन भारतीय इतिहास का एक सम्पूर्ण अंग है। इस शोध शीर्षक पर कार्य करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य– औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की क्या स्थिति थी– इस पर प्रकाश डालना है। इस शोध प्रबन्ध के लेखन में मैंने औरंगजेब के व्यक्तित्व से सम्बन्धित घटनाओं को अत्यन्त रूचिपूर्ण ढ़ंग से वर्णित करने का प्रयास किया है। जिसमें पक्षपात नही किया गया है, यद्यपि औरंगजेब पर अनेकों साहित्य लिखे गये हैं तथा मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सबसे विवादस्पद शासक के रूप में स्वीकार किया गया है। औरंगजेब एक धर्मपरायण मुसलमान था तथा तत्कालीन मुस्लिम वर्ग के कट्टरपंथी वर्ग का समर्थन भी उसे प्राप्त था। अपनी राजनैतिक लाभ की पूर्ति के लिए औरंगजेब ने कट्टर मुस्लिम वर्ग को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। इस तथ्य को सभी इतिहासकार एक मत से स्वीकार करते हैं परन्तु एक साम्राज्यवादी एवं धर्मनिरपेक्ष शासक जिसने अपने शासनकाल में ऊँचे से ऊँचे मनसबे हिन्दुओं को प्रदान किया। इस रूप में उस पर विस्तृत शोध कार्य इस शीर्षक से सम्बन्धित सम्पन्न नही हुआ है,

जिसकी वर्तमान में आवश्यकता है जिससे औरंगजेब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर नये सिरे से प्रकाश डाला जा सके।

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान तथा सुन्नी जगत में जिन्दा पीर के नाम से जाना जाता था। फैज की टोपियों को सिलकर एवं कुरान की कापियों को हस्तानान्तरण करके जीवन का संचालन करता था। औरंगजेब कहता है कि "मेरे बेटे! मेरे जनाजे में राजकोष का एक भी पैसा नही खर्च किया जाय क्योंकि ये हिन्दुस्तान की महान जनता का है। फैज की टोपियों एवं आयतों से प्राप्त पैसों से किया जाए, हिन्दुस्तान की जनता मुझे माफ करना क्योंकि मैं जो करना चाहता था न कर सका।" प्रस्तुत शोघ शीर्षक पर कार्य करने की प्रेरणा चुनौती पूर्ण ही नही वरन् विवादों को जन्म देने वाला भी है।

औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति को समग्र रूप से प्रस्तुत करने के लिए मैनें प्राथमिक एवं द्वितीय स्रोतों का अध्ययन किया, जिसमें उसने अपने मृत्यु के बाद दफनाने के बारे में वर्णन किया है। समकालीन इतिहासकार खाफी खां अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "मुन्तखब-उल-लुबान" में लिखता है कि गद्दी पर आसीन होने के पश्चात औरंगजेब ने अस्सी करों को समाप्त कर दिया। वेश्याओं को निर्देश दिया कि वेश्यावृत्ति छोड़ कर विवाह कर लें या साम्राज्य छोड़ दें।

बादशाह औरंगजेब वीणा का अत्यधिक विद्वान था फिर भी उसने संगीत पर प्रतिबन्ध लगाया, क्यो? क्योंकि उसे उलेमा वर्ग को खुश करना था। फिर भी औरंगजेब के ही शासनकाल में सबसे अधिक संगीत का विकास हुआ। उसके राजनीतिक तथा सामाजिक विचार की जानकारी हमें उपरोक्त ग्रन्थ से हुई।

औरंगजेब के व्यक्तित्व व घटनाओं से सम्बन्धित कुछ प्रमुख शोध कार्य और भी उपलब्ध है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (इस्लामिक स्ट्टीड सेन्टर) में अनेक व व्यक्तित्व से सम्बन्धित रचना कार्य निरन्तर होते रहते हैं। बीते कुछ वर्षों से औरंगजेब के व्यक्तित्व पर पुर्नमूल्यांकन होने लगा है जिससे कुछ नये तथ्य उभर कर सामने आये बीजापुर तथा गोलकुण्डा का मुगल साम्राज्य में संयोजन कर उसने अकबर महान की दक्षिणी नीति के स्वप्न को ही साकार किया था। साम्राज्यवादी नीति से प्रेरित होकर वह सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित करना चाहता था। जिसके लिए उसने जीवन–पर्यन्त संघर्ष किया था। इतिहासकारों तथा दुष्प्रचार व अध्ययन की कमी के कारण उसको पहचानने में अक्सर लेखकों व शोधार्थियों ने भूल की है। मेरा उद्देश्य औरंगजेब के राजनीतिक जीवन तथा उसके क्रियाकलापों का संतुलित विश्लेषण करके मुगल साम्राज्य में उसकी भूमिका व सक्रिय योगदान का

मूल्यांकन करना है। मेरा मानना है कि औरंगजेब जैसे व्यक्तित्व पर गहन अध्ययन व समुचित शोध आवश्यक है। मराठे राजपूत तथा सिक्ख उसके साम्राज्यवादी उद्देश्य की पूर्ति में प्रमुख बाधक थे क्योंकि वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना चाहते थे। यदि औरंगजेब उनमें से किसी एक की स्वतन्त्रता सत्ता को स्वीकार कर लेता तो इसका अभिप्राय मुगल साम्राज्य के अर्न्तगत एक दूसरे साम्राज्य के अस्तित्व को मान्यता प्रदान करना था। यही कारण था कि औरंगजेब साम्राज्य के अर्न्तगत विघटनकारी शक्तियों के दमन के लिए दृढ़ संकल्प रहा। किन्तु कुछ इतिहासकारों ने उसके इस कार्य को धार्मिक रंग देने का प्रयास किया है। जो तर्क संगत नही प्रतीक होता है। वास्तव में औरंगजेब के शासनकाल में मराठों, राजपूतों, सिक्खों, जाटों सतनामियों तथा रूहेलों के जो व्रिदोह हुए उनकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक स्वरूप आर्थिक कारण ही प्रवल थे। परन्तु बढ़ते समय व परिस्थितियों को देखते हुए वह अस्वीकार नही किया जा सकता है कि औरंगजेब की दक्षिणी नीति के भावी परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुए।

सम्भवतः शोध कार्य एक सहयोगात्मक प्रक्रिया है। यह शोध प्रबन्ध भी अपवाद नही है। सर्वप्रथम मैं अपनी शोध निर्देशिका परम श्रद्धेया **डॉ.(श्रीमती) शुभलक्ष्मी श्रीवास्तवा** *एसोसियेट प्रोफेसर, मध्यकालीन इतिहा*

विभाग, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर के प्रति श्रद्धा प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। जिनके कारण मैं इस कठिन शीर्षक पर अपना शोध प्रबन्ध तैयार कर सका। जिनके स्नेह की मुझ पर निरन्तर वर्षा होती रही। अपने व्यस्ततम समय में से कुछ क्षण निकाल कर वे मेरा मार्ग दर्शन करते हुए शोध शीर्षक से सम्बन्धित उचित जानकारी समय–समय पर देती रही, जिसके लिए मैं हृदय से अनकी आभारी हूँ।

मैं कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान के प्राचार्य **डॉ. गुनराज प्रसाद जी** का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिन्होनें इस शोध हेतु आवश्यक दिशा निर्देश प्रदान किया।

मैं कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान के कला संकाय के प्रमुख एवं अर्थशास्त्र विभाग के विभागाध्यक्ष **डॉ. पी.. एन. श्रीवास्तव जी** का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपना विद्वतापूर्ण परामर्श और कीमती समय देकर मेरा समय–समय पर मार्गदशर्न किया।

मै अपने **पूज्य पिता श्री सियाराम त्रिपाठी, माता श्रीमती चन्द्रावती त्रिपाठी जी** का विशेष आभार व्यक्त करना चाहूँगा। जिन्होनें इस शोध कार्य को पूर्ण करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मेरी **बड़ी बहन श्रीमती सीमा त्रिपाठी** एवं उनके पति **श्री राकेश त्रिपाठी** एवं **छोटी बहन**

डॉ. रीना त्रिपाठी और उनके पति **श्री दिनेश त्रिपाठी** का विशेष आभारी हूँ जिन्होनें समय– समय पर अपना उचित परामर्श और स्नेह प्रदान किया। इस क्रम में मैं अपने **छोटे भाई ब्रह्मदत्त त्रिपाठी और उनकी पत्नी श्रीमती प्रतिभा त्रिपाठी** का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिन्होंने मुझे घर के कार्य से मुक्त रखा ताकि मैं समय पर अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण कर सकूँ। मैं अपनी **पत्नी श्रीमती सुमन त्रिपाठी** का विशेष आभार व्यक्त करना चाहूँगा जो मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मानसिक रूप सदैव प्रोत्साहित करती रही और मेरी प्रेरणास्रोत सदैव बनी रही। मेरे **पुत्रगण उत्कर्ष और उत्सव** भी मेरे प्रेरणा स्रोत इसलिए बने रहे क्योंकि जिससे इनके उज्ज्वल भविष्य के लिए मैं सदैव प्रयत्नशील रहूँ।

मैं **डॉ. अशोक कुमार श्रीवास्तव जी** *(विभागाध्यक्ष– इतिहास विभाग, पं. दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)* का भी विशेष आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिन्होनें अपना कीमती समय निकाल कर इस शोध का कार्य का पूर्ण कराने में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया।

मैं **डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह** *प्रवक्ता मध्यकालीन इतिहास विभाग* के प्रति भी आभारी हूँ। जिन्होंने ने मेरे शोध प्रबन्ध का अधोपान्त पढ़ा और वस्तु सम्बन्धी सुझाव मिले। मैं उनके बहुमूल्य सुझावों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनके प्रयास से ही यह शोधकार्य सर्वथा त्रुटिरहित हो सका।

मैं अपने शोध कार्य स्थल कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान के केन्द्रीय पुस्तकालय के **पुस्तकालयाध्यक्ष श्री ज्ञानचन्द्र यादव जी** से भी अपने शोध कार्य के सम्बन्ध में चर्चायें करता रहा हूँ।

अपने शोध शीर्षक से सम्बन्धित शोध सामग्री के लिए मैं खुदाबख्श लाइब्रेरी पटना, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, कमारकल पुस्तकालय एवं गाँधी शोध संस्थान, राजघाट से भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त की। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय से शोध सामग्री प्राप्त की। मैं अपने शोध कार्य के दौरान भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के लाइब्रेरी, जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालय और संग्राहलय भारतीय केन्द्रीय अभिलेखागार, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय मिलती विश्वविद्यालय और इन्दिरा गाँधी मानव कला केन्द्र में जाता रहा और शोध से सम्बन्धित विषयों पर पुस्तकालयाध्क्ष महोदयों से भी विचार विमर्श करता रहा हूँ।

इस सब के सहयोग से मैं आरम्भ में अन्त तक इस शोध कार्य को पूरा करने में मैं अपने आपको असमर्थ महसूस करता हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य को पूरा करने में विशेष सहयोग दिया।

प्रबन्ध को कम्प्यूटरीकृत टंकण कर शोध पुस्तिका का मूर्त रूप दिया।

भारतीय मध्यकालीन मुगल शासकों में औरंगजेब का प्रमुख स्थान है। वह आकर्षक व्यक्तित्व का धनी होने के साथ– साथ अत्यन्त बुद्धिशील भी था। मुगल बादशाहों में उसकी तुलना अकबर से की जाती है। औरंगजेब अपनी धर्मान्धता और इस्लामिक कट्टरता के लिए जाना जाता है परन्तु वास्तव में ऐसा नही, बल्कि इतिहासकारों और विद्वानों ने उसे उस रूप में महिमामण्डित कर दिया। औरंगजेब ने अपनी धार्मिक नीति में हिन्दुओं की बहुत सी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने का आदेश दिया और दक्षिण भारत के कुछ मंदिरों के जीर्णोद्धार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की। इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति किसी भी दृष्टि से मुसलमानों से सुदृढ़ एवं मजबूत नही थी। यदि हम औरंगजेब के कार्यों का अवलोकन करें तो वह एक योग्य प्रशासक, कुशल सेनानायक, सफल कूटनीतिज्ञ एवं विद्वान के रूप में प्रकट होता है। सिंहासन पर आसीन होने के बाद औरंगजेब ने अस्सी करों को समाप्त कर दिया। उसने तीर्थयात्रा कर तथा मेलों से वसूल किये जाने वाले करों को भी समाप्त कर दिया था। उसने वेश्याओं को आदेश दिया कि वे वेश्यावृति छोड़ कर कर विवाह कर लें अन्यथा मेरे

साम्राज्य को छोड़ दें। इसी के साथ ही उसने सती प्रथा तथा दास व्यापार को भी निषिद्ध घोषित कर दिया।

औरंगजेब अपने साम्राज्य के अन्तर्गत विघटनकारी शक्तियों के दमन के लिए दृढ़ संकल्पित था। उसके शासनकाल में मराठों, राजपूतों, सिक्खों, नटों, सतनामियों तथा रूहेलों के जो अनेक विद्रोह हुए उनकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक एवं आर्थिक कारण ही प्रमुख थे। बीजापुर तथा गोलकुण्डा का मुगल साम्राज्य में संयोजन कर उसने अकबर महान की दक्षिणी–नीति के स्वप्न को साकार किया। साम्राज्यवादी नीति से ही प्रेरित होकर वह सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित करना चाहता था। जजियाकर का कोई सम्बन्ध औरंगजेब की तथाकथित हिन्दू विरोधी धार्मिक नीति से नही था। स्पष्टतया जजियाकर के पीछे आर्थिक समस्या के समाधान का पक्ष अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त औरंगजेब ने भले ही जजियाकर घोषित किया था, लेकिन जजियाकर की राशि स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों से न्यूनतम वसूल किया जाता था। यह धार्मिक कर नही था, अपितु प्रशासनिक, राजनैतिक, आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप लगाया जाने वाला कर था। औरंगजेब पर लगाया गया यह आरोप कि उसने धर्मान्धतावश जजिया लगाया था, पूर्णतः अतार्कित सिद्ध होता है।

औरंगजेब के सम्बन्ध में विद्वानों एवम मनीषियों तथा इतिहासविदों ने प्रमुख गम्भीर आरोप लगाया है कि औरंगजेब ने धर्मान्धतावश हिन्दुओं को उच्च पद मनसब तथा सम्मान न प्रदान कर सदैव मुसलमानों को ही उच्च मनसब प्रदान किया तथा उन्हे ही उच्च पदों पर नियुक्त किया। किन्तु जब इस आरोप की सत्यता की जाँच करते हैं और ऐतिहासिक तथ्यों तथा विवरणों का विवेचना करते हैं तो यह आरोप पूर्णतः असत्य सिद्ध होता है। इस आरोप का आशय औरंगजेब जैसे महान शासक के प्रति उसकी धर्म निरपेक्षता के प्रति इतना अन्याय पूर्ण और इतना घटिया किस्म का है कि जिसकी जितनी भी निन्दा की जाय उतना ही कम होगी। औरंगजेब ने न केवल हिन्दुओं को उच्च पद प्रदान किये बल्कि मुगल साम्राज्य का सर्वोच्च पद गवर्नर का भी प्रदान किया था। जो अधिकतर मुस्लिम राजकुमारों को ही प्रदान किये जाते थे। यही नही बल्कि औरंगजेब ने अनेक हिन्दुओं को उच्चाधिकारी तथा विभागाध्यक्ष बनाया। समान्यतः वित्त विभाग, लेखा विभाग, राजस्व विभाग हिन्दू कर्मचारियों से भरा पड़ा था। सूरत से प्रसिद्ध व्यापारी नगर का प्रबंधक एक हिन्दू हरीराम को ही औरंगजेब ने बनाया था। दीवान राजा रघुनाथ ने वित्त विभाग में कार्य करके 3000 जाट तथा 700 सवार का मनसब प्राप्त किया। इस प्रकार न जाने कितने हिन्दू अधिकारियों ने साधारण पदों पर कार्य करते हुए प्रगति की ओर शीघ्र ही

सेना का हराबल दस्ता (अग्रिम पंक्ति) ही राजपूतों का था। इसके अतिरिक्त औरंगजेब ने राजपूतों को गर्वनर बनाया। जबकि अकबर के काल से लेकर औरंगजेब के राज्यारोहण तक राजा मान सिंह के बाद कोई भी हिन्दू गवर्नर नही बन सका, जबकि औरंगजेब के काल में दो–दो राजपूत गवर्नर (मिर्जा राजा जयसिंह तथा महाराजा जसवंत सिंह) थे। क्या इससे भी अधिक धर्म निरपेक्षता का प्रमाण और कोई हो सकता है? इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध पर्यटक यात्री वर्नियर सन् 1665 ई. तक आंगरे में रहा वह लिखता है कि ''यद्यपि महान मुगल बादशाह औरंगजेब मुसलमान है और वह हिन्दुओं का शत्रु है लेकिन फिर भी वह सदैव हिन्दू राजाओं को बहुत अधिक संख्या में अपने साथ रखता है तथा उन लोगों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करता था जैसा कि वह अन्य अमीरों के साथ करता था। औरंगजेब के शासन काल में हिन्दू मुस्लिम एकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह था। कि हिन्दू अधिकारी की सिफारिश पर मुसलमानों को मनसब प्रदान किये और मुसलमानों की सिफारिस पर मुस्लिमों की पदोन्नति की गई एव मनसब दिये गये। यह हिन्दू मुस्लिम एकता का

औरंगजेब पर एक बहुत ही गम्भीर आरोप यह लगाया जाता है कि वह न केवल हिन्दू धर्म का विरोधी था बल्कि हिन्दी भाषा से भी घृणा करता था। वह लतीफों चुटकुल्लों तथा कविताओं का भी कट्टर विरोधी था, परन्तु औरंगजेब के समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों का ध्यान पूर्वक विश्लेषण एवं विवेचना किया जाय तो उपरोक्त आरोप अन्य आरोपों की भाँति सर्वथा अत्यन्त एवं भ्रामक सिद्ध होतें हैं। इसमें कोई सन्देह नही है कि औरंगजेब अरबी, फरसी तथा तुर्की भाषाओं का विद्वान था। किन्तु इसके साथ ही उसे हिन्दी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। यही नही उसने अपने पुत्र–पुत्रियों के लिए भी हिन्दी सीखने की विशेष व्यवस्था कर रखी थी। उसकी पुत्री जेबुन्निसा फारसी की उच्चकोटि की कवियत्री थी परन्तु वह हिन्दी भाषा में भी कविताएं क़रती थी। 'नयन विलास' पुस्तक जेबून्निसा की हिन्दी कविताओं का अनुपम संग्रह है। जिसकी प्रशंसा स्वयं औरंगजेब अपने एक दोहे से करता है, जो इस प्रकार है –

जेबुन्निसा जहाँ में दुखतरे आलमगिरी।
नयन विलास, विलास में खास करी तहरीर।।

के शासनकाल में हिन्दुओं की स्थिति को उजागर करना और उसके सम्बन्ध में विदेशी लेखकों व इतिहासकारों ने जो आलोचना व निन्दा की है, उस आलोचना के पीछे छिपे औरंगजेब के महान त्याग व धर्म निरपेक्षा की सभी के सम्मुख लाना है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मैनें अपने शोध प्रबन्ध को छः अध्याय में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में औरंगजेब के शासन से पूर्व की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। औरंगजेब के शासनकाल से पूर्व हिन्दू समाज ज्यों का त्यों जातियों व उपजातियों में विभाजित था। मुसलमनों के आगमन के पश्चात् से ही इस समाज के आन्तिरिक ढांचे में कुछ परिवर्तन होने लगे। मुसलमानों का प्रभुत्व बढ़ता गया व क्षत्रियों की पराजय व उनके राज्य समाप्त होने लगे थे। हिन्दू समाज की पुरानी मान्यताऐं व वर्ण व्यवस्था जो समाज का मुख्य आधार थी। क्षत्रिय जो हिन्दुस्तान के शासक थे और नौकरशाही व शासक वर्ग में उनका प्रमुख स्थान था। उनके पतन के उपरान्त की स्थिति उनके सामाजिक एवं वैधानिक अधिकारों एवं उनके सामाजिक प्रभाव में विशेष परिवर्तन हुआ।

जिससे हिन्दू समाज का विशाल वर्ग उस भव सागर को पार करने के लिए और परलोक में सुख से बैठने के लिए आश्रित हो जाए। इस समाज ने छुआ–छूत को अत्यधिक जटिल बना दिया ताकि हिन्दू समाज के बाह्य ढ़ाचें में कोई विशेष परिवर्तन न आ सके इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में औरंगजेब के शासन काल में हिन्दूओं और मुसलमानों के मध्य सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। औरंगजेब ने अपने शासन काल में मिर्जा राजा जयसिंह एवं जसवंत सिंह को गवर्नर बनाया था। राजपूतों के कुल राजा, रख, राठौर, सिसोदिया, कछवाहा, हाड़ा, गौड़, चौहान भाला, चन्द्रावत तोमर, बघेला भदौरिया सोलंकी, बुन्देला, शेखावत और हिन्दुस्तान के अन्य लोग जैसे कि घक्खर, लेगाह, खोखर, बलूच जातियों तथा 1000 से 100 तथा 100 से अहदी पदों पर आसीन थे। औरंगजेब जब तक राजा जसवंत सिंह एवं राजा मिर्जा जयसिंह रहे हिन्दुओं के दशहरे के समारोह में भाग लेकर दरबार में उपस्थिति हिन्दू राजाओं को उपहार प्रदान करता था। हिन्दू राजाओं के उदासीन होने पर

जब नया राजा दरबार में उपस्थिति होता था। तो सम्राट उसके मस्तक पर टीका लगाता था। औरंगजेब के शासन काल में हिन्दुओं की भी यही दशा थी। आश्चर्य की बात यह है कि बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू मुसलमान बने परन्तु यह भी सत्य है कि बहुसंख्यक हिन्दुओं ने अनेक प्रलोभनों एवं अत्याचारों के उपरान्त भी अपना धर्म बनाए जाए। हिन्दू एवं मुस्लिम में वे पशु पक्षियों स्त्रियों की मिट्टी की मूर्तियां बच्चों के मनोरंजन के लिए बनायी जाती थी। वृहस्पतिवार को संतों के मकबरों पर दीप जलाया जाता। इत्यादि का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय में औरंगजेब के शासन काल में हिन्दुओं के ऊपर लगाए जाने वाले करों की स्थिति का दर्शाया गया है। मध्यकालीन भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात जकात, जजिया, खराज, खुम्श कर के रूप में वसूल किया था। औरंगजेब ने अपने शासन काल में जजिया दुबारा लगाया था। महिलाएं बच्चे साधू और भिक्षु इस कर से मुक्त थे। मुस्लिम राज्य में गैर मुसलमानों की सम्पति तथा सामान की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेने के लिए वसूल किया जाता था। जजिया कर का सम्बन्ध औरंगजेब की हिन्दू विरोधी धार्मिक नीति से नही था। जजिया–कर के पीछे आर्थिक समस्या के समाधान का पक्ष अत्याधिक महत्वपूर्ण था।

चतुर्थ अध्याय में औरंगजेब के शासन काल में हिन्दू मनसबदारों की स्थिति की चर्चा की गयी है। औरंगजेब ने न केवल हिन्दुओं को उच्च पद प्रदान किया बल्कि उच्च मनसब भी प्रदान किया इसके साथ ही हिन्दुओं को मुगल साम्राज्य का सर्वोच्च पद गवर्नर भी प्रदान किया जो कि अधिकतर राजकुमारों को ही प्रदान किये जाते थे। औरंगजेब के सेना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग हिन्दू जाति के राजपूत ही थे।

पंचम अध्याय में औरंगजेब का हिन्दू रियासतों के बीच संघर्ष का वर्णन किया गया है। औरंगजेब की तुलना एक कुशल सैनिक और कुशल सेनापति के रूप में बाबर और अकबर से की जा सकती है। शारीरिक बल सहनशीलता और स्वभाव की सहिष्णुता उसमें बहुत अधिक थी और घनघोर युद्ध में भी अपने को जोखिम में डालने में नही हिचकिचाता था। युद्ध के समय में भी जुहर को पढ़ने के लिए घोड़े से उतर गया था। वह एक कुशल सम्राट था और अपने शत्रु की भूल और दुर्बलता का लाभ उठता था। षड़यन्त्र और राजनीतिक चालकी से अपने शत्रु को जीतना उसका स्वभाव हो गया था। उसने इसी षड़यन्त्र और चालाकी का प्रयोग सिसौदियां और राठौर राजपूतों के साथ किया था। औरंगजेब के दूषित

... किया कि मेवाड़ के महाराजा अजीत सिंह को संरक्षण एवं मान्यता प्रदान कर उसके पैतृक राज्य मारवाड़ पर अधिकार में सहायता देगें। इसके साथ मेवाड़ पर मुगल आक्रमण होने पर राठौर सामन्त सैनिक सहयोग देंगे तथा दोनों राज्य पारस्परिक सहयोग से तात्कालिक संकट से निबटने का प्रयास करेगें। राठौर सिसौदिया संगठन एवं महाराणा अजीत सिंह को संरक्षण देने के समाचार पाकर औरंगजेब चिन्ता–मुक्ति होना चाहता था अतः अधिक समय शान्तिपूर्वक बैठे रहना साम्राज्य के लिए हानिकारक समझकर उसने मेवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। 16 सितम्बर 1679 में अजमेर पहुँचकर अजमेर को केन्द्र बनाकर मेवाड़ पर विजय प्राप्त करने की योजना तैयार की। इत्यादि का वर्णन किया गया है।

षष्टम अध्याय में औरंगजेब का मूल्यांकन तथा निष्कर्ष का विश्लेषण किया गया है। औरंगजेब का निजी जीवन एक आर्दश था। वह अत्याधिक परिश्रमी और संयमी एव आचार विचारों पर कठोर नियन्त्रण रखता था। उसका योजन और वस्तु सादे थे और उसने कुरान के नियमों के अनुसार विवाह किया था। वह न तो शराब पीता था और न किसी भी इसके

व्यसन में फंसा था। वह जन्म से ही विद्याप्रेमी था। वह फारसी तुर्की और हिन्दी धारा प्रवाह बोल सकता था। इसके साथ पुस्तकों का भी प्रेमी था। यदि उसके व्यक्तिगत जीवन में कुछ दोष था तो यह कि वह महत्वाकांक्षी जिद्दी और धार्मिक विचारों में बहुत संकीर्ण था। एक प्रमुख गम्भीर आरोप यह लगाया है कि वह धर्मान्धतावश ही उच्च पद एवं उच्च मनसब मुसलमानों को ही प्रदान किया था। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों तथा विवरणों का विश्लेषण करते हैं तो यह आरोप पूर्णतः असत्य सिद्ध होता है।

प्रथम अध्याय

हिन्दू जीवन दर्शन और सामाजिक व्यवस्था में धर्म का स्थान

अत्यन्त महत्वपूर्ण है। धर्म व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार की एक संहिता है जो कि उसके कार्यों को व्यवस्थित संयमित एवं नियंत्रित करती है, तथा उसके लिए स्वस्थ एवं उज्जवल जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। महाभारत के अनुशासन पर्व में आचार (सदाचार) को धर्म का लक्ष्य माना गया है।[1] धर्म सभी जीवों की रक्षा करता है। उसके आधार नैतिक नियम एवं सदाचार है। धर्म किसी को क्लेश नही पहुँचाता है, यह लोक–कल्याण करता है। पी.वी. कार्णे ने धर्मशास्त्र स्वपिताओं के बारे में लिखा है–'कि धर्म से उनका तात्पर्य किसी विशेष ईश्वरी मत से नही बल्कि जीवन के ढ़ंग या आचार को संहिता में है, जो स्वयं व्यक्ति के रूप में व्यक्ति के कार्यों एवं क्रियाओं को नियमित या नियंत्रित करती है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति का क्रमबद्ध विकास करके उसे बढ़ाना था।' मनुस्मृति में धर्म के चार स्रोत बनाये गये हैं। श्रृति (वेद), स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे।[2] हिन्दू विचारधारा ने सामान्य धर्म से सम्बन्धित हैं सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, क्षमा, श्रद्धा, मधुर वचन, शील,

---

[1] महाभारत अनुवाद : एम.एन. दत्ता, कलकत्ता, 1895-1905, पृ. 58

[2] मनु स्मृति, अनुवाद : जी. बुहलर, आक्सफोर्ड, 1921, पृ. 123

स्वधर्म और आपदधर्म की गणना की गयी है। हिन्दू धर्म शास्त्रों ने अर्थ की गणना एवं आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। महाभारत में कहा गया है कि अर्थ उच्चतम धर्म है, प्रत्येक कार्य उसी पर निर्भर है। धनी सुखी रह सकते हैं। जिसके पास में अर्थ का साधन नही है वह अपने कर्तव्य का पालन उचित ढंग से नही कर सकता है। अर्थ को काम एवं धर्म का आधार माना गया है। धर्म की स्थापना के लिए अर्थ आवश्यक है क्योंकि उसी से प्राप्त सुविधा द्वारा धार्मिक कार्य सम्पन्न होते हैं। अर्थहीन व्यक्ति सुखी सरिता सदृश्य होते हैं। बृहस्पति ने अर्थ की महत्ता को समझाते हुए कहा है कि अर्थहीन व्यक्ति मृतक या चांडाल के समान होता है।[3] हिन्दू धर्म शक्तियों ने इस बात का उल्लेख किया है कि धन का उपयोग और संग्रह किस प्रकार करना चाहिए जिससे किसी को कष्ट न पहुँचे। जिस प्रकार धन कमाता है और खर्च करता है, उसी के अनुसार इसका लोक एवं परलोक निर्धारित होता है। कहा गया है कि पापपूर्ण साधनों से उपार्जित परलोक निर्धारित होता है कहा गया है कि पापपूर्ण साधनों से

---

[3] नीतिशतक, पृष्ठ सं., 42

का अर्थ केवल इन्द्रिय सुख अथवा यौन प्रवृत्तियों की संतुष्टि नही है, बल्कि उसके अन्तर्गत मनुष्य की सभी इच्छाएं वासनाएं प्रवृत्तियाँ और आसक्ति मूलक वृत्तियाँ आ जाती है। समाज एवं परिवार का उत्कर्ष और एक दूसरे के प्रति आकर्षण काम के द्वारा सम्भव है।[4]

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू समाज के संगठन में वर्ण व्यवस्था एक प्रमुख आधार है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी रूचि, योग्यता और मनःस्थिति के अनुसार किसी भी वर्ण को स्वीकार कर सकता था लेकिन वर्ण व्यवस्था का यह लचीलापन कुछ ही समय बाद उत्तर वैदिक काल में समाप्त हो गया। समय–समय पर विभिन्न वर्ण व्यवस्था कमजोर नही हुई। हिन्दू समाज में यह व्यवस्था आज भी विद्यमान है। जिसमें धर्म का भी समावेश है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों के अनुरूप स्थान प्राप्त होता था। इसमें कर्म का प्रधान स्थान था, और प्रत्येक वर्ण के विशिष्ट कर्तव्य थे। वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति किन परिस्थितियों में किस आधार को लेकर हुई यह प्रश्न विचारणीय है, वर्ण व्यवस्था का विकास

---

[4] अर्थशास्त्र, अनुवाद : आर. पी. काँगले, बंबई, 1960-65, पृ. 332-23

व्यवसायिकता का विशेष ध्यान दिया गया होगा।

प्राचीन धर्म ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति को दैवीय बतलाया गया है। ऋगवेद के पुरूषसूक्त के अनुसार विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, बहु से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र की उत्पत्ति को बताया गया है।[5] वर्ण व्यवस्था अत्यन्त् प्राचीन है और ईश्वर द्वारा निर्धारित की गयी है जो पुरूष सूक्त के इस कथन का प्रतीकात्मक अर्थ भी है कि जिस प्रकार मानव शरीर में मुख, बाहु, जंघा और पैर का महत्व है उसी प्रकार समाज रूपी शरीर विभिन्न अंग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र है ये चारों अन्योआश्रित है। समाज में वर्ण व्यवस्था का अभिप्राय कि किसी भी एक के बिना समाज की स्थिति दैनीय और गंभीर हो सकती है। सम्भवतः वर्ण व्यवस्था को दैवीय इसलिए कहा गया है क्योंकि व्यक्ति उसे तोड़ने का प्रयास न करें।[6] वर्ण व्यवस्था प्रतीकात्मक है जहाँ समाज रूपी शरीर के परिचालन में सभी अंगों का समाज महत्व दिया गया है। वैदिक साहित्य अर्थात चारों वैदिक संहिताओं ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक एवं

---

[5] ऋग्वेद, अनुवाद, : टी. एच. राल्फ ग्रिफिथ, बनारस, 1897, पृ. 253-54

[6] वही, पृष्ठ 302-304

उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था के इस दैवीय उत्पत्ति का विवरण मिलता है। महाभारत में ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तीनों वर्णों के सेवार्थ से शूद्र की उत्पत्ति का वर्णन है।[7] गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि चातुर्वर्ण्य गया पुष्टं, स्मृतियों में भी वर्ण विषयक इस उत्पत्ति की पुष्टि होती है। मनुस्मृति में कहा गया है कि लोकवृद्धि के निर्मित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों को क्रमशः ब्रह्ममा ने अपने मुख, बाहु, जंघा और चरण से उत्पन्न किया है।[8] पुराणों के अन्तर्गत भी वर्णों के उद्भव को ईश्वरी बताया गया है। विष्णु पुराण में विष्णु के मुख, बाहु, जंघा और पैरों से उक्त चारों वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। मत्स्य एवं युवा पुराण में भी इसका उल्लेख है। युवा पुराण में क्षत्रिय को जंघा के स्थान पर ब्रह्मा के वक्ष से उत्पन्न कहा गया है। धर्मशास्त्रो ने वर्ण व्यवस्था को आदिकालीन मानते हुए उसकी उत्पत्ति परम ब्रह्मा से बतायी। यही कारण है कि दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त को परम्परागत सिद्धान्त भी कहा जा सकता है।[9] गीता में वर्ण व्यवस्था का आधार गुण एवं कर्म बताया गया है। व्यक्ति अपने गुणों से महान होता है। ना कि वंश से। गुण कई प्रकार के होते हैं। गीता में प्रकृति के तीन गुण सत्व, रज, तम बतलाया गया है। सत्व

---

[7] महाभारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 423-25

[8] मनुस्मृति, पूर्वोद्धत, पृ. 178-80

[9] वायु पुराण आनन्द शर्मा संस्कृत सिरीज, पूना, 1905, पृ. 90

गुण निर्मल, ज्ञानदायक दोषरहित एवं संसार से निर्लिप्त हैं तथा मनुष्य को सुख एवं ज्ञान को प्राप्ति कराता है। इच्छाओं से उत्पन्न होने वाला गुण तमों गुण सबको भ्रम में डालता है।

तत्च सत्वं निर्मत्वा प्रकाश–कभनाभयम्।

सुख–संगेन बध्नाति ज्ञान संगेन चानध।।

रजोगुण त रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगेन समुद्भवम्।

तत्रि बहनाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम।

प्रमादा लस्य निद्राभि बहनाति भारत।।

सत्वं सुखे संजयति रजा कर्मणि भारत।

ज्ञान मात्त्य तु तयः प्रमादे सज्जयत्युत।।

इन सभी गुणों में मनुष्य का विकास होता है।[10] सत्वगुण सर्वश्रेष्ठ माना गया है और ब्राह्मण को सत्व गुणयुक्त होना अनिवार्य माना गया है। रजो गुण व्यक्ति क्षत्रिय, रसज स्वयं तमस गुण के रूग्मिश्रण बाला व्यक्ति वैश्य तथा तमोगुण वाला व्यक्ति शूद्र माना गया है। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा– 'मैने गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णो की पुष्टि की।'

चातुर्वर्ण्य मया सृप्टं गुण कर्म विभगशः।

---

[10] गीता, अनु. : एम.एन. दत्त, कलकत्ता, 1895, पृ. 480-82

सत्य कर्त्तरमपि मां विद्धयकर्तारमत्ययम।।[11]

मनु ने भी सतगुण, रजोगुण, तंमोगुण का वर्ण किया है। इस प्रकार उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण गुणों के आधार पर व्यवस्थित किये गये। विष्णु पुराण में भी ब्राह्मण को सत्वगुण से क्षत्रिय को रजगुण से वैश्य को रज एवं तम गुण से तथा शूद्र को तमोगुण से उत्पन्न ब्रह्मा की संतान माना गया है।[12] ऋगवेद में वर्ण शब्द का प्रयोग रंग के अर्थ में हुआ है, जहाँ आर्यों को गौर वर्ण और दासों में कृष्ण वर्ण का बतलाया गया है। महाभारत में भी वर्णो को विभिन्न रंगों वाला बतलाया गया है। मनुष्य की त्वचा के द्योतक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा ने की जो क्रमशः श्वेत लोहित, पीत और कृष्ण रंग के थे। वास्तव में रंगों के सिद्धान्त से त्वचा का रंग उतना व्यक्त नही होता जितना कि उनके गुण कर्म का श्वेत रंग सत्वगुण का, लोहित रंग रजोगुण का और कृष्ण रंग तमों गुण का परिचारक है।[13] वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि था। पुरूष सूत्र में उसे विराट पुरूष के मुख से उत्पन्न माना गया है। ऋगवेद में इसका उल्लेख पितरो के साथ हुआ।[14] तैतरीय आरण्यक के उल्लेख में मिलता है कि वही राजा सुख पूर्वक घर में निवास

[11] वही पृष्ठ, 367-68
[12] विष्णु पुराण, अनु. डब्लू. विलसन, लन्दन, 1864, पृ. 313
[13] दीर्घ निकाय, अनु. टी. डब्लू. रिस डेविस, प्रथम जिल्द, लन्दन, 1899- 1921 पृ. 102-5
[14] ऋग्वेद पूर्वोद्धत, पृ. 188-89

किया कराते थे। वे उनसे अनेक प्रकार से सलाह और परामर्श लेते थे। राज्यभिषेक के समय राजा पुरोहित को सत्कर्म करने का आश्वासन देता था। शतपथ ब्राह्मण में पुरोहित अन्यसमुदाय से कहता है कि हे मनुष्य यह तुम्हारा राजा है। ब्राह्मणों का राजा सोम है।[16] शतपथ ब्राह्मणों के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण स्वयं को राजा का आश्रित नही मानता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि जिस प्रकार शिष्य गुरू को पुत्र पिता और सेवक स्वामी को मानता है ठीक उसी प्रकार राजा को भी पुरोहित को पूज्य मानना चाहिए।[17] ब्राह्मण वर्ण रूप से अवध्य, अवन्ध्य, अवहिष्कार्य, अपरिणाध और अपरिहार्य था। ब्राह्मण को भीषण अपराध करने पर भी दण्ड की व्यवस्था कम से कम ही थी। शारीरिक दण्ड उसे किसी प्रकार से नही दिया जा सकता था।[18] विष्णु पुराण में ब्राह्मण को भीषण अपराध करने पर भी दण्ड की व्यवस्था कम से कम ही थी। शारीरिक दण्ड उसे किसी प्रकार से नही दिया जा सकता था[19] विष्णु पुराण में ब्रह्मण की हत्या करने वाले को नरक गामी कहा गया है।[20]

---

[15] त्रैतरीय ब्राह्मण, संपादक : आर. एल. मित्रा, कलकत्ता, 1855-70 पृ. 401
[16] शपतथ ब्राह्मण, अनु. जे. एगेलिंग, आक्सफोर्ड, 1892-1900, पृ. 557-9.
[17] अर्थशास्त्र-, पूर्वाद्धत, पृ. 88
[18] शतपथ ब्राह्मण-, पूर्वोद्धत, पृ. 126
[19] गोतम-, अनु : यू. सी. पाण्डेय, चौखम्भा, बनारस, 1966, पृ. 362
[20] विष्णु पुराण-, पूर्वोद्धत, पृ. 212

ब्राह्मण को राजद्रोह के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में क्षमा नही है। उनके अनुसार ऐसी दशा में ब्राह्मणों को समाधिस्थ कर देना चाहिए। विज्ञानेश्वर में भी दुराचारी ब्राह्मण को प्राण दण्ड का निर्देश दिया है।[21] महाभारत में उसे द्विपदों में सर्वश्रेष्ण बतलाया गया है। दस वर्ष के ब्राह्मण को सौ वर्ष के क्षत्रिय से अधिक आदरणीय माना गया है। यूनानी लेखक एरिस्टोव्योलेस ने भी ब्राह्मण की सामाजिक श्रेष्ठा का उल्लेख किया है।[22] मनु के अनुसार पढ़ना–पढ़ाना यज्ञ कराना, दान देना तथा लेना ब्राह्मण के प्रमुख कर्म थे।[23] समाज में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रिय का स्थान था। बौद्ध सामाजिक व्यवस्था ने क्षत्रिय को ब्राह्मण का उच्च पद प्रदान किया गया था। उसी की प्रतिक्रिया के कारण उनके सूत्रकारों ने पुनः ब्राह्मण को जन्म से क्षत्रिय की श्रेष्ठ बतलाया। गौतम ने ब्राह्मण और क्षत्रिय की इस प्रतिद्वन्द्विता को समानता करने के लिए सामाजिक उन्नति हेतु दोनों वर्गो को समान महत्व का बतलाया। गौतम मुनि के अनुसार ब्राह्मण की सहायता से क्षत्रिय समृद्धता को प्राप्त करता है और विपत्ति से बचाता रहता है। दण्ड की व्याख्या निश्चित करते समय गौतम बुद्ध ब्राह्मण के प्रति पक्षपात करते हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि कोई क्षत्रिय यदि ब्राह्मण का अपमान करता है तो उसे कर्षापर्ण दण्ड का भागी होगा और यदि

---

[21] स्ट्रैबो, 15,1,61 (द्वारा डुबायस पृ. 67)
[22] मनु., पूर्वोद्धत, पृ. 55-57
[23] वही, पृ. 70-72

ब्राह्मण क्षत्रिय का अपमान करता है तो उसे दस कर्षापर्ण का देना होगा।[24] क्षत्रिय शासक वर्ग का था। शस्त्र बल उनकी विशेषता थी। गौतम धर्म शूत्र में अध्ययन करना यज्ञ करना, दान देना। द्विज वर्णो के लिए समान कर्म बतलाये गये हैं, पर रक्षा से सम्बन्धित कार्य क्षत्रियों के लिए विशेष बतलाये गये हैं।

द्विजातीमनाध्यपनमिज्जादानम्

राज्ञोधिकमं रक्षणं सर्वभूतानामं।[25]

महाभारत में शान्ति पर्व में क्षत्रिय उसको कहा गया है जो युद्व आदि कर्मो में रत रहे और वेदों का अध्ययन करें।[26] सामाजिक प्रधानता के दृष्टिकोण से क्षत्रियों के पश्चात वैश्य का वर्ण आता है। देश की अर्थ व्यवस्था वैश्यों द्वारा संचालित होती थी। कौटिल्य के अनुसार वैश्य भी अध्ययन, यज्ञन और दानकरता है।[27] मनु के अनुसार पशुपालन, दान, यज्ञ अध्ययन वाणिज्य, महाजनी करना और कृषि वैश्य धर्म है।

पशूनामं रक्षणं दानभिज्या ध्ययनमेव च।

वषिक्पथं कुसैदं च वैशयज्य कृषिमेव च।।[28]

---

[24] महाभारत (शान्ति पर्व) पूर्वोद्धत, पृ. 212-216
[25] गौतम-, पूर्वोद्धत, पृ. 50-52
[26] महाभारत (शान्ति पर्व) पूर्वोद्धत, पृ. 301-1
[27] कौटिल्य, पूर्वोद्धत, पृ. 455
[28] मनुस्मृति-, पूर्वोद्धत, पृ. 89-90

निषेध बतलाया गया है। मनु के अनुसार संकट के समय वैश्य शुद्ध वृत्ति अपना सकता है। गौतम के कथन में भी मनु के मत का समर्थन होता है।[29] शूद्र की उत्पत्ति चरण से मानी जाती है। अतः समाज में उनका स्थान निम्नतम माना गया था। उसे पतित और हेय माना गया है। विद्वानों का ऐसा विचार है कि प्रारम्भ में आर्यों ने अनार्यों को पराजित कर उसे अपनी सेवा के लिए नियुक्त किया था। वे अनार्य शूद्र कहलाये। ऋग्वेद में अनार्यों को श्याम वर्ण बतलाया गया है। धर्मशस्त्रों ने इसे कृष्ण वर्ण शब्द का प्रयोग किया था। गौतम ने भी शूद्र को अनार्य कहा। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का प्रमुख कर्तव्य था। मनु के अनुसार शूद्र अपने स्वामी द्वारा त्यागे गये पुराने वस्त्रों छाता, चटाई आदि का प्रयोग करता था तथा स्वामी द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट भोजन को ग्रहण करता था।[30] मनु के अनुसार शूद्र को धन संचय का अधिकार नही था।[31] शूद्र के जीवन का समाज में कोई मूल्य नही है। शूद्र की हत्या करने वाले व्यक्ति को उसी प्रकार दण्डित किया जाता था। जिस प्रकार कि बिल्ली, मेढ़क, कुत्ते, उल्लू कौवे आदि की हत्या करने वाले को दिया जाता था।[32] शूद्र को अन्य वर्णों के समान वेदाध्ययन का अधिकार नही दिया गया था। धर्मसूत्र

---

[29] गौतम धर्मसूत्र-, पूर्वोद्धत, पृ. 30-31
[30] महाभारत-, पूर्वोद्धत, पृ. 310
[31] मनुस्मृति-, पूर्वोद्धत, पृ. 125-26
[32] गौतम-, पूर्वोद्धत, पृ. 280

म कहा गया कि यदि शूद्र जानबूझ कर स्मरण करने के लिए वेद पाठ सुने तो उनकी जीभ काट लेनी चाहिए।[33] ब्राह्मण स्त्री के साथ समागम करने वाले शूद्र के लिए मृत्यु दण्ड का विधान किया गया था। जबकि ब्राह्मण के लिए केवल पाँच सौ कर्षपर्ण का आर्थिक दण्ड निश्चित था। ब्राह्मण की भर्त्सना करने पर शूद्र की जीभ काट ली जाती थी।अथवा शारीरिक भत्सना दी जाती थी।[34] जबकि क्षत्रिय य वैश्य को इसी अपराध के लिए सौ सा डेढ़ सौ कर्षापर्ण का दण्ड दिया जाता था। मनु के अनुसार शूद्र कभी न्यायाधीश नहीं हो सकता था। साधारण अवस्था में शूद्र दान ग्रहण करने योग्य नही माना जाता था। व्यवस्थाकारों ने संक के समय ही शूद्र के दान की व्यवस्था की थी। गौतम के अनुसार ब्राह्मण विवाह करने के लिए यज्ञ के उपकरणों की प्राप्ति हेतु शूद्र का दान ग्रहण कर सकता था।[35]

हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था रहन–सहन, खान–पान रीति–रिवाज, आचरण, व्यवहार, विवाह आदि के अन्तर के आधार पर विभिन्न समूहों में विभक्त करने वाले हिन्दू सामाजिक संगठन की एक विशिष्ट व्यवस्था है, जिनके नियम निषेध, अनुबन्ध प्रतिबन्ध सीमाएं एवं जटिलताऐं हैं। ऋग्वेद काल में हिन्दू समाज चर्तुवर्ण में विभाजित था। कालान्तर में विदेशी

---

[33] मनु-, पूर्वोद्धत, पृ. 115
[34] गौतम-, पूर्वोद्धत, पृ. 243
[35] गौतम-, वही पृ. 244

आक्रमण, राजनैतिक परिवर्तन, वर्ण विरूद्ध विवाह, व्यापारिक सम्बन्ध आदि के कारण हिन्दू समाज अनेक वर्गों में बँट गया और आज भारत में 3000 से भी अधिक जातियाँ अस्तित्व में आ चुकी थी।[36]

जाति व्यवस्था भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया एवं अलौकिक या दैवीय प्रक्रिया मानी गयी है। वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज की एक संरचना का वह प्रारम्भिक रूप है जिसे जाति प्रथा का भी उद्‌भव स्रोत माना गया है। 'वर्ण' शब्द के माध्यम से गुण और कर्म के आधार पर मानव समूहों का विभाजन वेदों, उपनिषदों, महाकालों तथा धर्मग्रन्थों में ईश्वरी के रूप में वर्णित है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में विराट पुरूष (ब्रह्मा) के मुख से ब्रह्मण बाहु से राज्य (क्षत्रिय), उदर (जंघा) से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति बतायी गयी है।[37] वर्ण और जाति में अनावश्यक समीकरण सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है, वस्तुतः वर्ष और जाति पृथक व्यवस्थाऐं हैं। मनु का कथन है कि अनुलोम प्रतिलोम विवाह के द्वारा जातियां बनी, अत्यन्त भ्रामक है क्योंकि ऐसा होता है तो मूल जातियों का सदस्यों की संख्या अत्यधिक होती, उपजातियों की संख्या बहुत कम होती डुबायस धुरिया ने जाति प्रथा की उत्पत्ति ब्राह्मणों की राजनीति से प्रेरित योजना द्वारा मानी है। डुबायस के अनुसार ब्राह्मणों ने काफी श्रेष्ठ स्थिति बनाऐं

[36] ऋग्वेद-, पूर्वोद्धत, पृ. 322
[37] डा. बांके विहारी त्रिपाठी : प्राचीन भारतीय राज्य संघ समाज पृष्ठ सं. 84 (द्वारा डुवायस)

ब्राह्मण के द्वारा बनायी हुई एक चतुर राजनीतिक योजना कहा जाता है। आर्यों के प्रधान कर्म कृषि, पशुपालन और व्यापार। धीरे–धीर उनमें विस्तार के साथ–साथ उनेक उद्योग–धन्धे आरम्भ हुए और कर्मों के आधार पर वर्ग बनें। विभिन्न व्यवस्थाओं और धन्धे के विकास के साथ ही व्यवसायिक संघ बने। ऋग्वेद युग में चार प्रधान वर्णों के अतिरिक्त अनेक व्यवसाय परक जातियां अस्तित्व में आ चुकी थी। ऋग्वेद में चर्मकार लोहा–तष्टा, बढ़ई–वष्ता, भिषक–वैद्य आदि जातियों का उल्लेख है।[38] उत्तर वैदिक युग में उनेक नये व्यवसायों और शिल्पों का विकास हुआ, रथकार, सूतकार, तक्ष, क्षातृ, कुलाल, धवकृत, मृगय मणिकर, सुराकार, संटककार, खत्रि निषाद आदि व्यवसायिक वर्गों का उल्लेख इस युग के ग्रन्थों में हुआ है।[39] समाज के सभी वर्ग कालान्तर में पृथक–पृथक जातियों के कालान्तर में पेशे या व्यवसाय पैतृक हो गये और जातियाँ बनती गयी। कुछ ऐसी भी जातियाँ थी, जो घूमती रहती फिरती थी, नट सपेरे, मायाकार (जादूगर), गन्धर्व (गाने बजाने वाले) आदि थे। उपनिषद और महाभारत से ज्ञात होता है कि उस समय अनेक ऐसी जातियाँ विकसित हुई जिसकी उत्पत्ति अन्तर्विवाह उल्लेख है जो अनुलोम प्रतिलोम या अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धों

---

[38] ऋग्वेद–, पूर्वोद्धत, पृ. 253

[39] अर्थवेद–, अनु. : आर. टी. एच. ग्रिफिथ, बनारस, 1966-67, पृ. 410

से उत्पन्न है कि वर्ण संकर जातियों की तीन श्रेणियाँ थी। जिसमें 64 वर्ण संकर जाति शामिल थे।[40]

प्राचीन हिन्दू में आश्रम व्यवस्था का विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दू विचारकों ने मानव के सम्पूर्ण जीवन को व्यवस्थित करने के लिए उसे आश्रम के अन्तर्गत विभाजित किया। उन्होंने लौकिक एवं परलौकिक दोनों जीवन को महत्वपूर्ण प्रदान किया, किन्तु दोनों में परलौकिक जीवन की महत्ता अधिक थी। हिन्दू विचारकों ने मानव के जीवन को सौ वर्ष का माना है और उसे पचीस–पचीस वर्षों के अनुसार चार भागों में बाँट दिया गया है। ये चार भाग ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रम है। इन चारों आश्रमों में क्रमशः ज्ञान की प्राप्ति, सांसारिक जीवन का उपभोग, संसार का त्याग ईश्वर की आराधना और मोक्ष प्राप्ति के लिए तप है।[41] आश्रम व्यवस्था का उद्‌भव उत्तर वैदिक काल में हो चुका था। ब्रह्मचारी शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थ आश्रम व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक शब्दों से भरे पड़े हैं।

सर्वप्रथम ज्वालोपनिषद में चारो आश्रमों का उल्लेख मिलता है। सूत्रकाल तक आश्रम व्यवस्था पूर्ण–रूपेण व्यवस्थित और प्रतिष्ठा हो चुकी थी। यद्यपि उनके नामों एवं क्रम में अन्तर मिलता है। आपस्तम्भ में

---

[40] बृहद्धर्म पुराण, बी. आई. संस्करण, कलकत्ता, 1916, पृ. 113

[41] महाभारत, शान्तिपर्व : पूर्वोद्धत, पृ. 465

सर्वप्रथम गृहस्थ आश्रम का उल्लेख मिलता है और वानप्रस्थ का सन्यास के बाद। गौतम में चारों आश्रमों के लिए ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु और वैखामस शब्द का प्रयोग किया है तथा वशिष्ठ ने ब्रह्मजाति, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिगुजक शब्द का आपस्तम्भ में वानप्रस्थ के लिए मौन शब्द का प्रयोग मिलता है।[42]

प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम है। ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय संयम और वेदों का अध्ययन करने के लिए व्रत पालन से है। इसका आरम्भ उपनयन संस्कार से होता था। इस संस्कार से पूर्व बालक पर कोई प्रतिबन्ध नही रहता था। उपनयन की आयु विभिन्न वर्णों के बालकों के लिए अलग–अलग बतलायी गयी है। सामान्यतः ब्राह्मण के लिए 8 वर्ष, क्षत्रिय के लिए 11 वर्ष, वैश्य के लिए 12 उपयुक्त मानी गयी है। विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न ऋतुओं का भी विधान किया गया है। आपस्तम्भ के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन बसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म तथा वैश्य का शरद ऋतु में होना चाहिए।[43] ब्रह्मचर्य पालन में उपनयन के लिए तीनों वर्णों के लिए अलग–अलग मन्त्रों का भी विधान है। ब्राह्मण के लिए गायत्री, क्षत्रिय के लिए त्रिस्टुभ और वैश्यों के लिए जगती का विधान किया गया है।[44] आर्य ऋषियों ने गृहस्थ आश्रम को अन्य आश्रमों की तुलना में अधिक महत्व

---

[42] छान्दोग्य उपनिषद : , अनु. जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, 1901, पृ. 202
[43] आपस्तम्भ : , अनु. जी. बहुलर, बम्बई, 1982, पृ. 92
[44] वौधायन सूत्र :, अनु. ई. हुल्तश्च, लीपजिग, 1884, पृ. 37-38

है।[45] समापवर्तन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी का गृहस्थ जीवन प्रारम्भ होता था।

विवाह के उपरान्त वह गृहस्थ आश्रम में प्रवृष्टि होता था। इस आश्रम में पति एवं पत्नी परस्पर सहयोग करते हुए धर्मानुसार व्यवह़ार करते थे।[46] गृहस्थ आश्रम में रहकर व्यक्ति सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक आदि विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों का पालन करता है। मनु के अनुसार गृहस्थ धृत, क्षमा, दान अस्ते़य, शौच, इन्द्रिय, संयम, ज्ञान, विद्या, सत्य और क्रोध दस धर्मों का सेवन करता है।[47]

जीवन का तीसरा भाग वानप्रस्थ आश्रम कहलाता था। अपने समस्त गृहस्थ और सामाजिक उत्तर दायित्वों को पूर्ण करने के पश्चात व्यक़्ति सांसारिक मायामोह को त्याग कर वानप्रस्थ में प्रवेश करता था। आश्रमों के नियमानुसार गृहस्थ आश्रम के पश्चात वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए लेकिन बौधायन एवं याज्ञवल्कय आदि के अनुसार मनुष्य सीधे ब्रह्मचर्य अभीष्ट है। उसे भूमि पर शयन करना चाहिए तथा मृग के चर्म का प्रयोग

---

45 मनुस्मृति :, पूर्वोद्धत, पृ. 443
46 गौतम धर्म सूत्र :, पूर्वोद्धत, पृ. 15
47 मनुस्मृति :, पूर्वोद्धत, पृ. 312

शरीर में झुर्रियां पड़ जाय, बाल सफेद हो जाय तब गृहस्थ को घर बार का मोह छाड़कर पत्नी एवं पुत्र के संरक्षण छोड़कर अयवन साथ लेकर जंगल की राह लेना चाहिए।[48] मानव शरीर का अन्तिम भाग सन्यास आश्रम के अन्तर्गत आता है। सन्यास शब्द का तात्पर्य पूर्ण त्याग से है।[49] सन्यास आश्रम में व्यक्ति का एक मात्र लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था। सन्यासी के लिए वशिष्ठ के परिव्रजक, गौतम ने भिक्षु और विष्णु पुराण कार ने सन्यास या परिव्राट शब्द का प्रयोग किया है।[50] गौतम ने सन्यासियों के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा है कि उसे किसी प्रकार का संग्रह नही करना चाहिए। वह सबको अभय प्रदान करता था और वेद के अतिरिक्त अन्य सभी कर्मों के प्रति वह सन्निकट था।[51] महाभारत के अनुसार सन्यासी को अग्नि, धन, पतनी और सन्तान के प्रति सर्वथा अनासक्त रहना चाहिए और वस्त्र आसन और शैया आदि सुख साधनों का परित्याग करते हुए उसे इधर–उधर घूमते रहना चाहिए। कांचन और पाषाण शत्रु, मित्र तथा

---

[48] डा. बांके बिहारी मणि त्रिपाठी :, पूर्वोद्धत (द्वारा डुवायस) पृ. 98
[49] बौधायन : पूर्वोद्धत, पृ. 334
[50] विष्णु पुराण : पूर्वोद्धत, पृ. 462
[51] बौधायन धर्म सूत्र :, पूर्वोद्धत, पृ. 141

[redacted] के अनुसार सच्चा सन्यासी वही है, जो लौकिक अग्नि से शरीर के रोगी रहने पर भी चिकित्सा न करने वाला स्थित बुद्धि, ब्रह्म का चिन्तन करने वाला और ब्रह्मभाव रखने वाला हो।[53] महाभारत में काम, क्रोध का त्याग, अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह, पवित्रता, तप, संतोष स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिध्यान नियमों का पालन करना सन्यासी के लिए अनिवार्य बतलाया गया है। संस्कार हिन्दू संस्कृति के एक महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए असंस्कृत रूप को संस्कृत करने के लिए दैहिक एवं भौतिक जीवन की सर्वांगीण उन्नति तथा परलौकिक जीवन में मोक्ष प्राप्ति के लिए संस्कारों का संयोजन किया गया है।[54]

मध्यकालीन हिन्दुओं की दशा इतनी दुखःद थी कि उनका एक राष्ट्र के रूप में संगठित होना तो दूर हो रहा, वे अपना सुगठित समुदाय भी नही बना सकते थे। जनेऊ पहनने वेद पाठ कर सकने, सार्वजनिक जलाशयों और मन्दिरों में प्रवेश पाने छुआ–छूत और सुदूर दक्षिण में सामने आने तक की योग्यता को लेकर निरन्तर चलने वाली जातीय झगड़ों के कारण सारा हिन्दू समाज अनगिनत छोटी–छोटी पूर्णतया विभिन्न जातियों में बंटा हुआ था और हिन्दुओं में मुसलमानों जैसी सामाजिक एकता होना

---

[52] महाभारत शान्ति :, (शान्ति पर्व) पूर्वोद्धत, पृ. 246-47
[53] मनुस्मृति :, पूर्वोद्धत, पृ. 80
[54] महाभारत शान्ति : (शान्ति पर्व) पूर्वोद्धत, पृ. 190-93

वाला नया–नया उपजातियों से हिन्दू

गया। हिन्दुओं के उद्धार के लिए इस समय कोई ज्ञान सम्पन्न देश प्रेमी धर्माचार्य नही पैदा हुआ। छिन्न–भिन्न कर देने की यह प्रवृत्ति समाज के साथ ही हिन्दू धर्म में पायी जाती है। मांस मार्ग सम्बन्धी हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त ऐसे है कि उनके कारण हिन्दू धर्म समाज में न तो धर्माचार्यों का कोई सशक्त दल बन सकता है और न ईसाई धार्मिक संगठनों के समान यहाँ किसी एकीभूत शासकीय धार्मिक सत्ता का संगठन ही किया जा सकता है। अपना रास्ता अपना लेने वाले थे, असंगठित धर्म जिज्ञासु सरलता पूर्वक झूले ढ़ोगियों और विषाक्त रंगे सियारों के पंजे में जा फंसते हैं। बल्लभाचार्य सम्प्रदाय की धार्मिक प्रक्रियाओं में अजन्ता जाकर जिस प्रकार मानव पूजा को अपनाया गया था, या कर्ताभज और अन्य सम्प्रदाय वाले जैसी गुरू पूजा करते हैं, या मन्दिरों में देवदासियों तथा मुरलियों के रहने से वहाँ जो अनाचार फैलता है इन सब बातों तथा अन्य निन्दनीय आचार वाले छोटे–छोटे सम्प्रदायों की भी अपेक्षा करके यदि हम करोड़ो साधारण मूर्ति पूजकों की ओर दृष्टि डाले तो हमें दिखाई पड़ता है। हिन्दू

एक बिल्कुल अनहोनी बात थी। समय एवं सम्पन्नता के साथ हिन्दुओं के ये भीतर भेद–भाव बराबर बहते ही गये। मुसलमानी शासनकाल में अनेकानेक भीतरी प्रवृत्तियों के फलस्वरूप प्रत्येक जातियों में निरन्तर बनने वाली नयी–नयी उपजातियों से हिन्दू समाज और अधिक आशक्त हो गया। हिन्दुओं के उद्धार के लिए इस समय कोई ज्ञान सम्पन्न देश प्रेमी धर्माचार्य नही पैदा हुआ। छिन्न–भिन्न कर देने की यह प्रवृत्ति समाज के साथ ही हिन्दू धर्म में पायी जाती है। मांस मार्ग सम्बन्धी हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त ऐसे है कि उनके कारण हिन्दू धर्म समाज में न तो धर्माचार्यों का कोई सशक्त दल बन सकता है और न ईसाई धार्मिक संगठनों के समान यहाँ किसी एकीभूत शासकीय धार्मिक सत्ता का संगठन ही किया जा सकता है। अपना रास्ता अपना लेने वाले थे, असंगठित धर्म जिज्ञासु सरलता पूर्वक झूले ढ़ोगियों और विषाक्त रंगे सियारों के पंजे में जा फंसते हैं। बल्लभाचार्य सम्प्रदाय की धार्मिक प्रक्रियाओं में अजन्ता जाकर जिस प्रकार मानव पूजा को अपनाया गया था, या कर्ताभज और अन्य सम्प्रदाय वाले जैसी गुरू पूजा करते हैं, या मन्दिरों में देवदासियों तथा मुरलियों के रहने से वहाँ जो अनाचार फैलता है इन सब बातों तथा अन्य निन्दनीय आचार वाले छोटे–छोटे सम्प्रदायों की भी अपेक्षा करके यदि हम करोड़ो साधारण मूर्ति पूजकों की ओर दृष्टि डाले तो हमें दिखाई पड़ता है। हिन्दू

बादशाह कुतुब–उल–औलिया ख्वाजा मुइनुद्दीन जिस्ती (अजमेर) के मजार की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। जब वह अजमेर पहुँचा तो राजा बिहारीमल (कछवाहा) जो उस प्रदेश के मुख्य राजाओं में था आदर और स्वामीभक्ति के साथ अपने पुत्र भगवानदास को साथ लेकर बादशाह की सेवा के लिए उपस्थित हुआ। उसका बड़े आदर और सम्मान के साथ स्वागत हुआ और सम्राट ने उसकी नेक पुत्री को स्वीकार कर लिया और शाही महिलाओं में उसको स्थान दिया।[55] बिहारीमल या भारतमल आमेर का राजा था उसकी पुत्री अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर को जन्म दिया और वह मरियम–जमानी के नाम से प्रसिद्ध हुई। डा. बेनी प्रसाद के अनुसार यह विवाह "भारत की राजनीतिक के नवयुग के उदय का प्रतीक था, इससे देश में उत्तम शासकों की पीढ़ियां चली इससे मुगल शासको की चार पुश्तों तक मध्यकालीन भारत में सर्वोच सेनानायक और कूटनीतिज्ञों की सेवाएं प्राप्त हो सकी।" मिर्जा सैफुद्दीन हुसैन, जिसकी जागीर अजमेर के इलाके में थी अपनी श्रद्धा प्रकट करने उपस्थित हुआ। उसको कुछ अमीरों के साथ मेडता के दुर्ग को जीतने के लिए आमेर से

---

[55] श्रीराम शर्मा : भारम में मुगल साम्राज्य, आगरा, 1999, पृ. 126-27

20 कोस पर स्थित था, उस समय राय मालदेव के सेना अध्यक्ष जयमल के अधीन भेजा गया। बादशाह आगरा की ओर रवाना हुआ और कूच–दर–कूच चलते हुए एक रात और दिन में 50 कोस का फासला तय किया तारीख–ए–अल्फी में एक दिन का समय वर्णित है जो अधिक समय मालूम होता है, जब विजय सेना जयमल से दुर्ग छीनने के लिए पहुँचती है तो वह अपने आदमियों के साथ बाहर निकल गया परन्तु देवदास बच्चा और अभिमान के साथ दुर्ग की सम्पूर्ण सम्पत्ति आग को भेंट कर दी फिर राजपूतों के एक समूह के साथ वह बाहर निकला और शाही सेना के सामने डट गया। शाही सेना के बहुत सिपाही मारे गये और दो सौ राजपूत धराशायी हुए तब मेडता के दुर्ग पर शाही सेना ने अपना अधिकार कर लिया।[56] स्मिथ लिखता है "सितम्बर सन् 1567 में अकबर ने चित्तौड़ पर विजय करने का निश्चय किया" इस चढ़ाई के कई कारण बताये जाते हैं। मालवा से भागते बाज बहादुर की राणा ने शरण दी थी, राणा ने विद्रोही सेना को भी सहायता दी थी, आमेर के शासक बिहारीमल की भांति राणा ने न तो उसकी आधीनता स्वीकार की थी और न सम्राट के साथ किसी राजकुमारी का विवाह किया गया था। डा. ईश्वरी प्रसाद– राजपूतों के बिना भारतीय समाज नही हो सकता था। उसके सहयोग के बिना कोई सामाजिक या राजनीतिक समन्वयक सम्भव नही था। इसलिए

[56] श्रीराम शर्मा :, पूर्वोद्धत, पृ. 128

मेवाड़ का विजय एक बड़े आयोजन का अंग थी और सम्राट समस्त भारत को जीतने के लिए इसे सोपान शिला बनाना चाहता था'' स्मिथ का कथन है कि अकबर का दृढ़ निश्चय था कि उत्तर भारत में उसका निर्विवाद शासन हो इसलिए ऐसे सरदार की स्वतन्त्रता को सहन नही कर सकता था, जो अपने ऊँचे पर्वत दृढ़ दुर्गों के अभिमान में एक उसके आगे सर नही झुकाना चाहे।'' आमेर शाही अधीनता में पहले ही आ चुका था। चित्तौड़ विजय के बाद रणथम्भौर, कालिंजर, जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर ने आत्मपूर्ण कर दिया। रणभूमि का सिंह राणा सांगा अपने विजेता बाबर के काल में ही सन् 1530 में मर चुका है। टाड के अनुसार– ''उदय सिंह में राजत्व का एक भी गुण नही था। उसमें न तो अपनी जाति का स्वाभाविक गुण था'' इसलिए टाड कहता है ''यह मेवाड़ के लिए अच्छा ही होता कि तलवार अपना कार्य तो कर जाती परन्तु कम से कम उन गौरवशाली राजाओं की सूची में उदय सिंह का नाम तो नही मिलता है। ख्वाजा अब्दुल मजीद के अनुसार जिसको खाँ की पदवी दी गयी थी। कर्श का सूबेदार नियुक्त किया गया था। उसकी इन सेवाओं में गढ़ की विजय एक थी। जहाँ बहुत सी पहाड़ियाँ एवं जंगल थे। इसे इस्लाम के उदय से अबतक हिन्दुस्तान का कोई शासक जीत नही सकता था। इस समय यहाँ रानी दुर्गावती राज्य करती थी और उस प्रदेश के सारे कुत्ते

तक उनके स्वामी भक्त थे। अपने गुप्तचरों द्वारा देश की परिस्थिति का पता लगाकर आसफ खाँ सेना लेकर युद्ध के लिए चल पड़ा और 20000 घुड़सवार एवं 500 हाथियों के साथ शाही सेना का सामना किया। युद्ध में तीर लगने के बाद जब उन्होनें देखा की वे गिरफ्तार कर ली जायेगी तो महावत के साथ से खंजर निकालकर अपने पेट में मार लिया।[57] बिन्सेट ए0 स्मिथ ने लिखा है :– ऐसी उच्च चरित्रवली रानी के विरूद्ध अकबर का सेना भेजना केवल अतिक्रमण था। विशेषता उसने अकबर के विरूद्ध कोई ऐसा कार्य नही किया गया था जिसे वह उत्तेजित होता। अकबर का इस चढ़ाई में कोई औचित्य नही था। यह केवल लूट और विजय की तृष्णा से की गयी थी''। अबुल फजल कहता है, उसको अपनी योग्यता और दूरदर्शिता से बड़े–बड़े काम किये बाज बहादुर और दूसरे मियाहों से उसने कई बार युद्ध किये और सबसे उसको सफलता प्राप्त हुई। रणक्षेत्र में उसके पास 20000 का रिसाला और 1000 प्रसिद्ध हाथी रहता था। वह बन्दूर और तीर से अच्छा निशाना लगाती थी और खूब शिकार करती थी। 1564 ई. में अकबर आसफ खाँ को कतंग गोंड राज्य को विजय करने के लिए भेजा। यह राज्य पूर्व में रतनपुर पश्चिम में रायसीन तक और उत्तर में रीवा में दक्षिण में दक्षिण तक फैला हुआ था। इस राज्य की शासक

[57] श्रीराम शर्मा : वही, पृ. 128-29

रानी दुर्गावती थी, वह महोबा की चंदेल की राजकुमारी थी और पुत्र वीरनारायण की संरक्षिका थी। रानी दुर्गावती अत्यन्त बहादुर और योग्य शासिका थी। उसके अधिकार में 20000 घोड़े और 1000 हाथियों और बहुत से पैदल सिपाहियों की एक बड़ी सेना थी। इस सेना के बल पर वह राजबहादुर और अफगानों से अपना राज्य की रक्षा की थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में कुटुम्ब पारिवारिक जीवन की मुख्य संख्या है। यह धार्मिक संघ (चर्च) और राज्य से भी ऊँचा एक स्थान रखता है। इस अर्थ में भारतीय एक पारिवारिक समुदाय है। एक भारतीय कृषि के लिए उसके परिवार का एक विशेष आर्थिक महत्व है। उसकी पत्नी एक बहुसंख्यक बच्चों, उसके वृद्ध माता–पिता और अन्य सम्बन्धियों के लिए एक घर होने के साथ ही उसका परिवार उसके कृषि प्रबन्धन में एक अनिवार्य स्थान रखता है। उसके परिवार का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी रूप में कृषि उत्पादन में योगदान देता रहा।

हिन्दुस्तान में पारिवारिक परम्परा प्रायः इतिहास के प्रारम्भ से ही संगठित सामाजिक जीवन का कार्य चलाने के लिए प्रमुख तत्व रही है। कालान्तर में विकसित होकर इसने हिन्दू परिवार का रूप धारण कर लिया।[58] हिन्दू परिवार की विशेषताएं ये हैं कि परिवार के भीतर व्यक्तिगत

---

[58] हिन्दू लॉ :, सुवीरा जैसवाल, नई दिल्ली, 1966, पृ. 15

सम्पत्ति को कोई स्थान नही है, किन्तु संयुक्त सम्पत्ति से परिवार के सारे पुरूष सदस्यों, पत्नियों और बच्चों का खर्च पाने का अधिकार होता था।[59] विवाह होने पर लड़की अपने पति के परिवार का सदस्य हो जाती थी। यदि परिवार में ऐसे किसी पुरूष को गोद लिया जाता है, जो समाज में मान्य है और इसे कुछ स्थितियों में प्रोत्साहित भी किया जाता है, तो गोद लिया हुआ लड़का अपने अभिभावक परिवार से अलग होकर गोद लेने वाले परिवार का हो जाता है, और जबकि वह उसे परिवार के एक पुत्र के सारे अधिकार त्याग देता है। साथ ही वह अपने असली पिता या अन्य सगे सम्बन्धियों की ज्यायदाद में और अपने मूल परिवार की संयुक्त जायदाद में हिस्सा पाने की दावा को त्याग देता है।[60] हिन्दुस्तान के आज के तथा सम्भवता भूतकाल के हिन्दू परिवार का साधारणतः ठीक–ठीक परिचय मिल जाता है। संयुक्त परिवार का विकास स्वाभाविकता भारतीय ग्राम को जीवन और उत्पाद सम्बन्धी परिस्थितियों से हुआ।[61]

संयुक्त परिवार को देखा जाय तो वह व्यक्तित्व के विकास को रोकता है। यह जोखिम और आत्म निर्भता की भावना, जो आधुनिक काल में किसी भी देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अति महत्वपूर्ण है जो

---

[59] वही : पृष्ठ 428
[60] वही : पृष्ठ 389
[61] कोवलेरहस्की, मास्को प्रकाशन, 1960, पृ. 51

कुंठित कर देता है।[62] स्त्रियों के कार्य और उनकी स्थिति विशेष रूप से अधीनस्थ रही है, और कालान्तर में पुरूष की सेवा और जीवन के प्रत्येक चरण में उस पर निर्भर रहना हो। क्रमशः उसके कार्य और स्थिति ही माने जाने लगे। यही पुत्री के रूप में अपने पिता के संरक्षण में और विधवा के रूप में उस स्थिति में जबकि उसे अपने पति की मृत्यु के पश्चात जीवित रहने दिया जाता तो ज्येष्ठ पुत्र की देख रेख में रहती थी।[63] लड़की पैदा होने पर अनचाहा मेहमान समझा जाता, क्योंकि हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हतभागी पुत्री भूली बिसरी घड़ी में किये गये अपने पिता के पाप पुण्य का शोधन नही कर सकती है।[64] यदि जन्म के बाद बालिका को जीवित रहने दिया जाता तो उसे पति के अटूट बन्धनों में बाँध दिया जाता। यदि गर्भावस्था में उसकी मृत्यु हो जाती तो वह कभी–कभी 'चुड़ैल' नाम भयानक प्रेतात्मा का रूप धारण करके पड़ोस में अड्डा जमा लेती। मृत्यु या आत्मबलिदान ही उसे मुक्ति प्रदान करते थे। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री की दशा अत्यन्त दुखःद रहती थी। उसका धर्म और अन्य सुधारवादी आध्यात्मिक आन्दोलन भाग्य पर सन्तोष करने की बात कहकर उसे सांत्वना प्रदान करते, किन्तु उन्होंने भी

---

[62] के.एम. अशरफ : हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन कलकत्ता, 1935, पृ. 170
[63] हिन्दू लॉ :, पूर्वोद्धत, पृ. 37
[64] टाड, एनल्स एण्ड एन्टिक्टीज आफ राजस्थान, द्वितीय भाग, लन्दन, 1914, पृ. 739-740

सावधानी से उसे किसी अधिकारिक स्थिति से और उसे अपनी आन्तिरिक धर्मसत्ता से भी परे रखा।[65]

हिन्दू विचारधारा के अनुसार स्त्री का प्रमुख कार्य पुत्र पैदा करना था और यदि वह पुत्र को जन्म देती तो लोग उसका सम्मान करते, उसकी देखभाल करते। भारतीय नारी को क्षेत्र कठोर रूप से घर और घरेलू देखभाल तक ही सीमित था। उसके सारे स्वप्न स्वयं को पतिव्रता सिद्ध करने और पति को प्रसन्न करने में ही केन्द्रित रहते थे।[66] पुरूष नारी को निर्बल मस्तिष्क वाली और महत्वपूर्ण मामलों में विश्वास न करने योग्य समझने लगा। यह घरेलू मामलों में उसकी सहायता का स्वागत करता और उसका महत्व मानता था। कुछ अपवाद स्वरूप महिलाएं रही होगी, किन्तु सामान्यतः स्त्रियों की स्थिति का यह आंकलन तत्कालीन हिन्दू समाज को देखते हुए ठीक है।[67]

हिन्दुस्तान में मुसलमान प्राचीन फारसी परम्पराओं का पालन करते थे, जो स्त्रियों को नीची कोटि में रखते हैं।[68] सामान्यतः स्त्रियों की बौद्धिक संस्कृति में वर्गानुसार भेद था ग्रामों में जहाँ स्त्री ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अंग थी, सहायतार्थ में सांस्कृतिक उत्थान की गुंजाइश नही थी।

---

[65] मेकाफिल चतुर्थ : पृष्ठ सं. 353 (उद्धत डा. बाँके बिहारी त्रिपाठी, पूर्वोद्धत,)
[66] अमीर खुसरो : मत्ला- उल -अनवर, द्वारा एम. वाहिद मिर्जा, दि लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो, कलकत्ता, 1935 पृष्ठ 140
[67] विद्यापति ठाकुर : पदावली पृष्ठ सं. 256
[68] के.एम. अशरफ :, पूर्वोद्धत, पृ. 171

कृषक बच्चों के दरिद्र वर्ग को दुर्भाग्य से घरेलू काम कृषि कर्म और बच्चों के साथ इतना अधिक व्यस्त रहना पड़ता था, कि उन्हें बौद्धिक कार्यकलापों या मनोरंजन के लिए भी नही समय मिल पाता था। इस प्रकार उनकी मानसिक संस्कृति बहुत पिछड़ी रहती थी। उच्च वर्ग का जीवन सहायतापूर्ण कार्य और संकेतों से परिपूर्ण रहता था। जिससे कलाओं और विज्ञान की उन्नति को प्रोत्साहन मिलता था।[69] देवलरानी, रूपमति, पदमावती और मीराबाई हिन्दू संस्कृति के अच्छे उदाहरण हैं। हाजी दरबार का कथन है कि मुहम्मद तुगलक द्वारा कराजल की पहाड़ियों (कुमायूँ) पर आक्रमण किये जाने का एक कारण यह भी था कि वह इस भाग की स्त्रियों को पाना चाहता था जो अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात थी।[70] सुल्तान रजिया दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हो सकी। इससे सिद्ध हो सकता है कि कुलीन मुसलमान और मुस्लिम शासक अपनी पुत्रियों को उत्तम शिक्षा और प्रशिक्षण देने से नही चूकते थे। मुसलमानों के समय भारतीय कुलीन वर्ग में एक स्वस्थ परम्परा का समावेश हुआ। हमें गुलबदन बेग से सूचना मिलती है कि सम्राट हुमायूँ के हरम की महिलाएं अपने पुरूष मित्रों और अभ्यासगतों से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलती थी। वे कभी–कभी पुरूष भेष में बाहर जाती, पोलो खेलती और संगीत का

---

[69] अब्दुर कादिर बदायूनी-, मुन्तखब-उत-तवारीख अनुवाद : रैकिंग, भाग 2, कलकत्ता, 1884, पृ. 220
[70] हाजी बद्धवीर, जफरूल वाली, द्वारा सर डेनियस रास, ऐन अरेबिक हिस्ट्री आफ गुजरात, भाग 3, लन्दन, 1910-21, पृ. 127

इसका तात्पर्य घूँघट से होता है। स्त्री के लिए इसका प्रयोग किये जाने पर यह स्त्री को एक अलग भवन या पृथक कक्ष में या भवन के पृथक हिस्से में जिसे हरम कहा जाता है रखा जाना प्रकट करता है। हरम शब्द निवास स्थान के लिए प्रयुक्त होने के अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों की समष्टि को भी प्रकट करता है जो जनता की दृष्टि से परे कर दी जाती है। लडक़ी इस पृथकता का पालन तरूणावस्था पर कदम रखने पर या उसके पूर्व ही प्रारम्भ कर देती है और वह जीवन–पर्यन्त इस रीति का पालन करती है, जब तक कि वह सन्तानोत्पति की आयु पार नही कर जाती। परदा के उदभव के सम्बन्ध में अनेक विरोधापूर्ण सिद्धान्त रखे जाते हैं कुछ लोगों का कथन है कि इस प्रथा के उत्थान के लिए मुसलमान उत्तरदायी है और इस्लाम के पदार्पण के पूर्व हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ स्वच्छन्द विचरण करती थी।[72] हिन्दुस्तान के पर्दा प्रथा में घूँघट की कथा अति प्राचीन है और इस सिद्धान्त का समर्थन प्राचीन हिन्दू सामाजिक इतिहास कि कई

---

[71] के.एम. अशरफ :, पूर्वोद्धत, पृ. 150

[72] एलिजाबेथ कूपर, दि परदा, लन्दन, 1915, पृ. 102

[73] द लीडर, इलाहाबाद, मई 1938 में पर्दा के सम्बन्ध में श्री मेहता का मत

(महिला) स्त्रियां घरेलू कामकाज से परे रह सकती है। उच्च वर्ग की महिलाएं वही पर्दा का पालन करती है जहाँ तक उनके साधन उन्हें अनुमति देते हैं, क्योंकि उच्च वर्ग में पर्दा सम्मान का माप है।[74] अंतः जितनी ऊँचाई स्थित होगी, उतनी ही ऊँची खिड़कियाँ रहेगी, और स्त्रियां उतनी ही अलग रहेगी।[75] इस काल में पर्दा के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण है हिन्दू और निम्न वर्गीय मुसलमानों में घूँघट की प्रथा का वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी, विद्यापति आदि के द्वारा किया गया है। ये सर्वसाधारण के जीवन के सम्बन्ध में लिखते हैं।[76] पर्दे के विस्तृत नियत वाले अधिक विकसित स्वरूप हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासन के प्रायः प्रारम्भ से ही अस्तिव में आ गये। फखरूद्दीन मुबारकशाह लाहौर के गजनवी शासक बहराम ही हिन्दू दास लड़की की मनोरंजन कथा का वर्णन करता है। वह लड़की अस्वस्थ हो गयी थी और एक चिकित्सक से उसकी चिकित्सा करानी थी। उस चिकित्सक ने उसकी देह का निरीक्षण करने वाले और उसकी नाड़ी देखने पर जोर दिया। शासक को इसकी सूचना दी गयी। शासक इस स्थिति को देखकर अस्त–व्यस्त हो गया, और अनेक असन्तुष्ट

---

[74] टाड पूर्वोद्धत, पृ. 952
[75] एलिबावेथ कूपर, पूर्वोद्धत, पृ. 121
[76] विद्यापति ठाकुर : पदावली वंगीय, 59

खोले जाऐं।[77] फिरोज तुगलक के पहले पर्दे का पालन करने के लिए राज्य की पूजा पर कभी दबाव नही डाला गया। फिरोजशाह पहला शासक था जिसे दिल्ली शहर के बाहर के मकबरों पर मुस्लिम स्त्रियों के जाने पर पाबन्दी लगा दी थी, क्योंकि इसके अनुसार मुस्लिम कानून (शरियत) में इस प्रकार बाहर घूमने को मनाही है।[78] हिन्दू और मुस्लिम समाज में विवाह के नियमों से पर्दे का क्या सम्बन्ध था, इसका उल्लेख किया जा सकता है, जबकि ऐसे लोगों के साथ जिसने विवाह सम्बन्ध की मनाही है, स्त्रियों के सामाजिक समागम पर केवल सामान्य रूप से प्रतिबन्ध रहता है, अधिक शक्ति का वहाँ प्रयोग किया जाता है। जहाँ स्त्री पुरूष के सम्बन्ध इतने बढ़ जाते है कि भविष्य में विवाह सम्बन्ध होने की सम्भावना उपस्थित हो सकती है। हिन्दू, मुस्लिम कानून की मूल आत्मा विवाहेच्छुक दोनों पक्षों के सम्बन्धों के लिए चुनाव का विस्तृत क्षेत्र और बहुत अंश तक, स्वतन्त्रता प्रदान करती है। एक हिन्दू बहुधा अपनी उपजाति के बाहर और समग्र जाति के भीतर विवाह करता है।[79]

---

[77] फख-ए-मुदब्बिर, आदाब-उल-हर्ब, द्वारा अतहर अब्बास रिजवी, आदि तुर्क कालीन भारत, भाग-1 अलीगढ़, 1951, पृ. 220

[78] फिरोज तुगलक : फितुहात-ए-फिरोजशाही, द्वारा अतहर अब्बास रिजवी, तुगलक कालीन भारत, अलीगढ़, 1957, पृ. 153

[79] के.एम. अशरफ :, पूर्वोद्धत, पृ. 179

किसी व्यक्ति के जीवन में आयु विषयक विभिन्न चरण जैसे जन्म, किशोरावस्था, यौवनावस्था और मृत्यु तथा इसमें गुथे विभिन्न, रिवाज ही घरेलू जीवन विशेषकर ग्राम समुदाय के घरेलू जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं थी। ये सारे रिवाज बड़ी सावधानी और सूक्ष्मता से बनाये गये थे। धार्मिक भावनाएं इनमें श्रेष्ठ रूप से मुखातिर हुई। समाज किसी व्यक्ति के सम्मान की परख इस बात से भी करता था कि इन सामाजिक एवं धार्मिक क्रियाओं के पालन का वह इतना ध्यान रखता है। जैसे परिवार में सन्तोनोत्पति की घटना अत्यन्त महत्व की थी। चतुर और प्रबुद्ध लोगों ने चाहे मृत्यु और अगले जीवन के रहस्यों को अधिक महत्व दिया हो, किन्तु अधिक स्वस्थ मस्तिष्क वालों के लिए संसार में नये प्राणी का आगमन ही उत्सव मनाने योग्य था।[80]

हिन्दुओं के घर में पुत्र के उत्पन्न होने पर बड़ी हलचल रहती है। ताजे पानी से स्नान करने और पूर्वजों की आत्माओं तथा कुल देवताओं की प्रार्थना करने दौड़ पड़ता है। तत्पश्चात वह एक अच्छी अंगूठी निकालता उसे मक्खन एवं शहद में डुबोता और फिर उसे शिशु के मुख में रखता था।[81] हिन्दू ज्ञानी पण्डित बनाने के लिए शिशु जन्म की घड़ी और अन्य सूचनाएं लिखने में व्यस्त हो जाता। यदि वह जन्म की घड़ी लिखना भूल

---

[80] अब्दुर कादिर बदायूनी, पूर्वोद्धत, पृ. 188-89

[81] अबुल फजल : आइने-अकबरी, 3, अनुवाद : एच.एस. जैरेट, दिल्ली, 1978, पृ. 98

जाता तो वह जन्म का लग्न निकालने हेतु सावधानी से शिशु के शरीर के चिन्हों की जांच करता।[82] प्रारम्भिक क्रियाओं के पश्चात आनन्दोत्सव प्रारम्भ होते, जिसमें स्त्रियाँ प्रधान रूप से भाग लेती, शिशु के स्वास्थ के लिए निछावर किया जाता और सम्मान तथा दरिद्र अमीर तथा जन साधारण सबको अच्छे उपहार बांटे जाते।[83]

शिशु के नामकरण जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया जाता। शिशु की जन्म पत्री पर और बलिष्ठ नक्षत्रों के प्रथम शब्दों पर यथोचित ध्यान दिया जाता। ये नाम शुभ समझे जाते जिसमें चार से अधिक अक्षर न हो।[84] जादू–टोना या शिशु पर दुष्टात्माओं के प्रभाव को टालने के लिए तिथि एवं जन्म की घड़ी तथा जन्म पत्री की गणना पर आधारित मूल नाम गुप्त रखे जाते थे। विशेषकर शाही परिवारों में इस पर विशेष ध्यान दिंया जाता था।[85] तीसरा माह बीत जाने के पश्चात शिशु को सूर्य के प्रकाश में लाने दिया जाता था। अभी तक उसे घर से बाहर लाना सुरक्षाप्रद नही समझा जाता था। पांचवे माह में शिशु का दाहिना कान छेदा जाता था। यदि शिव लड़का होता तो छठवें माह उसके पास मिष्ठान और फल रख दिये जाते और उसमें से अपने लिए चुगने के लिए छोड़ दिया जाता। कुछ

[82] मलिक मुहम्मद जायसी : पद्मावत, पृष्ठ 26,118

[83] मिनहाज-उस-मिराज, तवकात-ए-नासिरी, मेजर एच.जे. रैवर्टी, विब. इण्डि. 1873-81, पृ. 204

[84] अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी भाग 2, अनु एच.एस. जैरेक, दिल्ली, 1978, पृ. 93

[85] के.एम. अशरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 182

द्विजो की पहली तीन जातियों के होने पर हिन्दू बालकों के जीवन का प्रथम महत्पूवर्ण संसार 'उपनयन' संस्कार था। यह बहुधा नवें वर्ष की समाप्ति के बाद मनाया जाता था और बाल्यावास्था की समाप्ति का घोतक था।[87]

पुत्र और पुत्री दूसरे चरण अर्थात वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने की तैयारी करते थे। जबकि पुत्र इस भविष्य का बहुधा स्वागत करता था, पुत्री के लिए निराशजनक होता था, क्योंकि अब उसकी स्वतन्त्रता के गिने चुने दिन रह जाते थे। अतः वह अपनी सहेलियों के साथ और पिता की छत्रछाया का आनन्द उठाकर अपने समय का अच्छे से अच्छा उपयोग करती थी।[88] अकबर इस स्थिति से हस्तक्षेप (वैवाहिक स्थिति) करने का इच्छुक था। उसने लड़को के लिए 16 वर्ष और लड़कियों के लिए 14 वर्ष विवाह की अल्पतम आयु निश्चित की। यह कठिन है कि उसके नियमों का पालन किया गया।[89] संतानों के विवाह को निश्चित करना और विवाह से

---

[86] अवुल फजल, अकबर नामा, भाग 3, एच.वेवरीज, दिल्ली, 1977, पृ. 489
[87] अवुल फजल : आइन-ए-अकबरी भाग 2, पूर्वोद्धत, पृ. 375
[88] वही, पृष्ठ 388
[89] वही, पृ. 401-2

सम्बन्धित रिवाजों और परम्पराओं का निरीक्षण करना माता–पिता विशेषकर पिता का विशेषाधिकार होता था।[90]

संतानों के विवाह के समय अनेक नाजुक और उलझनपूर्ण समस्याएं सामने आती थी जैसे परिवार की स्थिति पूर्वजों से सम्बन्धित क्रियाएं और परम्पराएं और दोनों पक्षों का सामाजिक सम्मान। माता पिता बहुधा चप्पे–चप्पे पर अपना उत्तरदायित्व बड़ी सावधानी से निभाते हैं। विवाह, विवाहित युगल के व्यक्तित्व से कहीं अधिक एक परिवारिक प्रश्न था। विवाह के दोनों पक्षों की सहमति को एक उत्सव द्वार मनाया जाता है। जिसे तिलक या मंगनी कहा जाता है। जिसे सगाई भी कहते हैं। इस औपचारिक मान्यता के पश्चात विवाह की तिथि (लग्न) निश्चित की जाती और विस्तृत तैयारियां प्रारम्भ हो जाती।[91]

जब एक पक्ष के सारे सदस्य एकत्र हो जाते अन्य आवश्यक तैयारियां पूरी हो जाती तब वर बाजे गाजे और आनन्द मग्न बारात के साथ वधू के घर के लिए प्रस्थान करता। वे यह यात्रा अपने रंगे हुए ढके और सजे वाहनों से करते और उस समय अपनी उत्तम वेशभूषा में रहते थे। जब वे वधू के ग्राम या शहर की सीमा के भीतर पहुँच जाते तब वधू पक्ष के लोग आगवानी करते और उन्हें वधू के घर ले जाते। उन्हें पान

---

[90] वही

[91] ग्रियर्सन : बिहार पीजेन्ट लाइफ कलकत्ता, 1885, पृष्ठ 374-386

जाता था। सम्भवतः वधू का पिता वर को अपनी पुत्री का औपचारिक समर्पण की क्रिया, जिसे कन्यादान कहते हैं, करता था। पुरोहित पवित्र मन्त्रोचार प्रारम्भ कर देते और महिलाऐं विवाह गीत गाना प्रारम्भ कर देती, जबकि वर–वधू के निकटतम सम्बन्धी अपनी दक्षिणा पूरी करते होते। अन्तिम पग वर एवं वधू को मनुष्यों एवं ईश्वर के समक्ष सदा के लिए पति–पत्नी बना देता तथा स्थानों और प्रान्तों के अनुसार क्रियाओं में कुछ भी विवाह कार्य के लिए लागू होती है।[92] विवाह सम्बन्धी उत्सव वधू पक्ष के साधनों और उनके आपसी समझौते के अनुसार कितने दिनों तक मनाये जाते किन्तु वर पक्ष का विश्राम कम से कम एक दिन और अधिक से अधिक दस दिन तक रहता था। वर और वधू को प्रस्थान करने के दिन अन्य बहुत सी क्रियाएं सम्पन्न की जाती, जो भूतकाल की मनोरंजक अवशेष प्रतीत होती है। वर और उनके साथियों को वधू पर अधिकार करने के लिए संघर्ष करके रास्ता बनाना पड़ता था। कुछ स्थान में वर को किसी चुराई हुई वस्तु को वापस लाने के लिए या वधू के साथ द्वार से निकलने के लिए वधू की वापस सहेलियों को रिश्वत देनी पड़ती थी। वधू

---

[92] मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत्, पृष्ठ सं. 45

तिथि को होता।[94] यद्यपि कि काफी समय तक विभिन्न क्रियाओं और समारोहों और शिष्टाचारों का पालन किया जाता, किन्तु पारिवारिक महत्व की एक महत्वपूर्ण घटना तब सम्पन्न हो जाती, जब पुत्री औपचारिक और वैधानिक रूप से दूसरे परिवार में चली गयी होती और वह अपने परिवार का अंग यहाँ तक कि स्वयं की स्वामिनी भी न रह जाती। वह अपने पति की हो जाती और उसी की इच्छा पर निर्भर रहती।[95]

जब कोई हिन्दू मरणोन्मुख होता तो लोग उसकी देह भूमि पर लिटाने में शीघ्रता करते, पुरोहित मन्त्रोच्चार प्रारम्भ कर देता और सम्बन्धीगण दरिद्रों और जरूरतमंदों को दान करना प्रारम्भ कर देते जिससे उनकी आत्मा सुगमता से परलोक जा सके। भूमि गाय के गोबर लीपी जाती और उस पर कुछ बिछा दी जाती, फिर उसके ऊपर मृत देह को लिटा दिया जाता था। सिर उत्तर की ओर तथा पैर दक्षिण की ओर रहते और चेहरा नीचे की ओर। यदि पवित्र गंगा जल उपलब्ध होता तो मृतदेह के ऊपर उसकी कुछ बूँदें छिड़की जाती। ब्रह्मण को गोदान किया जाता,

---

[93] इब्नबतूता : किताब-उर-रहेला, अनुवाद : आगा मेंहदी हुसेन, बड़ौदा, 1953, पु. 101
[94] मलिक मोहम्मद जायसी :, पूर्वोद्धत पृ., 395
[95] अब्दुल्ला, तारीख-ए-दाउदी, अनु : एस.ए. रशीद, अलीगढ़, 1956, पृ. 37

सिद्धान्त के अनुसार ब्राह्ममण की देह को पानी में फेंक देना चाहिए, क्षत्रिय की देह को जलाना चाहिए और शूद्र की देह को दफनाना चाहिए।[96] हिन्दू शव को जलाना ही सार्वभौम रूप से प्रचलित और लोकप्रिय था। यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु अपने घर और सम्बन्धियों से दूर होती तो एक स्मृति दाह संस्कार होता जिसमें हिरन की हड्डी, एक बांस, कुछ आटा, कुछ पत्ते और नारियल–जो सम्भवतः मृत व्यक्ति के अवशेषों के प्रतीक माने जाते और अग्नि की भेंट किये जाते थे।[97] मृतक व्यक्ति के पुत्र भाई, मित्र और शिष्य सिर तथा दाढ़ी मुंडाते और शव को जिसे कभी–कभी मृत– व्यक्ति की प्रिय वेशभूषा पहना दी जाती थी, श्मशान भूमि ले जाते, जहाँ वह यथोचित क्रियाओं के पश्चात जला दिया जाता। दाह–क्रियाओं के पश्चात अस्थियां एक पात्र, मृग छाला में एकत्र कर ली जाती और यदि सम्भव हुआ तो गंगा में प्रवाहित की जाती। घर से शव को उठा लिये जाने के पहले और बाद में यह निश्चित करने के लिए कि मृत व्यक्ति की आत्मा नही लौटी, अनेक अन्ध–विश्वासपूर्ण क्रियाएं सम्पन्न की जाती है।[98]

---

[96] ग्रियर्सन, पूर्वोद्धत, पृ. 395

[97] के.एम. अशरफ पूर्वोद्धत, पृ. 188

[98] विलियम क्रुक, पापुलर रेलीजन एण्ड फाकलोर इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1968 पृ. 236-37

हिन्दू मृतक परिवार के लोग पत्तों की शैया पर भूमि पर सोते थे। मृत व्यक्ति की उपेक्षा न की जाती, वास्तव में इस अवधि में देहयुक्त आत्मा को प्रेत देह प्राप्त करने में सहायता देने के लिए कई क्रियाएं की जाती। इसके लिए निकटतम सम्बन्धी जिसने मृत देह को जलाने के लिए आग लगायी थी, मृत्यु के पश्चात इन दस और अतिरिक्त दो दिनों तक खिचड़ी खाकर रहता और इस प्रकार मृत की नवीन प्रेम–देह को बल और शान्ति प्रदान करता। इस अवधि के अन्त में तेरहवें दिन आत्मा यात्रा के उपरान्त शान्ति सम्पन्न हो जाती। साल भर बीच–बीच में किये जाने वाले श्राद्ध उत्सव से उस समय तक उवलम्बन देते रहते, जब तक की अन्त में मृतक व्यक्ति को आत्मा देह नही धारण कर लेती और कर्म के अनुसार पुनर्जन्म नही ग्रहण कर लेती थी।[99] हिन्दू समाज में पिता या परिवार के मुखिया की मृत्यु हो जाती तो उस स्थिति में दुःख अधिक प्रबल और वास्तविक रहता, क्योंकि प्रायः सारा संयुक्त परिवार जीविका और सहारे के लिए उस पर अवलम्बित रहता था। इस प्रकार अन्तेष्टि के अवसर पर सारे परिवार की दबी हुई भावनाऐं विशेषकर स्त्रियों का भयानक चीत्कार में परिवर्तित हो जाता और विलाप का स्वर भारी कोलाहल उत्पन्न कर देता था। शोक

[99] अवुल फजल, आइन-ए-अकबरी, भाग 2, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 192

चार दिनों तक कभी–कभी एक माह तक और कभी–कभी पूरे वर्ष चलाते।[100]

पति की मृत्यु के पश्चात कुछ परिरिथतयों में हिन्दू पत्नियों के जलने की क्रिया को सती प्रथा कहा जाता था।[101] सती जलने वाली स्त्री को कहा जाता है। साधारणतः यह प्रथा हिन्दू समाज के उच्च वर्ग तक सीमित थी और राजपूतों की वीर जातियां इसका विशेष समर्थन करती थी। निम्नवर्गों की स्त्रियाँ तो अपने पति की अर्थी के साथ शमशान तक भी नही जा सकती थी।[102]

बलिदान की यह प्रक्रिया पारस्परिक नही थी क्योंकि पत्नी की मृत्यु सामने होने पर पति के लिए यह लागू नही था, क्योंकि वह क्रिया सम्भवतः भारतीय कबीलों की आदिम प्रथाओं पर आधारित थी और आर्यों तथा अन्य आक्रमणों द्वारा इसे आत्मसात कर लिया गया था।[103] सती पति के शव के साथ और पति के शव के बिना दोनों प्रकार से जलाई जाती थी। यदि मृत पति का शव उपलब्ध होता तो पत्नी उसके साथ जला दी जाती। इसे 'सहमरण' कहा जाता। यदि पति की मृत्यु पत्नी से दूर होती थी तो कुछ कोसों जैसे जब पत्नी गर्भावती होती उस समय वह बाद में किसी भी ऐसी

---

[100] अमीर खुसरों : देवतरानी खिज, द्वारा एम. वाहिद मिर्जा, पूर्वोद्धत, पृ. 116
[101] बारबोसा, प्रथम जिल्द, अनु. लॉंगवर्थ, लन्दन, 1918, पृ. 222
[102] वही, पृ. 224
[103] अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी, तृतीय, पूर्वोद्धत, पृ. 194

वस्तु के साथ जो उसके पति की होती थी। पति का प्रतीक होती जलाई जाती, इसे अनुमरण कहा जाता।[104]

हिन्दू समाज में विधवा के जीवन की नश्वर और मायावी प्रकृति और बाद के जीवन की सत्यता को नष्ट करने के इस असाधारण उपयुक्त अवसर को हाथ से नही जाने देता। पुरोहित सती को आश्वासन देता कि जलाये जाने के पश्चात उसे निश्चित रूप से अनन्तकाल तक के लिए पति का साहचर्य और असीमित सम्पत्ति, वस्त्र सम्मान और सुख प्राप्त होगा। इस प्रकार विधवा को विश्वास दिलाया जाता कि अग्नि में उसका बलिदान उसके विवाहोत्सव से भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे उसे अपने पति का अनन्त साहचर्य प्राप्त होगा।[105]

हिन्दू स्त्रियां यदि सती प्रथा के विरूद्ध मार्ग अपनाती तो उसे निश्चित रूप से चुड़ैल के रूप में कलुषित आत्माओं के संसार में विचरण करना पड़ेगा। क्योंकि उसके सम्मुख अन्य कोई विकल्प नहीं होता था।[106] सती की स्थिति जन सामान्य के लिए (विधवा) स्वेच्छा से अग्निदाह का दृश्य एक मनोरंजक और एक आनन्द की बात थी। क्योंकि उस समय समाज पुरूष प्रधान समाज था। अतः ऐसे में स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा

---

[104] वही पृ. 159-96

[105] निकोलो कोन्टी, ट्रावेल्स आफ निकोलो कोन्टी, अनु जे. विन्टर जोन्स, दिल्ली, 1974, पृ. 66

[106] टॉड, द्वितीय, पूर्वोद्धत, पृ. 723

जाता था।[107] आदिम काल और बर्बर अतीत के इस अवशेष को हिन्दू पति और हिन्दू पत्नी के बीच शरीर और आत्मा में पूर्ण एकता के अन्तिम साक्ष्य के रूप में मानने के प्रयत्न किये गये हैं। इस ज्वलन्त तथ्य के बावजूद भी कि दाह कार्य पारस्परिक न होकर केवल पत्नी पर आधारित था, अन्य बातें इन पाश्चतय कालीन नीति नियमों का अनैतिहासिक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं।

विधवाओं को जलाने का रिवाज हमारे काल के लोगों को विरासत में मिला। ऐसे और भी सामाजिक तत्व थे जिन्होने उनकी अनवरता को सम्भव बना दिया। सती प्रथा को प्रोत्साहन देने वाला एक तत्व था, हिन्दू समाज में विधवाओं की हीन स्थिति। ऐसे तथ्यों के प्रमाण हैं जो यह प्रकट करते है कि इन कठिन परीक्षा के लिए इनकार कर देने के पश्चात जो कठोर और लज्जास्पद जीवन विधवाओं को व्यतीत करना पड़ता उनकी उपेक्षा के लिए अग्नि में जल जाना सामान्य रूप से श्रेयकर था।[108] जनमत और सुविकसित धार्मिक विश्वासों ने जनता के मस्तिष्क ने यह विश्वास बैठा दिया था कि सतीत्व नारी की पवित्रता का सभी श्रेष्ठ और अत्यन्त प्रशंसनीय प्रतीक है। मृत पति के साथ न जल मरना विधवा की निष्ठा

[107] अब्दुला, तारीख-ए-दाउदी, पूर्वोद्धत, पृ. 57
[108] इब्नबूतता : किताबु-उर-रहेला, द्वितीय, पूर्वोद्धत, पृ. 13

हीनता और असत्यता का निश्चित ही सूचक था।[109] राजपूत सैनिक के लिए सती या स्त्री और बच्चों की हत्या भी सम्मान का प्रश्न था। वह इन निराशजनक कार्यो की तभी शरण लेता था जबकि उसकी हार निश्चित हो जाती। और ऐसे शत्रु के हाथों में परिवार के पड़ने की सम्भावना होती जिसका अधिक दबाव न होता। राजपूत की पत्नी और प्रिय रखैल उनके मृत्यु पर सती हो जाती, किन्तु युद्ध में हार की स्थिति में अधिक विधान और दर्शनीय पूर्णाहुति (नौहर) का आयोजन किया जाता था।[110] सतियों को अनेक वर्ग में बाँटा गया जैसे वे जिन्होनें मृत पति के भक्ति के कारण स्वेच्छा और उत्साह से इस कठिन परीक्षा को स्वीकार करते हैं। दूसरी वे जिन्हें उनके सम्बन्धियों द्वारा अग्निदाह के लिए बाध्य किया जाता, वे जिन्होंने जनमत के प्रति सम्मान के लिए बाध्य हो अपने को अग्नि में होम दिया, अन्य वे जिन्होंने जनमत पारिवारिक परम्पराओं और रिवाजों के कारण ऐसा किया और अन्तिम में, जिन्हें उनकी इच्छा के विरूद्ध आग में झोंका गया।[111]

हिन्दू प्रजा के प्रति मुस्लिम राज के रूख का वर्णन अत्यधिक उपयोगी है कि दिल्ली के सुल्तानों ने एक कानून बनाया था। जिसके अनुसार राज्य के भीतर किसी विधवा को जलाने से पहले अनुमति पत्र

---

[109] वही, पृष्ठ 341

[110] विद्यापति ठाकुर, पुरूष परीक्षा, पृष्ठ 13

[111] अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी, भाग 1, पूर्वोद्धत पृष्ठ 192-193

लिए किया गया था, किन्तु निषेध के लिए ठोस कारण के अभाव में साधारणतः अनुमति पत्र दे दिया जाता था।[112] हुमायूँ ही एक ऐसा शासक था जिसने सरकारी अनुमति पत्र के पद्धति प्रारम्भ करने की प्रथा को पदार्पित किया, अन्य कोई काम इससे पहले कदम नही उठाये गये।

मुगल सम्राट हुमायूँ पहला शासक था। जिसने जो सन्तानोत्पति की आयु से अधिक हो चाहे व स्वेच्छा से अपने को अग्निदाह के लिए क्यों न प्रस्तुत करे। समाज सुधार का यह साहसपूर्ण कदम था और इसका हिन्दू पुरोहितों या सर्वधारणा की ओर से कोई प्रबल विरोध कर प्रदर्शन नही हुआ। किन्तु शासन को यह विश्वास दिलाया गया कि दूसरे लोगों के धार्मिक विश्वासों पर इस प्रथा के बलात् रोकने से निश्चित ही भगवान को क्रोध बढ़ जायेगा और फलतः उसके वंश का पतन हो जायेगा और सम्भव है कि उसकी मृत्यु भी हो जायेगी सुलतान के अधिकारी सदैव ही विधवा दाह के समय उपस्थित रहते जिससे अनिच्छुक विधवा पर कोई बल प्रयोग न किया जा सके और उसे बाध्य न किया जा सके।[113] अकबर ने कुछ प्रसिद्ध अवसरों पर व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप किया और जलने के लिए

---

[112] इब्नबतूता : किताब-उर-रहेला, द्वितीय, पूर्वोद्धित पृष्ठ .13

[113] सीदी अली रायस, अनुवाद वैम्ब्री, पृष्ठ 60

तत्पर विधवाओं को ऐसा करने से रोक दिया। इन कुछ मामलों से जिनमें शासन की व्यक्तिगत रूचि थी। साधारणतः ये प्रवृत्तियां उस समय तक सीमित है जो मूलतः कुलीन हिन्दू थे या हिन्दू वातावरण में रहते थे।[114] उत्तर भारत में इस्लाम ने इस प्रथा के प्रयोग और उनकी गहनता को क्म करने में काफी योगदान दिया होगा। हम कृष्ण और राम सम्प्रदाओं की पश्चात कालीन लोकप्रियता का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने क्रमशः लोगों का धार्मिक दृष्टिकोण ही बदल दिया।[115]

जौहर प्रथा प्रायः राजपूतों तक ही सीमित थी। जब युद्ध में राजपूत सरदार और उसके योद्धा पराजय के निकट आ जाते तो वे बहुधा अपने स्त्री बच्चों की हत्या कर डालते थे। उन्हें तहखाने के किसी भी कमरे में बन्द करके भवन में आग लगा देते। फिर हाथ में तलवार लेकर अवश्यमभावी किन्तु वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करने टूट पड़ते। राजपूतों की युद्ध संहिता में सम्पूर्ण का कोई स्थान नही था और वह उन्हें पराजय से सन्तुष्ट नही करा सकता था। यह संहिता केवल विजय या नाश का मार्ग प्रदर्शित करती थीं इस काल में जौहर के अनेक उदाहरण हैं। रणथम्मौर के चौहान योद्धा हमीर देव का उदाहरण सर्वविदित है। जब सुलतान खिजली का बहुसंख्यक सेना से सामना करना पड़ा तब उसने

[114] इवनबतूता : किताब-उर रहेला, द्वितीय, पूर्वेद्धित, पृष्ठ 66
[115] टाड, द्वितीय, पूर्वोद्धत पृष्ठ 620

दीर्घ काल तक दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध करने के पश्चात जौहर कर लिया।[116] यद्यपि का जौहर प्रथा इन स्वाभिमानी योद्धाओं द्वारा अपनाया गया मार्ग एकदम अविवेकपूर्ण या गलत नही था, हमारे पास कारण है उस समय के युद्धों में कोमल व्यवहार करने के लिए समझौते या युद्धे बन्दियों या घायलों के प्रति सुव्यवहार करने के लिए कोई पारस्परिक स्वीकृति नही रहती थी। सब कुछ विजयी की इच्छा पर निर्भर रहता था। स्वाभिमानी राजपूत ऐसी अपमानजनक स्थिति स्वीकार नही कर सकता था। यहाँ तक कि बहुधा होने वाले अपने अन्तर्जातीय युद्धों में ऐसा करना उचित नही समझता था।[117]

मुगल सम्राट बाबर भारतीय ग्राम जनता की स्वल्प आवश्यकताओं को देखकर विशेष रूप से चकित हुआ था। उसके अनुसार किसानों के गांव के बसने या उजड़ने में कम समय लगता था, क्योंकि देहाती घर बनाने के लिए बहुत कम समय की आवश्यकता होती थी। बाबर कहता है कि लोग उस स्थान से एक या दो दिन में बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं, जहाँ वे अनेक वर्षों तक रहते आये है और पीछे अपने अस्तित्व का चिन्ह नही छोड़ते हैं। उसी प्रकार जब वे किसी नये स्थान में बस्तियाँ बनाते है तो वे अपनी आवश्यकताओं के लिए कुएँ या पानी सरोवर से सन्तुष्ट हो जाते हैं

[116] यहना बिन अहमद सरहिंदी, तारीख-ए-मुबारकशाही, बनुवाद के.के. बसु, बड़ौदा, 1932 पृष्ठ सं. 462
[117] के.एम. अशरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 199

युक्त शहर को उनके सामूहिक जीवन की योजना में स्थान नहीं था।

हिन्दुओं का ग्रामीण जीवन समीप ही पानी की सुविधा और चारों ओर कृषि के लिए भूमि रहती थी। यह ग्राम एक दूसरे से सटे हुए विभिन्न वर्गों के झोपड़ों से निकलकर बनता था और अछूतों तथा निम्न वर्गों के झोपड़े ग्राम को सीमा पर रहते थे। शीत वर्षा या उष्ण कटिबन्धीय सूर्य से रक्षा के लिए मनुष्य की जितनी न्यूनतम आवश्यकताएं होती है उतनी उसमें पूरा हो जाती थी। मिट्टी की दीवारें सम्भवतः थोड़ा सा स्थन घेर लेती थी और फूस तथा कुछ लकड़ी के खम्भों की सहायता ये बना हुआ एक छप्पर लकड़ी की बल्लियों पर टिका रहता था। प्रकाश आने के लिए बाजू के दीवारों में सम्भवतः कोई खिड़कियां नही रहती थी। फर्स कुचली मिट्टी की होती थी और कभी–कभी उस पर गोबर लीप दी जाती थी।[119]

हिन्दू समाज में अच्छे वर्ग के कृषक और गांव के प्रधान के घर अधिक विकसित और सुविधाजनक रहते थे। उनके घरों के बाहर एक चबूतरा साथ में एक बाहर का कमरा एक भीतर का कमरा एक विस्तृत

---

[118] बावर, बाबरनामा (तजुक-ए-बाबरी या वाकयात-ए-बाबरी), अनु. श्रीमती ए.एस.बेवरिज, आक्सफोर्ड, 1921 पृष्ठ 24,416

[119] साल्जमेन, इंगलिश लाइफ इन मिडिल एजेज, आक्सफोर्ड, 1921 पृष्ठ 88

अमीर वर्ग के लोगों के घरों से अनुमान लगा सके तो गंगा की निचली घाटी में घर परस्पर सटे हुए नही बनते थे, बल्कि वे निजी बगीचे में स्थित होते थे। वे घर आंगन के आसपास मिट्टी के चबूतरे तथा लकड़ी या बांस के खम्भों के बांस की कमचियों की टटि्टयों को जोड़कर बनाये जाते है, फूस का छप्पर बांस के ढ़ांचे पर ठहरा रहता था।[121]

हिन्दू समाज में गरीब कृषकों के सम्बन्ध में अत्यधिक विचार की आवश्यकता नही है। क्योंकि ये लोग फूल और सुगमता से प्राप्त लकड़ी की शहतीरों और लट्ठों के समान उनके दैनिक उपयोग के बर्तन गांव में मिल जाने वाली पकी हुई मिट्टी से बनते थे।[122] अच्छी श्रेणी के किसान कुछ पीतल और कुछ मिश्रित धातु के बर्तन खरीद लिये होंगे पर बढ़िया वेश–भूषा और श्रृंगार या भोजन पकाने और भोजन करने के उत्तम बर्तन की जीवन योजना में प्रवेश नही कर पाये थे। वे बहुधा खुले फर्स पर सो जाते थे और एक लुंगी और मोटे कपड़े की एक चादर से काम चला लेते थे। जो प्रायः पहनने के साथ बिछाने के काम भी आता था। बाजरे की

---

[120] सर.जी.ए.ग्रियर्सन : बिहार पीजेंट लाइफ, पूर्वोद्धत पृष्ठ 332-333

[121] इम्पी. गैजे. इण्डि., सात्वां, पृष्ठ 239-40

[122] फरिश्ता, तारीख-ए- फरिश्ता, द्वारा इलियास और डाउसन इंडिया ऐज टोल्ड वाई इट्रस ओन हिस्टोकरयन्य, भाग 6, पृ. 332

रोटी, चावल और दाल सम्भव हुआ मट्ठा और प्याज तथा मिर्च की चटनी उनका प्रिय भोजन था।[123] सामान्य पेय शीतल और ताजा जल था और वे प्रत्येक राही यात्री से इस पेय में हाथ बांटने के लिए विशेष रूप से ग्रीष्मकाल में, आग्रह करना न भूलते थे। इस काल में तम्बाकू का प्रयोग प्रारम्भ नही हुआ था और अफीम का प्रयोग कुछ प्रदेश तक ही सीमित था। पान और सुपारी का उपयोग सब वर्गों के शहरी लोगों द्वारा किया जाता था। विशेष त्योहारों पर कृषकगण ताड़ी या कोई सस्ती देशी शराब पीते थे।[124]

भवन–निर्माण की भारतीय परम्परा जिसमें नगर–नियोजन भी सम्मिलित है, वह अत्यन्त प्राचीन है। भवन निर्माण विज्ञान था। शिल्पशास्त्र पर पुस्तकें रखी जाती थी और प्राचीन शहरों और भवनों के पुरातात्विक अवशेष प्राचीन हिन्दू मस्तिष्क की पुरातात्विक सम्पन्नता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।[125] हिन्दू नगर के विशिष्ट तत्व होते थे। जैसे उसके स्थान का चुनाव और परस्पर समकोण पर काटते हुए शहर के बीच से जाने वाले दो चौड़े मार्ग थे। हिन्दू भवन अपनी विशालता एवं स्थायित्व के लिए प्रसिद्ध थे।[126] निम्नवर्ग के ग्रामीण छप्परों के लिए खपरैलों का प्रयोग किया जाता था जबकि शाही भवनों में सोने की पत्तरों का अत्यधिक प्रयोग किया

---

[123] विलियम क्रूक, हेक्लर्ट इस्काम इन इण्डिया, लन्दन, 1921 पृ. 317
[124] इम्पीरियरल गजेटियर, ऑफ इण्डिया, आठवां भाग, पृष्ठ 308-309
[125] के.एम अशरफ : हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां पूर्वोद्धत पृष्ठ 203
[126] अमीर तैमूर, मल्फुजात-ए-तैमूरी, द्वारा के.ए. निजामी, हिस्टोरियन्स ऑफ मेडिवल इण्डिया, दिल्ली, 1965, पृ. 166

जाता था। वे भवन कई मंजिल के बनाये गये थे कभी–कभी ये मंजिल 50 गज के आस–पास तक होती थी, जबकि किले की दीवार या किसी शहर की चहारदीवारी में बुर्जियों विशाल प्रवेश द्वार और प्रवेश द्वारों पर हाथियों या मनुष्यों की मूर्तियां रहती थी। हिन्दू भवनों के अन्य तत्वों में हम कृत्रिम नहरों द्वारा और खिडकियों में सुन्दर पच्चीकारी और मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में उत्तम शिल्प कौशल पाते हैं।[127]

हिन्दुस्तान के एक औसत नगर का वर्णन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है, कि वह एक नदी के तट पर अनेक व्यापार मार्गों की पहुंच पर और सुरक्षा तथा प्रतिरक्षा हेतु बहुधा आस–पास के प्रदेश की ऊँचाई पर स्थित रहता था।[128] नगर के चारों ओर एक मोटी दीवार रहती थी, जिसमें बीच–बीच में प्रवेश द्वार रहते थे, जिन पर कोतवाल नामक विशेष अधिकारी के प्रत्यक्ष निरीक्षण में दिन रात कड़ा पहरा रहता था।[129] हिन्दुस्तान के नगर की चकारदीवारी से प्रवेश करने पर मुख्य मन्दिर अपनी असाधारण ऊँचाई और प्रतिभाशाली स्थित से बहुधा दर्शक को आकर्षित करते थे।[130] हिन्दुस्तान के लोग अपनी सुन्दर नदियों और विस्तृत जलागारों का उपभोग करना नही जानते उसके अनुसार दक्कन के

---

[127] मलिक मोहम्मद जायसी, पूर्वोद्धत पद्मावत पृष्ठ 23-24
[128] अब्दुल्ला, तारीख-ए-दाउदी, पृष्ठ 92-93
[129] बरनी, तारीख-ए- फिरोजशाही, द्वारा इलियट और डाउसन, पूर्वोद्धत, भाग 3, पृष्ठ 113

[130] के.एम. अशरफ पूर्वोद्धत, पृष्ठ 204-205

लोग जल प्रवाहों के समीप अपना मकान बनवाने के शौकीन थे, जबकि उत्तर में यदि कोई व्यक्ति नदी की तट पर तम्बू गाढ़ता तो वह उसे प्रवाह के ओत में कर लेता था। वहाँ के लोग मकान के निर्माण में भी वैसी ही अरूचि का परिचय देते थे। फलतः फरिश्ता के अनुसार उन्हें भवन बन्दीगृह के समान दिखायी पड़ते थे, और शहर तथा नगर समतल मालूम पड़ते थे।[131]

सम्पन्न हिन्दू वर्गों के निवास स्थानों की दीवारों पर सम्भवतः सफेदी की हुई और ये चित्रित रहती थी तथा दरवाजे लकड़ी के अलंकृत काम के होते थे।[132] हिन्दुस्तान के लोग अपनी सुन्दर नदियों और विस्तृत जलागारों का उपभोग करना नही जानते थे। जबकि दक्कन के लोग जल प्रवाहों के समीप अपना मकान बनाने के शौकीन थे, जबकि उत्तर में यदि कोई व्यक्ति नदी के तट पर तम्बू गाढ़ता तो वह उसे प्रभाव के ओट में कर लेता था। वे लोग मकान के निर्माण में भी वैसी ही अपरिष्कृत रूचि का परिचय देते थे। फलतः फरिस्ता के कथनानुसार उन लोगों को भवन बन्दीगृह के समाज दिखायी पड़ता था तथा शहर एवं नगर समतल लगता प्रतीत होता था।[133]

---

[131] फरिश्ता : तारीख-ए-फरिश्ता, पूर्वोद्धत, पृ. 340
[132] मैकाफिल, द सिख रेलिजन, प्रथम भाग, आक्सफोर्ड, 1909 पृ. 90
[133] फरिश्ता, पूर्वोद्धत, पृ. 342

हल्के और सुबहनीय विस्तार प्रयुक्त किये जाते थे, जिससे यात्रा के समय बहुधा लोग अपनी पलंग अपने साथ ले जाते थे। बिस्तर की चीजों में दो गद्दे, तकिये, चादरें अमीरों और सम्पन्न व्यक्तियों के लिए रेशम की भी होती थी। गद्दों व तकियों के लिए सूत या जूट के गिलाफ प्रयुक्त किये जाते थे। बिस्तर सकति बिछावन की इन सारी वस्तुओं को साधारणतः 'चपरावट' कहा जाता था।[134]

हिन्दुस्तान में अमीर वर्ग के लोग सोने और चाँदी के काम से अलंकृत और रेशमी गद्दों वाले पलंग उपयोग में लाये थे।[135] जबकि सम्पन्न हिन्दू वर्ग कभी–कभी गद्दों के लिए शीतल पाती नामक चटाई का प्रयोग करते थे और तकिये राई के दोनों से भरते थे।[136] उच्च वर्ग के लोग रेशमी गद्दियों की लम्बी कुर्सियों का उपयोग करते थे। अन्य लोग कटहल की लकड़ी और मूंगे की बनी तथा सूती धागों से बुनी पीढ़ियों का प्रयोग करते थे। सरकण्डों के मुण्डा भी काम में लाते थे।[137]

---

[134] इब्नबतूता : किताव-उर-रहेला पूर्वोद्धत पृष्ठ सं. 73
[135] देखें बाबरनामा, पूर्वोद्धत, पृ. 223
[136] जर्नल आफ दि डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स, पृष्ठ 241-242
[137] अमीर खुसरो, एजाज ऐ खुसखी, देखें वाहिद मिर्जा, पूर्वोद्धत, पृ. 335

कमीज और तंग पायजामा पहनते थे। बनयाइन या बंडी मसलिन अथवा अन्य किसी बढ़िया कपड़े की होती थी। सोने की पोशाक उपयोग में लायी जाती थी।[139]

हिन्दुओं के घर में नारी का विशेष सम्मान किया जाता था। यदि वह माँ होती तो उसके प्रति विशेष भक्ति होती जैसा के हम हिन्दू किसी कार्य को समापन करने से पहले निकलते है तो वह अपने पूज्य माँ के चरणों को छूकर आर्शीवाद लेना नही भूलता थे।[140]

भारतीय समाज में हिन्दुओं के पति--पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध कुछ औपचारिक रहते थे, किन्तु वे मधुर और कोमल होते थे। किसी भावनापूर्ण अवसरों पर पति--भक्ति प्रकट करने के लिए वे पति के चरणों में अपना मस्तक रगड़ती थी। पति भी उतनी ही प्रेम से उनके सिर पर मृद चुम्बन देकर प्रत्युत्तर देता था। यदि पत्नी नववधू होती तो वह जन सम्मुख लज्जा के कारण अपना चेहरा साड़ी से ही ढ़क कर रखती थी।[141]

---

[138] मलिक मोहम्मद जायसी, पद्यमावत, पृ. 269

[139] अमीर खुसरो, देवलरानी खिज्र खाँ, द्वारा वाहिद मिर्जा, पूर्वोद्धत, पृ. 243

[140] मलिक मुहम्मद जायसी, पद्यमावत पृष्ठ 301

[141] के.एम. असरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 178-79

से देखा जाता है।[142]

भारत में वेश्यावृत्ति प्राचीनकाल से प्रचलित थी। इसमें दक्कन की देवदासी प्रथा के बारे में मालूमात होता है। इस काल में पवित्र मन्दिरों को लकड़ियां भेंट करने की यह परम्परा पर्याप्त प्रबल थी। प्राचीन भारतीय परम्परा सार्वजनिक वेश्याओं से परिचित थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि ये बहुत लोकप्रिय और कई बातों से सम्माननीय भी होती थी। यौन विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ, विशेषकर 'कामसूत्र' जो काम विज्ञान पर आधारित है वह सर्वोत्तम व्याख्या मानी जाती है।[143] सार्वजनिक वैश्यावृत्ति के प्रति राज्य का दृष्टिकोण कभी भी धार्मिक या नैतिक विचारों से प्रभावित नही हुआ था। कभी भी नैतिक आधार वैश्यावृत्ति को समाप्त करने या निषिद्ध करने का कोई प्रयत्न नही किया गया। क्योंकि यह राजस्व का एक साधन भी था। सार्वजनिक वैश्याएं संगीत और नृत्य से अच्छा परिचय रखती थी,

---

142 अमीर खुसरो, कुल्लियात-ए-खुसरों, देखें वाहिद मिर्जा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 146

143 जरनल आफ दी डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स, पृष्ठ 116-117

प्रदर्शन में अधिक रूचि रखने वाला साधु ओढ़ने के लिए मृगछाल रखते थे, किन्तु महात्मा पुरूष ऐसे आडम्बकर और दंभ से दूर रहते थे।[145] हिन्दू भारतीय समाज में साधु सन्यासी अपनी वस्त्र सम्बन्धी तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कौपीन (लंगोटा) और एक तूम्बी से सन्तोष कर लेते थे। क्योंकि साधु पुरूष सांसारिक माया जाल से बहुत दूर हो जाते हैं, जिसमें कि आवश्यकता नाम की चीज समाप्त हो जाती है। वह सिर्फ ईश्वर के हो जाते है और उन्हीं के ध्यान में ही सम्पूर्ण जीवन एक कौपीन (लंगोटी) में व्यतीत कर देते हैं।[146] वेशभूषा के मामले में योगी लोग वर्णात्मक न होकर व्यक्ति वैचित्रय रखते थे। कुछ अपने सिर पर दखेश टोपी (कलन्सुवाह) और पैरों पर लकड़ी की पादुकाऐं पहनते थे और अपनी देह पर केवल एक बिना सिला वस्त्र लपेट लेते थे।[147]

हिन्दू समाज में स्त्री एवं पुरूष दोनों ही आभूषण से अनुराग रखते थे। स्त्रियां अपने सिर से लेकर पैर तक आभूषण से सुशोभित होती थी।

---

[144] के.एम. अशरफ : हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, पृष्ठ 275
[145] मलिक मोहम्मद जायसी, पदमावत, पृष्ठ 60
[146] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब भाग 1, कलकत्ता, 1973, पृष्ठ सं. 114
[147] अमीर खुसरों : आदन-ए- सिकन्दरी , देखें वाहिद मिर्जा, पूर्वोद्धत, पृ. 220-22

आभूषण से लगाव था। हिन्दू अपने कान छिदवाकर छल्ला (रिंग) पहनते थे। राजपूतों की दृष्टि में कान में छल्ला और हाथ में कंगना पहनना उनकी प्रतिष्ठा का छोतक था। औरंगजेब को छोड़कर सभी मुगल बादशाह अपने आपको आभूषणों से सुशोभित किया करते थे।[149] अलंकार स्त्री–पुरूष दोनों के शरीर के सजावट के महत्वपूर्ण अंग थे। कान में छल्ला पहनना अभिजात कुल का छोतक था। राजपूत योद्धा ऊपर की ओर ऐंठे हुए गलमुच्छों और उसके कान के 'छल्ला– पहनना अभिजात कुल का द्योतक था।[150] प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में जवाहरात की कला भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी, क्योंकि आदि काल से ही हिन्दू नर–नारियां रत्न और आभूषण बड़े प्रेम से पहना करते थे। हुमायूँ ने कोहिनूर नाम प्रसिद्ध हीरों को ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत के परिवार से प्राप्त कर लिया था।[151]

हिन्दू समाज में भारतीय नारी की एक प्रमुख विशेषता रही है कि उसकी अभिरूचि सदैव अपने को आभूषणों से विभूषित करने की ओर

---

[148] के.एम. अशरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 182
[149] लईक अहमद : मुगल कालीन भारत, इलाहाबाद, 1970, पृष्ठ सं. 322
[150] के.एम.अशरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 167
[151] ए. एल. श्रीवास्तव, मुगल कालीन भारत, आगरा, 1998 पृ. 355

अपने बाल्यकाल से आभूषण को पहनने के लिए अपने नाक छिदवा लेती थी और आभूषणों को पहनती थी। प्रत्येक माता–पिता अपनी हैसियत के अनुसार सोने, चाँदी, पीतल के आभूषण अपनी कन्या को पहनाते थे। इसमें (रकनफूल) पीलत की पत्ती मोर भव बाली चम्पा कली आदि के आभूषण कान में पहने जाते थे। नाक के आभूषण मुसलमानों के आने से पहले अज्ञात थे। गले में पहने जाने वाले आभूषणों में 'हार– एवं गुलबन्द प्रमुख थे। स्त्रिया अपने हाथों को बाजूबन्द गजरा बहू 'कंगना– चूड़ियां आदि से विभूषण करती थी। इस प्रकार वे अपने पैरों को भी आभूषण रहित नही रखती थी। पैरां में पायल 'धुधार' तथा पैर के अंगूठे मे 'बिछुआ' निाम आभूषण पहनती थीं अबुल फजल ने सैंतीस प्रकार के आभूषण का उल्लेख किया है। जो सोना, चाँदी, पीतल आदि विभिन्न धातुओं द्वारा गढ़े जाते थे। इन आभूषणों को गढ़ने की 'जरनिशान' कोफतगर 'मीनाकर' सदाहरक 'मुनावतकार' 'शबाकार' 'चरमकार' 'सिम्बाफ' 'सवादकार' जरकोब आदि कहा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दू समाज में आभूषण का प्यार प्रकृति प्रेम की तरह ही था।[152]

---

[152] युसुफ हुसैन : ग्लिम्पसेस ऑफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, बम्बई, 1957, पृष्ठ सं. 134

यह निष्कर्ष निकलता है, कि यह सौन्दर्ता के साथ–साथ विरासत की एक रूप रेखा के समान थे जो कि यह प्रतिष्ठा को भी प्रदर्शित करने का बहुमूल्य कार्य करती थी।[153]

पुरूषों के शेष अलंकार जैसे तलवारें कटारें और अन्य हथियार थे। सर से लेकर पैर तक प्रायः प्रत्येक अंग में अलंकार धारण करना हिन्दुस्तान की हिन्दू जाति की विशेष निर्षकरता रही है और अभी भी यह कुछ सीमा तक थी।[154] समाज में इस समय सजावट के अलंकारों के चुनाव में उत्कृष्टता और सुन्दरता की अपेक्षा परिणाम और बहुमूल्य का प्रमुख स्थान था। इस मामले में स्त्रियां स्वाभाविक सौंदर्य के सम्पर्कों की बात का अनुकरण करने में अत्यन्त शिथिल रही जो सब या अधिकांश अलंकारों को त्यागने के समर्थन थे।[155]

हिन्दुओं का अलंकारी जीवन काफी बढ़ चढ़ कर था। किन्तु यह जीवन सिर्फ अलंकारिक न होकर साथ–साथ धर्नाजन एवं धनसंचय के मार्ग को प्रशस्त करने का भी कार्य किया। हिन्दुस्तान में नारी के सुहाग

---

[153] मलिक मोहम्मद जायसी, पद्यमावत, पृष्ठ 148

[154] बारबोसा, पूर्वोद्धत, पृ. 113

[155] अमीर खुसरों : देवलरानी खिज्र खां, पूर्वोद्धत पृष्ठ 217-219

अपने सिर से सिन्दूरे को भी उतारकर फेक देने का र्का करती थी। यह सारी क्रिया–कलाप नारी जीवन के उत्सर्ग का एक अंग था।[156]

हिन्दू समाज के नारी जीवन में श्रृंगार के सोलह वस्तुओं का उल्लेख किया गया है जो कि अबुल फजल के अनुसार एक सम्मानीय महिला के लिए आवश्य भी है। स्नान, तेल मालिस, केश विन्यास मस्तक पर कोई अलंकार और चन्दन का लेप युक्त पोशाक, टीका आंखों में सूरमा कानों के लिए कर्ण फूल मोती या योने की नथुनी, गले के लिए कुल अलंकार या हार हाथों के लिए मेंहदी कमर में तक हो सके घुंघरूदार करधनी, पैरों के लिए कुछ अलंकार, ताम्बूल चवर्ण और अन्त में व्यहार कुशलता।[157]

पुरूष सज्जा के लिए दाढ़ी स्वच्छ और यथोचित रूप से स्वच्छ देह मस्तक पर तिलक का चिन्ह शरीर पर इत्र और सुगन्धित तेल की मालिश कानों में सोने के छल्ले एक उपयुक्त अंगपुरवा (काबा) जिसके बांयी ओर तस्मा हो पगड़ी के सुनहरे छोर या सामने लगा मुकुट म्यान में रखी एक

---

[156] विद्यापति ठाकुर, पद्यमावती, वंगीय, पृष्ठ 117
[157] अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी, भाग 3, पूर्वोद्धत पृष्ठ 183

हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक त्यौहार मनाये जाने की शैली या ढंग उस निश्चित के लिए उल्लेखनीय है, जिनमें वे मनाये जाते हैं। ये साधारणतः कृषकों के लिए अपेक्षाकृत विषम की ऋतु से मेल खाते हैं और नृत्य या लोक धुनों के साथ मनाया जाता है। शासक आये और गये। संकट आये और विनाश हुए और भुला भी दिये गये, लो उत्पीड़ित हुए और कहारे भी किन्तु सामाजिक जीवन में स्थानीय और सामान्य त्यौहार पूर्वत बने रहे, तथा वे सदैव उत्साह और आनन्द से मनाये जाते रहे। नवीन साम्प्रदायों के पर्दापण होने के बावजूद भी लोकार्पण त्यौहारों का स्वरूप बदला नही। बल्कि नये विदेशी उसकी सौन्दर्यता में चार चाँद लगाने का कार्य किया है। उस समय भी आज की प्रचलित त्यौहार थे, जैसे– बसन्त पंचमी, होली, दीपावली, शिवरात्रि और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित त्यौहार इत्त्यादि मनाये जाते थे।[159]

हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहारों में गायन, लोक नृत्य तथा गुलाल आदि लगाने की प्रथा कायम थी, जबकि होली जैसे त्यौहार हिन्दुओं और निम्न वर्ग के लोगों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इस लोकप्रिय त्यौहार में

[158] वही, पृष्ठ 183
[159] के.एम. अशरफ, पूर्वोद्धत, पृ. 245-46

जागरण और प्रार्थनाएं कर के शिवरात्रि को मनाते थे तथा कार्तिक की 25वीं तिथि को दीपावली का त्यौहार मनाया जाता था।[160]

हिन्दू त्यौहारों को अलग–अलग तरीके से मनाता था। जैसे– बसंत पंचमी के त्यौहार में महादेव की पूजा का स्थान प्रमुख था। सिन्दूर एवं गुलाल इतनी मात्रा में बिखेरा जाता था कि जायसी के शब्दों में पृथ्वी से लेकर आकाश तक प्रत्येक वस्तु लाल हो जाती थी। प्रवलियों महादेव के मन्दिर में फल फूलों की भेंट ले जाना नही भूलती थीं। शिवलिंग को चंदन और अगरू के लेप से अभिषिक्त करके और सिंदूर से रंगकर अपनी मनोकामना की पूर्ति होने पर देवता को इस भेंट चढ़ाने का वायदा करके वे घर लौटती थीं।[161]

होली के अवसर पर तीन दिनों तक सब जातियों और वर्गों के हिन्दू केसरिया और रंगीन जल से पथिकों को भी भिगो देते थे। तीसरे दिन शाम को पूरी जनता एक विशाल अग्नि के चारों तरफ एकत्रित हो जाती थी और आगामी फसल के लिए शकुन विचारती थी।[162]

---

[160] अबुल फजल : आइन-ए-अकवरी, भाग 3, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 188-91
[161] मलिक मोहम्द जायसी पद्मावत पृष्ठ 417-27
[162] विलियम क्रुक, पूर्वोद्धत, पृ. 183

करते थे। लक्ष्मी देवी की सामूहिक पूजा के पश्चात लोग मशालें जलाती हुई लकड़ियां और शलाकाएं घुमाते थे।[163]

दशहरा क्षत्रियों और कृषक वर्ग से बहुत लोकप्रिय था। यह त्यौहार आश्विन की दशमी तिथि (जिसे विजय दशमी कहा जाता है) को पड़ता था और उपरोल्लिखित वर्गों द्वारा शैवमार्गी देवी दुर्गा की पूजा करना भी इनकी एक विशेषता थी। राजपूत अपने अश्व के मस्तक को जो क़ी कौंपलों को सजाकर लेते थे। किसान अपने औजारों की पूजा करते थे।[164]

दीवाली कुछ अर्थों में अत्यन्त खूबसूरत एवं आनन्दमयी त्यौहार होता था। दीवाली के त्यौहार को प्रकाश का त्यौहार भी कहा जाता है। वर्ष में एक बार पुण्यात्मक मृतकों को इस पृथ्वी के निवासियों से स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपने अलौकिक घरों में परिचित वातावरण में आने की अनुमति दी जाती थी। इस समाज के सभी लोग अपने पूर्वजों क़ी आत्माओं से स्वागत करने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे। घरों के भीतर औश्र बाहर मन्दिरों तथा सार्वजनिक भवनों में सर्वत्र विशाल संख्या में दीप

---

[163] विद्यापति ठाकुर, पुरूष परीक्षा, पृष्ठ 135
[164] अबुल फजल, आइने अकबरी द्वितीय, पूर्वोद्धत पृष्ठ 91

पूर्णमासी ब्राह्मणों का प्रिय त्यौहार था। युवतियां सौभाग्य और स्नेही के प्रतीक स्वरूप युवकों के हाथों में बाजूबंद के रूप में राखी (रेशम के रेशों और गोटों से बना धागा) बांधती थी।

सामाजिक त्यौहारा राम, कृष्ण; परशुराम और नरसिंह के जन्म से सम्बन्धित है। इस काल में सर्वप्रिय देवता कृष्ण थे, और उनके सम्प्रदाय का तेजी से प्रसार हो रहा था। पुरी से भगवान जगन्नाथ वर्ष में अनेक बार अपने रथ में बड़ी सज–धल के साथ निकलते थे। जगन्नाथ सम्पत्ति कृष्ण की मूर्ति के साथ ऐसा व्यवहार करते थे जैसे वह कोई शरीर देवता हों। कृष्ण जनसामान्य के मस्तिष्क की सारी पवित्रयमय और सर्वोत्तम भावनाओं का पूर्णरूप था। कृष्ण की लीला और गोपियो की क्रीड़ा उनके जीवन की प्रत्येक धरनाओं को अगाध भक्ति के साथ मनाया गया।[167]

आमोंदों और मनोरजनों में जन साधारण में नृत्य और गायन पर्याप्त लोकप्रिय थे। कोई भी अभ्यागत हिन्दुस्तान के किसी भारतीय ग्राम में आज भी होलिकोत्सव के अवसर पर लोकगीत गाने और नृत्य करने और चौपाल

---

[165] के.एम. अशरफ, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 247

[166] वही पृष्ठ सं. 188-89

[167] जदुनाथ सरकार, चैतन्य की जीवनी, कलकत्ता, 1960, पृष्ठ 164

पर कृषकों और अन्य लोगों को एकल होते देख सकते हैं। विशेषकर दो–आब में आल्हा खण्ड की लोकप्रिय गाथा और नल–दमयन्ती की कथा आज भी संध्या समय पर गायी जाती है। दिल्ली के शाही कारागार में राजा रत्नसेन से बचकर भागने और हमीर देव के संग्राम की दिल हिलाने वाली धातुओं ने भालों और कपियों को उनके गायन के लिए प्रेषित किया होगा। सावन (श्रावण) के गीत सार्वजनिक रूप से लोकप्रिय थे और वे सामूहिक रूप से एवं झूले पर भी आज के समान ही गाये जाते थे।[168]

कृष्ण संप्रदाय के नृत्य को अत्यधिक प्रोत्साहित किया था। स्त्री और पुरूष साथ मिलकर कभी–कभी अपने पैरों में घुंघरू बाँधकर नाचते थे।[169] लोकप्रिय नृत्य गरबा (गुजराती नृत्य) पश्चिम समुद्र तट पर प्रचलित था। नाट्यकला के लिए कृषक मार्गी स्वरूप अधिक उपयुक्त थे, क्योंकि वे राजमार्गी से अत्यधिक प्रेममय थे। कृष्ण लीलाऐं देश के कुछ हिस्सों में खेली जाती थी। इसमें कृष्ण के जीवन की परिचित एवं लोकप्रिय धरनाएं और उनकी विभिन्नताऐं गोपियों के साथ उनकी प्रेम लीलाऐं और क्रीडाएं राधा का विरह और शोककेश वध इत्यादि अभिनीत किये जाते थे।[170]

राम लीलाये जो राजमार्गी सम्प्रदाय और तुलसीदास के महाकाव्य के प्रचार से आरम्भ हुई और अभी मनायी जाती है, कृष्ण लीलाओं के आधार

[168] शाह ताहिर अल-हुसैनी, इंशानामा, पृष्ठ 182-183, द्वारा डॉ. बाँके बिहारी त्रिपाठी, पूर्वोद्धत
[169] विद्यापति ठाकुर, पदावली वंगीय, पृष्ठ 82
[170] निकोलो कोन्टी, पूर्वोद्धत, पृ. 235

पर विकसित की गई थीं। यह उन्मेष प्राचीन हिन्दू रंगमंच को पुर्नजीवित करने के लिए प्रर्याप्त नही था।

नृत्यकला और संगीत का भी पतन हो रहा था क्योंकि उनकी एक अलग जाति निर्मित कर दी गई थी। जिसका कार्य उच्च वर्गों के मनो विनोद और धर्म की सेवा तक सीमित कर दिया गया था।[171] हिन्दुओं के जीवन में नटों और बाजीगरों के कर्ठ प्रकार थे ये पशुओं के बिना बौर उनकी सहायता से भी खेल दिखाते थे। हिन्दुस्तान में नटों की अति प्राचीन परम्परा थी और प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी कला में अत्यधिक दक्षता प्राप्त कर ली थी। प्रत्येक शासन अपने एवं अपने अतिथियों के मनो–विनोद के लिए कुछ नट रखता था।[172] समाज में कई निम्न गर्दे के नट बाजारों में मेढा नचाकर या अपने बन्दरों का कई प्रकार से नचवाकर कई सामान्य जीविका कमा लेते थे।[173]

हिन्दू शिष्टाचार सामान्यतः मधुर और अनौपचारिक थे। हिन्दू अतिथि के आगमन पर उनका विशेष प्रकार से स्वागत होता था। साधारणतः अतिथि के आगमन पर उनका विशेष प्रकार से स्वागत होता था। साधारणतः अतिथि को पान एवं पुष्प समर्पित किये जाते थे।[174] समाज में

[171] मलिक मोहम्मद जायसी, पदमावत, पृष्ठ 253
[172] के.एम. अशरफ : हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां पूर्वोद्वत, पृष्ठ 255
[173] मलिक मोहम्मद जायसी, पद्मावत, पृष्ठ 154
[174] वही पृष्ठ 202

विशिष्ट अतिथि के आगमन पर ऊँचा आसन बनाया जाता था, उस पर पुष्प विखेर दिये जाते थे और उनके माथे पर लगाने के लिए लेप तैयार रख जाता था। कुदृष्टि की सम्भावित प्रभाव दूर करने के लिए कुछ दीपकों को उसके सामने डुलाकर 'आरती' की जाती थी।[175] अतिथि परिवार का गुरू या आध्यात्मिक उपदेशक होते थे और उनको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किये जाते थे आगमन पर उनके पैर धोये जाते थे। फिर उनकी देह पर चन्दन का लेप लगाया जाता, उनके गले पर पुष्प हार और सिर पर तुलसी के फूलों का एक गुच्छा चढाया जाता था। इन क्रियाओं के पश्चात गुरू के चरणों में दण्डवत हो दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करके व्यक्तिगत श्रद्धा प्रकट करते हैं।[176]

[175] विद्यापति ठाकुर, पदावली वंगीय, पृष्ठ 300
[176] जे.एन. सरकार, औरंगजेब, भाग 3, कलकत्ता, 1957, पृष्ठ 54

द्वितीय अध्याय

द्वितीय – अध्याय

औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य सम्बन्ध

मुगल सरकार के सभी कार्यकर्ता विदेशी थे। अकबर के शासनकाल में भी 70 प्रतिशत बड़े–बड़े अफसर फारसी तुर्की, उपबेग और अफगानिस्तानी थे और केवल 30 प्रतिशत ही भारतीय मुसलमान और हिन्दू थे। यद्यपि अकबर ने हिन्दुओं के लिए सरकारी नौकरियों का द्वार खोल रखा था, किन्तु वास्तव में बहुत कम हिन्दू सरकारी नौकरियों में नियुक़्त किये गये थे। अकबर ने 40 वर्ष में 500 और उसके ऊपर के मनसबों पर केवल 21 हिन्दू नियुक्त किये, जिसमें 17 तो आमेर, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर और बुन्देलखण्ड के राजपूत थे। यद्यपि अकबर के शासन के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ प्रारम्भ हो चुका था, तथा सभी मुगल सम्राटों की शाही नौकरियों में हिन्दुओं की संख्या बहुत कम हो गयी थी।[1] नवम्बर 1665 में औरंगजेब ने गुजरात प्रान्त में घोषणा जारी की कि अहमदाबाद नगर और गुजरात के परगनों में हिन्दू लोग अन्ध विश्वास के साथ दीपावली पर दीपक जलाते हैं और होली पर अश्लील बातें मुख से निकालते हैं। चकलों और बाजारों में होली जलाते है और चुराकर या बलपूर्वक लोगों की लकड़ियां उसमें डाल देते हैं, इसलिए आदेश दिया

---

[1] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव : मुगल कालीन भारत, आगरा, 1998 पृष्ठ संख्या 509

आदेश था वह अच्छा था। लेकिन साथ ही दीपावली की रोशनी को निषेध करने से हिन्दुओं की भावनाएं उत्तेजित होनी ही थी।

1668 ई. में औरंगजेब ने हिन्दू तीर्थयात्राओ को बन्द करवा दिये थे। खाफी खाँ का एक कथन है कि कुछ विशेष दिनो पर विशेष जाति अगणित हिन्दू स्त्री पुरूष अपने मन्दिरों में एकत्र होते थे, और वहाँ लाखों रूपये का क्रय– विक्रय होता था, जिससे सूबे के कोष में बड़ी आय होती थी।[2] औरंगजेब ने धार्मिक शिक्षकों को दण्डित करने का आदेश भी जारी कर दिया, जिसका अपराध केवल अपने पास आये शिक्षार्थियों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करना था।[3] जहाँ तक हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्धों एवं उनकी धार्मिक नीति के बारे में यदि देखा जाय तो अकबर को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों ने हिन्दू धर्म को लताड़ा है, जबकि औरंगजेब सम्पूर्ण जयपुर के मन्दिरों को नष्ट करने के लिए अस्वुतरिण नामक एक प्रतिनिध को भेजा, उसने कुशलतापूर्वक सब मन्दिरों को तोड़ दिया केवल एक मन्दिर में विरोध हुआ क्योंकि वह फौजदार के सैनिको का मन्दिर था।

---

[2] एस आर शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 329-30

[3] साकी मुस्तैद खाँ, मआसिर-ए-आलमगिरी, अनुवाद जदुनाथ सरकार, कलकत्ता, 1947, पृ. 81

और उसे तब तक न तोड़ सके जब तक कि सभी राजपूत मृत्यु के ग्रास नही बन गये।[4] मन्दिरों को तोड़ने तथा उस पर मस्जिद का निर्माण करवाना औरंगजेब के जेहन में कूट–कूट कर भरा था। उसकी यह नीति किसी भी मुगल साम्राज्य के अन्य सम्राटों से बिल्कुल अलग था। औरंगजेब के कट्टरता के विषय पर कि उसने गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त होने पर 1687 ई. में हैदराबाद के मन्दिरों को नष्ट कर उसको मस्जिदों में परिणत करने का आदेश जारी कर अपने कार्य को उचित सिद्ध किया। बुन्देलखण्ड में स्थित ईर्च की जुम्मा मस्जिद औरंगजेब के शासनकाल में एक हिन्दू मन्दिर की सामग्री से निर्मित हुई।[5] राजपूत युद्ध समाप्त होने पर जब औरंगजेब ने अजमेर को छोड़कर दक्षिण जाने का निश्चय किया तो 21 मई 1681 ई. को उन श्रमिकों के अधीक्षक को आदेश दिया कि मार्ग के सब मन्दिरों को नष्ट कर दिया जाय, औरंगजेब ने 13 अक्टूबर 1681 ई. को जयपुर से प्रस्थान किया तो कमर–उद–दीन ने सुझाव दिया कि आस–पास जो मन्दिर बन्द किये जा चुके थे उसे नष्ट करवा दिया जाय। किन्तु औरंगजेब इन मन्दिरों के बन्द रहने से ही सन्तुष्ट था, क्योंकि उस क्षेत्र में मुस्लिम निवास नही कर रहे थे।[6]

---

[4] जयपुर रिकार्ड II पृष्ठ संख्या 16 I

[5] आर्कियोजाजिकल सर्वे रिपोर्ट VII, पृष्ठ 31

[6] एस आर शर्मा, पूर्वोद्धत पृ. 331-32

मुगलो के सभी सम्राटों में औरगंजेब एकदम अलग था, क्योंकि वह साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ इस्लाम का प्रचारक था। वह चाहता था कि इस्लाम ही इस्लाम दुनिया में हो अन्य धर्मों का नामोनिशां मिट जाय। औरंगजेब ने बड़ी धूर्तता के साथ हिन्दू धर्म पर धीरे–धीरे आक्रमण किये। अपने राज्यकाल के पहले ही वर्ष में बनारस के एक पुजारी को दिये गये अधिकार पत्र में उसने घोषित किया कि उसका धर्म नये मन्दिर बनाने की आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरों को नष्ट करने की आज्ञा नही देता है।

सन् 1644 ई. में जब वह गुजरात का सूबेदार था, तो उसने अहमदाबाद में तत्काल बने हुए चिन्तामण के हिन्दू मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया। उसी समय उसने गुजरात के और भी हिन्दू मन्दिर को गिरवाया था। अपने शासन काल के प्रारम्भ में ही औरंगजेब ने एक हुक्म निकाला था कि कटक से लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के प्रत्येक हाकिमों को सारे मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी थी। पिछले 12 वर्ष तक के भीतर बने सभी मिट्टी के झोपड़ी में बनी मन्दिर को भी उस हुक्म के अन्तर्गत माना गया था। उसने पुराने मन्दिरों की मरम्मत को बन्द करवा दिया था।[7]

[7] जदुनाथ सरकार : औरंगजेब तीसरी जिल्द की परिशिष्ट, कलकत्ता, 1973 पृष्ठ 313

सम्राट औरंगजेब 1659 ई. में मुद्राओं पर कलमा अंकित करवाना बन्द कर दिया था। क्योंकि औरंगजेब के विचार में कि हिन्दुओं के प्रयोग से नष्ट हो जाता है।[8] औरंगजेब के शासकीय वर्षों मे गिनती करने के लिए सूर्य सम्बन्धी इलाही सम्वत् का प्रयोग बन्द करा दिया गया। किन्तु हिजरा के चन्द्र सम्वत् के प्रयोग से प्रशासन के कार्यो में अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होने लगी। अतः यह निर्णय किया कि प्रत्येक शासकीय वर्ष का प्रारम्भ रमजान मास की प्रथम तिथि से किया जाय। आलमगिरी में इलाही सम्वत का प्रयोग मिलता है। सूर्य सम्वत इरानी सम्राटों के परम्परागत प्रयोग से पवित्र हो चुका था। किन्तु अपने शासन के द्वितीय वर्ष से ही औरंगजेब ने सूर्य सम्वत तथा नववर्ष का समारोह रोक दिया था।[9] किसी सम्राट की धार्मिक कट्टरता उसके साम्राज्य विस्थापन एवं राज्य के शासन पर प्रश्न चिन्ह अंकित करने का कार्य करता है। साम्राज्य किसी एक जाति वर्ग का नही होता है। इसलिए एक वर्ग को दबाना तथा अपने जाति वर्ग को बढ़ाना उस समाज के सामाजिक सम्बन्धों अर्थात हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्धों पर प्रश्न चिन्ह अंकित करना है।

औरंगजेब ने अपने शासन के ग्यारहवें वर्ष में झरोका प्रर्दशन पर रोक लगा दिया था, क्योंकि वह समारोह एक प्रकार की मानव पूजा प्रतीत

[8] औरंगजेब, फरमान्स टू मुहम्मद हासिम अनुवाद, जदुनाथ सरकार, 1906, जे.ए.एस.बी., 223-55
[9] मआसिरे आलमगिरी, पूर्वोद्धत, पृ. 176

समारोह के बन्द होने से लोगों की कठिनाइयां बढ़ गयी। उसने सोने, चाँदी तथा अन्य पदार्थों के बराबर सम्राट को तोलने की प्रथा समाप्त कर दी गयी। बुराई से बचने के लिए तुलादान का महत्व स्वीकार किया तथा सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिए तुलादान करने की सहमति दी।[10]

अप्रैल 1669 ई. को उसने हुक्म दिया कि काफिरों के सब शिक्षालय और मन्दिर गिया दिया जाय तथा उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबा दिये जाये। अब उनकी विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर बनारस में विश्वनाथ जी के मन्दिर और मथुरा में केशवराय जी के मन्दिर के समान बड़े मन्दिर पर भी पड़ी। जिन्हें सारे भारत में हिन्दू जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। मुसलमानों की धर्मान्धतापूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष रूप से आघात होते रहे हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण मथुरा की ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँ के हिन्दुओं को दबाने के लिए औरंगजेब ने अब्दुलनवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। कई वर्ष पहले दारा ने उपहार स्वरूप मथुरा के केशवराय मन्दिर में पत्थर का जगमोहक जंगला लगवा दिया था,

---

[10] अली मुहम्मद खान, मराते अहमदी, अनु. एम. एफ. लोखण्डवाला, बड़ौदा, 1965, पृ. 352

आज्ञा दे दी और यह भी हुक्म दिया कि मथुरा शहर का नाम बदलकर इस्लामाबाद कर दिया जाय। साम्राज्य के सारे सूबों परगनों शहरों और महत्वपूर्ण स्थानों में जनता के सदाचार की देखरेख करने के लिए मुहतसिब नियुक्त किये गये। जिसका प्रधान कर्तव्य यह भी होता था कि वे हिन्दुओं के तीर्थस्थानों और मन्दिरों को विध्वस करके उसे तहस–नहस कर दें। जून 1680 में मेरता के स्वामिभक्त राजा के राजधानी के सारे मन्दिर तुड़वा डाले गये। गुजरात में हिन्दुओं के धर्मार्थ 'वजीफे' के रूप में भी जमीन दे दी गयी थी, वे सब सन् 1674 ई. में जब्त कर ली गयी थी।[11] औरंगजेब के बीजापुर एवं गोलकुण्डा के आक्रमण पर कुछ धार्मिक मुसलमानों ने इस युद्ध का कड़ा विरोध किया। इस कारण उस सुदूर–शेख–उल–इस्लाम को पदच्युत कर दिया गया। जब उसके उत्तराधिकारी अब्दुल्ला ने भी मुसलमानों का विध्वंश करने का विरोध किया तो उसको सम्राट के समक्ष जाना निषेद्ध कर दिया।[12]

---

[11] जदुनाथ सरकार, औरंगजेव, भाग 3 परिशिष्ट में देखें, कलकत्ता, 1973

[12] खफी खाँ, मुन्तखव-उल-लुबाव, इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग 6, पु. 245

औरंगजेब की यह कट्टरता उसके साम्राज्य विस्तारक नीति तथा उसके धार्मिक नीति पर स्पष्ट प्रभाव था। साम्राज्य विस्तार में जब वह बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर आक्रमण किया तो स्वयं धार्मिक मुसलमान इस बात का उसका विरोध किया। लेकिन उसकी हठधर्मिता तथा कट्टरपंथिता ने शेख–उल–इस्लाम को पदच्युत कर दिया। औरंगजेब की धार्मिक विरोधी नीति के चुंगी कर में भेदभाव था क्योंकि 10 अप्रैल 1665 ई. को बेचने के लिए आने वाली वस्तुओं पर महसूत लगने के लिए एक नियम जारी किया जिसके अनुसार मुसलमान सौदागरों की वस्तुओं के तुल्य पर तथ हिन्दुओं से 5 प्रतिशत कर लिया जाता था। बादशाह ने 9 मई 1667 ई. को मुसलमान सौदागरों को चुंगी कर बिल्कुल उठा दिया, परन्तु हिन्दू सौदागरों से पुराने नियमों से कर लिया जाता था। उससे राज्य की वास्तव में हानि की सम्भावना और भी बढ़ गयी क्योंकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानों को प्रलोभन देकर अपने माल को उनका कहक़र निकलवा देने की चालाकी को प्रेरित करने लगे थे।[13]

मुगल सम्राट के साम्राज्य में इस प्रकार जाति विरोधी नीति उसका साम्राज्य उसके साम्राज्य को ही प्रभावित न करती बल्कि उनकी स्पष्ट स्वच्छ न्याय की तरफ भी अंगुलियाँ उठने के संकेत देती है। किसी भी सम्राट की यह नीति उसके द्वारा किसी भी क्षेत्र विकास में बाधक का कार्य

[13] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग III, पूर्वोद्धत पृष्ठ 198

करेगा। क्योंकि साम्राज्य को सभी जनता उस आदर्श सम्राट के प्रति उत्तरदायी होती है। काफिरों पर आर्थिक दबाव डालने की नीति का एक और साधन यह था कि धर्म परिवर्तन करने वाले को पुरस्कार मिलते थे। मुसलमान हो जाने की शर्त पर हिन्दुओं से ऊँचे पद दिये जाने कैद से छुटकारा पाने अथवा विवादग्रस्त जायजाद पर उनका अधिकार संरक्षित करने को प्रलोभन दिया जाता था। औरंगजेब की धर्म परिवर्तन की नीति 1666 ई. से जारी की और जीवन पर्यन्त जारी रखा।[14] अपने साम्राज्य में किसी भी सम्राट द्वारा एक वर्ग के साथ इस तरीके का व्यवहार न तो एक आदर्श सम्राट और न ही आदर्श साम्राज्य को दर्शाता है। मूर्तिपूजकों की धार्मिक परम्पराओं के निषेध तथा मन्दिरों एवं अन्य धर्मिक स्थानों को बन्द कराने के सम्बन्ध में सम्राट का आदेश समस्त प्रान्तीय शासकों और स्थानीय अधिकारियों के पास पहुँच गया। उक्त आदेश में यह आशा प्रकट की गयी कि प्रतिबन्धों के फलस्वरूप कुछ मूर्तिपूजक इस्लाम स्वीकार कर लेंगें। कुछ ब्राह्मणों की त्रुटियों के कारण समस्त हिन्दू धर्मानुयायियों के पूजा स्थलों का विध्वंश करना घोर अनाचार था। इस कारण उसे अकबर के भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करने की उसकी योजना धूमिल हो गयी इसी नीति ने मुस्लिम शासकों को भारत में पुनः इस्लाम के खंड़गधारी विजेता बना दिया। औरंगजेब के हिन्दू धर्म के विरूद्ध जिन

[14] श्रीराम शर्मा, मुगलों की धार्मिक नीति, कलकत्ता, 1940, पृष्ठ 190

दमनकारी नीति को आरम्भ किया वह निशचित रूप से भारत व अन्य स्थानों के पूर्वकालीन मुस्लिम शासकों की परम्पराओं के विपरीत थी।[15] मुस्लिम दमनकारी नीतियों से भयभीत होकर बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन मन्दिर के पुजारी मूर्तियां उखाड़ कर चुपके से रात को भाग गये। उनके व भगवान के लिए शहरी क्षेत्र में कोई आशय न था। अतः वे भागकर जोधपुर राज्य मे पहुँचे। महाराज जसवन्त सिंह उस समय शाही अभियान पर राज्य से बाहर गये हुए थे और उनकी अनुपस्थिति में राज्य के अधीनस्थ अधिकारियों ने अपने को इस योग्य नही समझा कि वे उस प्रभु को आश्रय दे सकें तो तत्काल ही मुगल सम्राट को क्रुद्धकर चुका था। मन्दिर के पुजारी दामोदर लाल ने गोपीनाथ को महाराज जयसिंह के पास यह प्रार्थना करने के लिए भेजा कि प्रभु को इतना स्थान दिया जाय, जिससे वे शान्तिपूर्वक अपने धर्म की सेवा कर सके। सिसोदिया राजकुमार ने दामोदर लाल को आमंत्रित किया और 5 दिसम्बर 1671 ई. को यह दल चप्पा सेनी से विदा हो गया। महाराज राजसिंह ने राज्य की सीमा पर राजकीय ढ़ंग से इस दल का स्वागत किया और भगवान को सिहर नामक स्थान पर धार्मिक समारोह के साथ स्थापित करने का निश्चय किया गया।

---

[15] श्रीराम शर्मा, वही पृष्ठ 153

दिसम्बर 10 मार्च 1672 ई. का केन्द्र बना हुआ है। सितर का लघुगांव द्वारकनाथ के नाम से एक महत्वपूर्ण नगर में पारित हो गया।[16]

इसमें सन्देह नही कि यदा–कदा साधारण सद्बुद्धि की तर्क पर गैर राजनैतिक की धर्म पर विजय हो जाती थी। कई बार सम्भाव की दुर्बलता के कारण हर एक सम्राट या हाकिम के लिए यह असम्भव हो जाता था कि वह इस भयंकर सहिष्णुतापूर्ण नीति का सर्वत्र एवं सदैव शक्ति से पालन करवा सके। इसी कारण मुसलमानी शासनकाल में कई बार ऐसे भी समय आये जब हिन्दुओं के साथ सहिष्णुता की नीति बरती गयी और उनके जानमाल की पूरी–पूरी रक्षा की गयी। यदा–कदा कई बुद्धिमान और उदार विचार वाले बादशाहों ने हिन्दुओं को प्रोत्साहन भी दिया, साहित्य एवं कला की उन्नति करने के लिए उनको प्रेरित किया, धन एवं ऊँचे पद प्रदान किये और वे उनका राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्धिपूर्ण हो गया। परन्तु इस प्रकार अपने धर्म के प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद स्परूप यदा–कदा ही देखने में आता था। इस प्रकार की सारी कार्यवाही मुस्लिम संसार की दृष्टि से इस्लाम के सच्चे सिद्धान्तों के विरूद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासन के प्रधान कर्तव्यों की अक्षम्य दुष्टतापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी। मुसलमान शासक की सारी सत्ता मुसलमानी तलवारों पर ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार

[16] गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर का इतिहास, अजमेर, 1932 पृष्ठ 135

विचार वाले सुलतानों को ये मुसलमान सैनिक ऐसा धर्म द्रोही शासक समझते थे। जो किसी भी तरह उन पर शासन करने के योग्य नही था। इसलिए गैर मुसलमानों की वृद्धि एवं उन्नति एवं निरन्तर उनका अस्तित्व बना रहता है मुसलमानी राज्य के आधारभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से सर्वथा असंगत था। जब तक था तो सारे विरोधी नष्ट न जो जाय स्वयं मुसलमानों के हाथों से ही सत्ता निकल जाय, तब ऐसा राजनैतिक समाज बहुत ही स्थायी और अनिश्चितापूर्ण बना रहता था। इस प्रकार उस राज्य में शासक और शक्तियों के बीच एक परम्परागत प्राचीन पारस्परिक विरोध की भावना निरन्तर बनी रहती थी। इस भावना के कारण ही विभिन्न धर्मावलम्बियों के जन समूह वाले मुसलमानी राज्य का सदैव अन्त में विनाश हुआ है और औरंगजेब के शासनकाल में यह अनिवार्य सत्य पूरी तरह चरित्रार्थ होकर ही रहा।[17] सहभोज सम्बन्धी रोक–टोक के साथ ही धार्मिक सिद्धान्तों और कृत्यों में विभिन्नता आपस में शादी ब्याह करने का निषेध तथा सांसारिक जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में विपरीतता के कारण भी हिन्दू मुसलमानों में उकान्वय होना सर्वथा असम्भव था। पुनः कुरान में दिये आदेशों के अनुसार चलाये जाने वाले कट्टर मुसलमानी शासन में हिन्दुओं के जीवन की सर्वथा असम्भव और भार स्वरूप हो जाता था। ईश्वर के सर्वोच्च सेवक होने के नाते अपने कर्तव्यों को पूरा–पूरा सक्षम कर उसे

[17] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, III, पूर्वोद्धत पृष्ठ 603

कार्य रूप में परिणत करने के समय अनुकरणीय सच्चरित्रता तथ धार्मिक जोश वाला कोई बादशाह कैसी भी झिझक या किसी के प्रति विशेष कृपा दिखाये बिना यदि अपनी नीतियों का तर्क समस्त चरम सीमा तक ले जाते हैं। तब उस राजनीति का अन्तिम परिणाम क्या होता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें औरंगजेब में देखने को मिलता है। जिस पर पाठशालाओं में हिन्दू शास्त्रों का पठन–पाठन होता था, उन्होंने उसे बन्द करवा दिया। हिन्दुओं के मन्दिर तुड़वा डाले गये। हिन्दुओं के मेलों पर रोक लगा दिया गया। अपने रहन सहन द्वारा उन्हें अपने दलित होने का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करना पड़ता था। साथ ही विशेषकरों द्वारा उन पर आर्थिक भार भी बहुत अधिक डाल दिया गया था। उन्हें अब सरकारी नौकरी भी नही मिल सकती थी। इस प्रकार औरंगजेब के राज्य में हिन्दुओं का अपना जीवन अन्धकार में ही बितामना पड़ता था। वे न तो अपने धर्म से कोई सान्त्वना प्राप्त कर सकते थे और न उनका अपना कोई सामाजिक संगठन बन सकता था। सार्वजनिक आमोद–प्रमोद भी उनके लिए निषिद्ध था। राज्य में अनेकों कर उनका स्वार्जित धन भी उनके पास नही रहने देते थे। स्वच्छन्द स्वाभाविक गतिविधियों से तथा समुचित सुयोगों के प्राप्त होते रहने से उत्पन्न बल मानवीय आत्म–विस्वास भी उसने रहने नही दिया गया था। संक्षेप में उन्हें जीवनभर सार्वजनिक अपमान और

राजनैतिक असर्थताओं का निरन्तर सामना करना पड़ता था, जहाँ तक वह हिन्दू बना रहता था, वहाँ तक स्वर्ग एवं पृथ्वी दोनों के द्वार उन मानव के लिए बन्द थे। अतएव औरंगजेब के शासन का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू निरन्तर विद्रोह करने के लिए उत्तेजित होते गये। यही नही हिन्दुओं की बुद्धि, उसके संगठन और उनके आर्थिक साधन, सबका ही ह्रास होता गया तथा साम्राज्य की दो तिहाई आबादी के इस पतन से वह साम्राज्य भी अशक्त हो गया।[18]

औरंगजेब के शासनकाल में योग्यता की अपेक्षा जाति को अत्यधिक महत्व दिया जाता था क्योंकि औरंगजेब के शासनकाल में एक भी हिन्दू प्रान्तीय शासक के पद नियुक्त नही था। अहकाम–ए–आलमगिरी में औरंगजेब का एक ऐसा आदेश जिसके अनुसार कोई राजपूत फौजदार अपना प्रान्तीय शासक नियुक्त नही किया जा सकता था।[19] हिन्दुओं का राजस्व एवं लेखा विभाग के निम्न पदों पर एकाधिकार था जबकि मुसलमान उस निम्न पद को प्राप्त नही कर सकते थे। साम्राज्य में सरकारी नौकरियों के लिए वे सेना में भर्ती होना अच्छा समझते थे । अन्य अतिरिक्त विभागों के निजी सहायक प्रायः हिन्दू थे। औरंगजेब के शासनकाल में कुल 148 हिन्दू मनसबदार की तुलना में शाहजहाँ के काल

---

[18] वही,

[19] अहकाम-ए-आलमगिरी, पृष्ठ संख्या 72, देखें इलियट एवं डाउसन, पूर्वोद्धत, भाग 4

में 51 हिन्दू मनसबदार कम नही कहे जा सकते क्योंकि शासन के तीस वर्ष के अन्त में अब भी हिन्दू मनसबदार जीवित थे।[20] राजमहल के सम्मुख स्थिति राजमन्दिर को धराशायी कर दिया गया। 24 जनवरी 1680 ई. को औरंगजेब जब उदयसागर की यात्रा पर गया तब उसने आज्ञा दी कि उक्त सरोवर के तट पर स्थित 3 मन्दिरों को धराशायी कर दिया जाय। 29 जनवरी को सूचना मिली की उदयपुर और उसके आस–पास के 172 मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया। 22 फरवरी 1680 को औरंगजेब ने चित्तौड़ की यात्रा की तब वहाँ 63 मन्दिर नष्ट किये गये। इस तरह उदयपुर में 235 मन्दिर नष्ट किये गये।[21]

एक शासक का किसी एक धर्म को बढ़ावा तथा उसी के साम्राज्य में अन्य धर्मों के साथ वह न्यायपूर्ण कृतिकार्य अशोभनीय एवं निन्दनीय है। प्रजा उस देश के राजा की सन्तान होती है और उसकी सम्पूर्ण जिम्मेदारियों का वहन उस राजा की नैतिक जिम्मेदारियां होती है। जिसका निर्वहन औरंगजेब करने में पूर्ण रूपेण असफल रहा। दिल्ली सल्तनत एवं उदयपुर के राजपूतों में युद्ध चलने के कारण वहाँ के मन्दिरों का विध्वंश अनुमानितः राजपूतों को शान्ति याचना करने पर विवश करने हेतु किया गया था। अतः इसे एक निर्दयी सैनिक कार्यवाही की संज्ञा प्रदान की

---

[20] श्रीराम शर्मा, पूर्वोद्धत, पृ. 134
[21] अदाव-ए- आलमगिरी देखें इलियट एवं डाउसन, पूर्वोद्धत, भाग 8

गयी। राणा के कनिष्ठ पुत्र भीम ने प्रतिरोध के लिए अहमदाबाद पर आक्रमण कर दिया और वहाँ की अनेक छोटी–बड़ी मस्जिदों को नष्ट कर दिया।[22] औरंगजेब ने जब कर्नाटक की विजय प्राप्त किया, तो उसने तिरूपति के प्रसिद्ध मन्दिर को खड़ा रहने की अनुमति प्रदान कर दी। इसका मूल कारण यह था कि इस मन्दिर की यात्रा करने वाले हिन्दुओं से बहुत बड़ी राशि राजस्व के रूप में प्राप्त होता था तथा दूसरा यह कि इस मन्दिर को गिराने से एक ऐसी क्रान्ति उत्पन्न हो जायेगी जिसको दबाना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। औरंगजेब ने मायापुर (हरिद्वार) तथा अयोध्या के मन्दिरों को नष्ट कर दिया।[23]

औंरगजेब के शासनकाल का महत्वपूर्ण स्वरूप था हिन्दुओं के प्रति उसका अत्याचार। यदि ऐसा नही होता तो उसका शासनकाल अत्यन्त अशुभ और दुर्भाग्यपूर्ण होने के बजायअत्यन्त कीर्तिमान होता। औरंगजेब की रगों में हिन्दुओं का भी उतना रक्त था जितना कि मुसलमानों का। परन्तु हिन्दुओं से उसे बहुत घृणा थी। उसकी दादी शाहजहाँ का पिता केवल आधा मुसलमान था क्योंकि उसकी माँ भी हिन्दू थी। औरंगजेब की बेगमों में से एक जिससे बहादुर शाह उत्पन्न हुआ था नावाबबाई हिन्दू थी। वह कश्मीर के राजपूत राजा राजू की लड़की थी। औरंगजेब की

[22] ईश्वरदास नागर, फुतुहाते आलमगिरी, द्वारा जहीरूछृछीन फारूखी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, 1980, पृ. 585
[23] मनूची, स्टोरिया डो मोगोर, अनु. विलियस इरविन भाग 2, लन्दन, 1907-8, पृ. 294

प्रेमिका जो बुरहानपुर में दक्षिण सूबेदारी के समय मुग्ध हो गयी थी। हीराबाई भी हिन्दू थी। औरंगजेब के संसर्गों की इतनी लम्बी सूची हो लेकिन औरंगजेब की कट्टरता अकबर की उदारता की भाँति अन्तःपुर में उत्पन्न नही हुई थी।[24] औरंगजेब ने हिन्दू धर्म पर बड़े विषैले ढ़ंग से आक्रमण किया था। पहले तो वह बहाना किया कि काफिरों के केवल नये मन्दिरों का निर्माण बन्द कराना चाहता है। उसके राज्य के आरम्भ में ही कर्मचारियों को कटक से मेदिनीपुर तक प्रत्येक गांव और कस्बे में आदेश दिया गया कि गत दस या बारह वर्ष के अन्दर जो छोटे या बड़े मन्दिर बनाये गये हों वे सब गिरा दिये जाये और पुराने मन्दिरों की मरम्मत न की जाय।[25]

एक सम्राट को सिर्फ अपने धर्म को बढ़ावा देना तथा साम्राज्य के अन्य धर्मों के साथ अन्यापूर्णनीति का पालन करना अशोभनीय एवं अमर्यादित है। साम्राज्य की जनता सुलतान की आंखे होती हैं। एक के साथ अच्छा एवं दूसरे के साथ बुरा व्यवहार किसी भी धर्म का मजहब इस बात का आदेश नही देता जबकि धार्मिक स्वतन्त्रता इस धर्म के लिए समान है। यही घृणित कार्य औरंगजेब को कट्टरता बना देता है। ईश्वर की जय हो उसने हमें इस्लाम धर्म दिया है, झूठे देवताओं के विनाशक के

---

[24] श्रीराम शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत पृष्ठ 326
[25] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पृष्ठ 327

शासन में दुःसाध्य काम सफलतापूर्वक पूरा हो गया है। सच्चे धर्म को ऐसी बलवती सहायता देने से राजाओं के मुख पर जबदस्त थप्पड़ लगता है और मूर्तियों की भांति उसके मुख भी भयभीत होकर दीवार से जा चिपके हैं। काफिरों के मन्दिरों की रत्नजड़ित मूर्तियों को आगरा मंगवाया गया और नवाब बेगम साहब की सीढ़ियों के नीचे रखा गया, ताकि वे मुसलमानों के पैरों के नीचे हमेशा खूँदी जायें।[26] 20 नवम्बर 1665 ई. को जारी किये गये सम्राट के आदेश के अनुसार होली समारोह रोक दिया गया। जदुनाथ सरकार के अनुसार यह आदेश होली के दिनों में शान्ति बनाये रखने के लिए जारी किया गया था।[27] यद्यपि कि शान्ति स्थापित करने का उद्‌देश्य सिर्फ होली के दिनों में ही तो यह कार्य अनुचित है क्योंकि त्यौहार तो आनन्द और खेल का ही होता है। लेकिन यदि त्यौहार अपनी मर्यादा की सीमा को लांघ जाय तो उसे रोकने के कड़े उपाय करना पड़ता है। 1692 ई. को बनेड़ा के राजा भीम सिंह था किशन सिंह दक्षिण भारत में नियुक्त उन्होंने होली मिलन समारोह मनाने की व्यवस्था की किन्तु निषेध अधिकारी द्वारा रोकने पर उच्च पद प्राप्त अधिकारी के सम्मुख अपनी न चलती देखकर उन्होंने इस बात की सूचना सम्राट को दे दिया अतः सम्राट के आदेश पर होली मिलन समारोह रोक दी गयी।[28]

---

[26] वही
[27] वही, पृ. 261
[28] मीराते अहमदी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 261

जारी किये गये आदेश के अनुसार दिल्ली में भी यमुना तट पर दाह संस्कार करने पर राजकीय प्रतिबन्ध लगा दिये गये।[29]

इस्लाम धर्म के मूल तत्वों के अनुसार प्रत्येक मुसलमानी राज्य धर्म प्रधान होता है। जिसका सच्चा शासन और मात्र अधिकारी ईश्वर ही है और संसार पार्थिक सुल्तान खुदा ही प्रतिनिधि मात्र होते है जिनका प्रधान कर्त्वय रही रहता है कि वे ईश्वरी नियमों का सबसे पाल करवायें पुनः एक सच्चे धर्म इस्लाम को चारों ओर फैलाना और उसका पालन करवाना ही प्रत्येक राजकीय शासन का प्रधान उद्देश्य होता है। इस प्रकार के राज्य में इस्लाम धर्म में अविश्वास राज्य के विरूद्ध विद्रोह ही समझा जाता है। क्योंकि विधर्मी व्यक्तियों राज्य के वास्तविक राजा ईश्वर की सत्ता का अपमान करता है, और उसके प्रतिद्वन्दी विरोधियों अर्थात झूठे देवी–देवताओं को पूजता है। इसलिए कट्टर इस्लाम के अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति या धर्म के प्रति कोई भी उदारता दिखाना इस धर्म के अनुसार पाप से कम नही समझा जाता है। बहु देववाद अर्थात एक परमेश्वर के साथ ही अनेक अन्य देवताओं पर भी विश्वास रखना इस्लाम के अनुसार घोर पाप समझा जाता है, अतएव इस्लामी धर्मशास्त्र में उसके

[29] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, बंबई, 1970, पृ. 145

प्रधान एव महत्वपूण कतव्य बताया गया है। काफिरों के देश (दार–उल–हर्ब) में युद्ध करके इसको उस समय तक चलाये जाना चाहिए। जब तक कि वह इस्लामी राज्य के दायरे (दार–उल–इस्लाम) में पूर्ण रूप से शामिल नही हो जाये। धार्मिक एवं राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुसार ऐसी विजय के बाद उस देश के काफिर की सारी आबादी जीतने वालों की गुलाम बन जाती है। सम्पूर्ण जनसमाज को इस्लाम धर्म में दीक्षित करके उसका परिवर्तन करना और हर प्रकार के धार्मिक मतभेदों को मिटा देना ही मुसलमानी राज्य का आदर्श है। किसी भी मुसलमानी समाज में कोई काफिर रहने दिया जाता है, तो इसी कारण कि इन दोषों को मिटाना सम्भव नही हो। ऐसी परिरिस्थिति केवल कुछ ही काल के लिए रह सकती ।[30] 1091 और जब पवित्र माह समाप्त हो जावें तब उन सारे व्यक्तियों जो ईश्वर के साथ अन्य देवों का नाम जोड़ते हैं, जहाँ मिलें मार डालों। पर यदि वे धर्म परिवर्तन करते हो तो उन्हें छोड़ दो और उन्हें अपनी राह जाने दो। (कुरान IX, 4,6) उन विधर्मियों से कहो कि यदि वे अपना अविश्वास छोड़ दें जो कुछ हो चुका है, उसके लिए उसे क्षमा कर दिया जायेगा। पर पुनः उसी विधर्मी मार्ग पर लौट पड़े तो उनमें उस समय तक लड़ो जब तक कि यह भेदभाव दूर होकर एक ईश्वर का मत

[30] आर्नल्ड ह्यूग (सम्पादक), इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, लन्दन, 1913-38 पृष्ठ 710

धर्मावालब्यिों में लिखा जा सके। अतएव कोई भी अन्य धर्मावालम्बी किसी मुसलमानी राज्य का नागरिक कदापि नही हो सकता है। वह उस राज्य के दलित समाज का एक सदस्य बन जाता है और उसकी राजनैतिक स्थिति निकृष्ट गुलामी से कुछ ही अच्छी होती है। राज्य के साथ उसका एक प्रकार का ठेका (जिम्मा) हो जाता है। ईश्वर द्वारा दिये हुए जीवन और धन का भोग कर सकने के लिए इस्लामी शासक उसे जो प्राणदण्ड देते हैं उसके बदले में उसे कई एक राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारों का त्याग करना पड़ता है।[31] इस प्रकार कर के रूप में कुछ धन (जजिया) देना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। अपनी जमीन के लिए उसे भी कर (विराम) देना पड़ता है। पहले समय के मुसलमान यह कर नही देते थे। सेना के खर्च के लिए उस पर एक और कर का भार आता है। इस प्रकार के बदले में यदि वह स्वयं सेना में भर्ती होकर सेवा करना चाहते तो भी उसे सेना में भर्ती नही किया जाता है। उस विधर्मी के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने दरिद्र वेश एवं दीनतापूर्ण आचरण से यह स्पष्टता वह बतावें कि वह विजित समाज का एक ही व्यक्ति है।

[31] वही

मुसलमानों के अतिरिक्त कोई भी विधर्मी (जिम्मी) किसी प्रकार का महीन कपड़ा नही पहन सकता है, और न घोड़ों पर ही चढ़ सकता है और न ही शस्त्र धारण कर सकता है। विजयी जाति के प्रत्येक सदस्य के साथ सम्मानपूर्वक पूरी–पूरी दीनता दिखाते हुए ही उससे व्यवहार करना चाहिए।[32] इस्लामी कानून की पुस्तकों में दी हुई बातों के आधार पर विद्वान काजी मुघीसुद्दीन ने अलाउद्दीन खिलजी को बताया कि इस प्रकार के दुर्व्यहारों से जिम्मी पूरी–पूरी दावेदारी सच्चे इस्लाम धर्म के गौरव की स्थापना और झूठे विधर्मियों का दमन स्पष्ट रूप से हो जाता है। उसको मार डालने, लूटने और कैद करने की आज्ञा हमें पैगम्बर ने दी है। यहाँ हनीफ द्वारा प्रतिपादित धार्मिक व्यवस्था ही मानी जाती है। इस बड़े इनाम के अतिरिक्त अन्य किसी धार्मिक विद्वानों के ग्रन्थों में हमें हिन्दुओं से जजिया कर वसूलने की आज्ञा नही दी गयी है। अन्य सारे मुसलमानी धर्म क्रेताओं के अनुसार हिन्दुओं के लिए एक ही नियम है। ''इस्लाम धर्म स्वीकार करना या मृत्यु''। जिम्मी को कानूनी अदालत में गवाही देने का अधिकार नही होता है। फौजदारी कानून से रक्षा पाने और विवाह सम्बन्धी कई मामलों में भी उसे चुकाना उसका प्रधान कर्तव्य होता था। वह मुसलमान नही है, यह बताने के लिए रहन–सहन में आवश्यक भेद रखने पड़ते हैं। जैसा कि वह अच्छे कपड़े न पहने, घोड़े पर न चढ़ें, शस्त्र धारण

[32] वही पृष्ठ 957

महत्वपूर्ण मामलों में उस पर कानून द्वारा कई एक अयोग्यताऐं लादी गयी। अपने पूजा पाठ तथा अन्य धार्मिक क्रियाओं को लेकर कई जिम्मी सार्वजनिक रूप से न तो बातचीत ही कर सकता है और न उसका कोई प्रदर्शन ही। ये किसी भी हाल में राज्य के नागरिक नही हैं।[33] भीषण से भीषण अत्याचार बिना किसी कारण के अन्य धर्मावलम्बियों पर इसलिए किया जाने लगा कि वे अपना धर्म छोड़कर इस्लाम को ग्रहण कर लें। जजिया कर देंगें तथा रहन–सहन तथा वेश–भूषा के रोक–टोक के साथ–साथ ही इन अन्य धर्मावलम्बियों को कई दूसरी आशाऐं तथा डर भी दिखाये जाते थे। हिन्दू धर्म छोड़ देने वालों को धन एवं सरकारी नौकरी का प्रलोभन दिया जाता था। हिन्दू धर्म से समाज के नेताओं पर दबाव डाला जाता था। जिससे वे किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न पावें। हिन्दुओं के धार्मिक जुलूसों और सम्मेलनों पर प्रतिबन्ध था, कि उनमें किसी भी प्रकार का संगठन न हो तथा उनमें एक ही जातीय एकता की भावना न उत्पन्न हो जाये। न तो कोई नया मन्दिर बनाया जा सकता था और न ही पुराने मन्दिरों की मरम्मत की जा सकती थी, एवं कुछ समय बाद सारे हिन्दू मन्दिर एक बार में ही मिट जावेंगे। यह एक असम्भावी

---

[33] वही, पृ. 946-47

बाद के इस युग में विशेषकर तुर्कों के [illegible] के समान इन अन्य धर्मों के प्रति सहनशीलता दिखाना। यह एक निश्चित एवं सर्वस्वीकृत बात है, कि पुराने समय के बने हुए मन्दिरों को नही गिराया जावे, साथ ही नये मन्दिरों को बनाने की आज्ञा भी नही दी जावे।[34] इस जाति को सबसे पहले हानि पहुँची। धन की प्राप्ति से आलस्य और विलास प्रिपता का उद्धव हुआ, जो इन जाति को कुकर्मों की ओर ले गयी। दुर्व्सन और कुकर्मों के फलस्वरूप वे दरिद्र हो गये तथा इस प्रकार उनका सर्वनाश हुआ। साथ ही साथ उनकी आश्रित प्रजा के साथ जो दुर्व्यवहार हो रहे थे उससे राज्य की उन्नति के लिए आवश्यक सारे साधनों का पूर्ण विकास और उपयोग नही हो सका था। जब किसी जाति या जन समुदाय को खुले आम कानून द्वारा या हाकिमों की स्वेच्छाओं के अनुसार दबाया जाता है या उन पर अत्याचार किये जाते हैं। तब अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए केवल पशुओं सा जीवन व्यतीत करके ही उन्हें सन्तोष कर लेना पड़ता है। ऐसे समय हिन्दुओं से यह आशा रखना कि भरसक प्रत्यन कर वे उत्पादन को पूरा–पूरा बढ़ा देंगे व्यर्थ ही

---

[34] युसुफ हुसेन (सम्पादक) सलेक्टेड डाक्यूमेन्ट्रस ऑफ औरंगजेबूस रेन (1659-1706), हैदराबाद, 1958, पृ. 57

अपनी गाढ़ी कमाईयों से जो कुछ भी बचाया जा सके उसे बचाने के लिए वे निकृष्ट कोटि की चालाकी और चापलूसी को अपनाने में हिचकिचाते न थे। इस प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में किसी मानव का शारीरिक और मानसिक विकास होने तथा उनका उच्चतम योग्यता प्राप्त करना एक असम्भव बात थी। मानवीय आत्मा भी अपनी चरम सीमा तक विकसित नही हो सकता था। मुसलमानी ज्ञान और चिन्ता के क्षेत्र में हिन्दू कुछ भी नही कर पाये एवं उच्च जातीय हिन्दुओं में अवांक्षनीय कुसंगतीय नीच प्रवृत्तियाँ आ गयी। ये दो बाते ही उनके शासन की निन्दा के लिए प्रर्याप्त है।[35] जो फल पका उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारत में मुसलमानी राजनैतिक वृक्ष सर्वथा निरर्थक ही साबित हुआ। एक आधुनिक महापण्डित जर्मन वेत्ता का कथन है कि "इस्लाम धर्म के अनुसार" ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण आत्मा और उसके सामने पूरी–पूरी दीनता स्वीकार करना आवश्यक होता है, परन्तु उनका इस्लाम अपने अनुयायियों के सच्चे हितों की उन्नति में भी सहायक नही हो सका। इस्लाम की इस राजनैतिक के अनुसार इस धर्म पर "विश्वास करने वाले" सारे अनुयायी एक ऐसी संस्था के अंग समझे जाते थे जिसका एक मात्र आदर्श और कार्य युद्ध ही होता था। जब

---

[35] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पूर्वोद्धत पृष्ठ 186

समय तक ही एक विशेष प्रकार की चित्रकला, साहित्य उद्योग धन्धा तथा अन्य कलाओं को आश्रय मिलता था, परन्तु जब मुसलमानी राज्य विस्तार की चरम सीमा तक फैलकर असम और चटगाँव की पहाडियों पर जा टकराया तथा महाराष्ट्र की शुष्क चट्टानों को राह ये हटाने का विफल प्रयास होने लगा तब तो एक बारगी पतन से बचाने का साधन ही नही रह गया। राज्य का कोई भी स्थायी आर्थिक आधार नही था और शान्ति के समय अपने अस्तित्व को बनाये रखने में वह असमर्थ ही रहा। इन विजेताओं में वह योग्यता बिल्कुल ही नही थी, कि वे शान्ति युग में उद्योग धन्धों में पूरी तरह से लोग जावें और तब भी निरन्तर चलने वाले इस अनिवार्य जीवन संग्राम में सफलतापूर्वक टिक सके।[36] उनके लिए शान्ति का अर्थ होता था। बेकारी दुष्परिणाम, कुकर्म एवं घोर पतन। इस्लाम के निश्चित सिद्धान्तों का अन्तिम और एक मात्र परिणाम यही होता था, कि मुसलमान धर्मावलम्बियों को विशेष अधिकार प्राप्त जाति का स्थान मिल जाता था। अतएव इस अधिकारी वर्ग का भरण पोषण राज्य द्वारा ही होता था। इस कारण शान्ति के समय उसका अल्पयोन्मुख होना स्वाभाविक ही था। जीवन क्षेत्र में वे अपने पैरों पर स्वयं खड़े होने में स्वार्थ असमर्थ रहते

---

[36] वही, पृ. 187

भी उसके लिए नही रह गया था। इस प्रकार मुसलमानी साम्राज्य में एक स्थूल शरीर वाली असली जाति की सृष्टि हुई। इस जाति ने धीरे–धीरे साम्राज्य की जड़ों को निर्बल बना दिया और उस साम्राज्य की संवृद्धि का अन्त हुआ उससे यह ईश्वर विशिष्ट गुण वाला––यह युद्ध देवता–– ही होता है। इस धर्म की सारी रीति परम्परा में कड़े अनुशासन की भावना पूरी तरह निहित है। अतः इस्लाम धर्म के सैनिक आधार एवं फौजी स्वरूप में ही प्रत्येक मुसलमानों में आवश्यक गुणों की स्पष्ट विवेचना देख पड़ती है। उसकी अप्रगतिशीलता उनका जमाने के साथ बदलने और उसके उपयुक्त बन सकने की शान्ति का अभाव, अविष्कार, वृद्धि एवं स्वाभाविक प्रेरणा का न होना आदि मुसलमानों में स्वाभाविकता पाये जाने वाले दोषों का स्पष्टीकरण भी इसी विशेषता से हो जाता है। सैनिक का कर्तव्य आज्ञा का पालन तक ही सीमित रहता है।[37] बाकी सारी बातें अल्लाह के ही भरोसे रहती है। जब राज्य के ऊँचे–ऊँचे पदों पर नियुक्तियां गुणों की अपेक्षा जाति या धर्म के आधार पर की जा सकती है। तब गैर मुसलमानी

[37] वही, पृ. 188

स्थान या किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। विभिन्न धर्मावलम्बियों को सम्मिलित आबादी पर जब कभी ऐसी इस्लामी धर्म प्रधान राज्य सत्ता स्थापित हो जाती है, तब अल्पजनसत्तात्मक राज्य तथा विदेशी शासन के सारे दुर्गुण उस राज्य में उत्पन्न हो जाते हैं। भारतीय मुगल साम्राज्य में समूची शासन सत्ता बहुत ही थोड़े लोगों के हाथ में केन्द्रित थी। शासन करने वाले इन अल्पसंख्यकों तथा शासित बहु–संख्यकों में केवल एक ही बात धर्म में विभिन्नता ही पायी जाती थी, जातीय गुणों शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों तथा अन्य सारी बातों में उनमें कोई भी भेद नही था। इस शासक समुदाय के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मावलम्बी स्वाभाविकतया यही सोचते थे कि समाज, देश की सत्ता और सारे साधन शासकों को जन समाज की भलाई के लिए ही सौंपे गये थे। किन्तु वे शासक इसका निरन्तर दुरूपयोग कर उन उन धर्मावलम्बियों को ही मिटाने के लिए भरकर प्रत्यन करने वाले धर्म का प्रचार करने में रत रहते थे। ऐसा राज्य जनता की श्रद्धा और प्रेम पर स्थित नही था। ऐसे राज्य को राष्ट्रीय कहलाने का कोई अधिकार नही था। कट्टर धर्म के अनुसार जिस प्रकार के आदर्श राज्य की परिकल्पना की गयी थी, उसका स्परूप ऊपर दिया गया है। इसमें सन्देह नही के यदा–कदा साधारण सद्‌बुद्धि की तर्क पर

गैर राजनैतिकता की धर्म पर विजय हो जाती थी। कई बार मानव स्वभाव की दुर्बलता के कारण कर एक सम्राट या हाकिम के लिए यह असम्भव हो जाता या कि वह इस भयंकर सहिष्णुतापूर्ण नीति बरती गयी और उनके जान–माल की पूरी–पूरी रक्षा की गई। यदा–कदा कई बुद्धिमान और उदार विचार वाले बादशाहों ने हिन्दुओं को प्रोत्साहन भी दिया, साहित्य एवं कला की उन्नति करने के लिए उनको प्रेरित किया, धन औरं ऊँचे पद दिये इससे उनका राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्धिपूर्ण हो गया। परन्तु इस प्रकार अपने धर्म के प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद स्वरूप यदा–कदा ही देखने में आता था। इस प्रकार की सारी कार्यवाही मुसलमानी संसार की दृष्टि से इलाज के सच्चे सिद्धान्तों के विरूद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासन के प्रधान कर्तव्य की अक्षम्य दुष्टतापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी।[38] मुसलमान शासक की सारी सत्ता मुसलमानी सेना की तलवारों पर ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार विचार वाले सुल्तानों को मुसलमान सैनिक ऐसा धर्मद्रोही शासक समझते थे जो किसी भी तरह उन पर शासन करने योग्य नही था। इसलिए गैर मुसलमानी राज्य के आधारभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से सर्वथा असंगत था। जब तक या तो ये सारे विरोधी लोग नष्ट न हो जाएं अथवा

[38] वही, पृ. 191

उस राज्य में शासक और शक्तियों के बीच एक परम्परागत प्राचीन पारस्परिक विरोध की भावना निरन्तर बनी रहती थी। इस भावना के कारण ही विभिन्न धर्मावलम्बियों के जन समूह वाले मुसलमानी राज्य का सदैव अन्त में विनाश हुआ है, और औरंगजेब के शासनकाल में यह अनिवार्य सत्य पूरी तरह चरितार्थ होकर ही रहा।[39]

औरंगजेब ने बड़ी धूर्तता के साथ हिन्दू धर्म पर धीरे–धीरे आक्रमण किये। अपने राज्यकाल के पहले ही वर्ष में बनारस के एक पुजारी को दिये गये अधिकार पत्र में उसने घोषित किया कि उसका धर्म नये मन्दिर बनाने की आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरों को नष्ट करने का भी आदेश नही देता है। सन् 1644 ई. में जब वह गुजरात का सूबेदार था तब उसमें अहमदाबाद में तत्काल ही बने हुए चिन्तामणि के हिन्दू मन्दिरों में गो हत्या करवा कर उसे नष्ट करवा दिया और बाद में उस मन्दिर को मस्जिद में बदलवा दिया। उसी समय उसने गुजरात के और भी हिन्दू मन्दिरों को गिरवाया था। अपने शासनकाल प्रारम्भ में ही औरंगजेब ने एक हुक्म निकाला था, जिसमें उसने कटक से लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के प्रत्येक हाकिमों को

[39] वही, पृष्ठ 193

सारे मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी थी। पिछले 10 या 12 वर्ष के भीतर बने मिट्टी के झोपड़ों में स्थापित मन्दिरों को भी इस हुक्म के अन्तर्गत माना गया। उसने पुराने मन्दिरों की मरम्मत करवाना भी बन्द करवा दी। फिर 9 अप्रैल 1669 को उसने एक आम हुक्म दिया कि काफिरों के सब शिक्षालय और मन्दिर गिरा दिये जावें, तथा उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबाया जाए। अब उनकी विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस में विश्वनाथ जी के दूसरे मन्दिर और मथुरा में केशवराम जी के मन्दिर के समान बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी। जिन्हें भारत की समस्त हिन्दू जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। मुसलमानों की धर्मान्धपूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष रूप से आघात होते रहे हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण मथुरा की ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँ के हिन्दुओं को दबाने के औरंगजेब ने नवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। कई वर्ष पहले दारा ने उपहार स्परूप मथुरा के केशवराम के मन्दिर में पत्थर का मनमोहक जंगला लगवा दिया कि उस जगंले की वहाँ से हटवा दिया था। यह बात 14 अक्टूबर 1666 ई. को औरंगजेब को ज्ञात हुई। उसने तत्काल की हुक्म दिया कि उस जगंले को वहाँ से हटा दिया जावे। अन्त में जनवरी 1670

ई. में उसने उस मन्दिर को बिल्कुल ही विध्वंस कर देने की आज्ञा दी और यह भी हुक्म दिया कि मथुरा शहर का नाम बदलकर इस्लामाबाद कर दिया जाय साम्राज्य के सारे सूबों, परगनों शहरों और महत्वपूर्ण स्थानों में जनता के सदाचार की देख–रेख करने कि लिए मुहतसिब नियुक्त किये गये। जिनका एक प्रधान कर्तव्य यह भी होता था कि वे हिन्दुओं के तीर्थों और मन्दिरों को विध्नंस कर उन्हें तहस–नहस कर दे। जून 1680 में आम्बेर राज्य के स्वामिभक्त राजा के राजधानी के भीतर सारे मन्दिर तुड़वा डाले गये। गुजरात में हिन्दुओं को धर्मार्थ वजीफे के रूप में जो भी जमीने दी गयी थी, वे सब सन् 1674 ई. में जब्त कर ली गयी।[40]

मुसलमानी राजनीति के मूल सिद्धान्तों के अनुसार अल्पसंख्यक को कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त नही हो सकते। राजकीय सत्ता बहुसंख्यक जातियों को ही प्राप्त होनी चाहिए तथा सारे विभिन्न धर्मों, मतों तथा रहन–सहन को पूर्णतयः दबा समान धर्म का सामाजिक जीवन की स्थापना कर उस राज्य में एकत्रित जाति की सृष्टि की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में केवल राजनैतिक आधार पर ही कोई संगठन करने की न तो कोई सोच सकता है, और न तब वैसा सम्भव हो सकता था। राजनैतिक कारणों से दलित तथा शासकीय दृष्टि से बेहूदा मानी जाने वाली जातियां भारत में तो उसका अनुपात तीन गुने से भी अधिक हो जाता था। साथ

[40] मनूजी, पूर्वोद्धत, पृ. 154

से किसी प्रकार कम नही थे। कई सदियों के बीत जाने पर भी इन दोनों जातियों में किसी प्रकार का समन्वय हो सकना सम्भव नही हो पाया, क्योंकि दोनों के आदर्श तथा रहन–सहन एक दूसरे से सर्वथा विपरीत थे।

हिन्दू एकान्तप्रिय सहिष्णु और अध्यात्मवादी होता है। अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों अप्रकट साधन तथा एकाकी तक के द्वारा आत्म साक्षात्कार कर स्वयं मोक्ष प्राप्ति करना सर्वोच्च ध्येय रहता है। उसकी दृष्टि में जन्म एक अभिशाप तथा उसके मानव साथी–संगी उसे अपने बच्चे ध्येय से भ्रमित करने वाले कारण मात्र हैं। उसके विचारानुसार जीवन का सहचर सुख प्राप्त करने के लिए ईश्वर प्रदत्त उपहारों के उपभोग के स्थानों पर उनका परित्याग तथा अपने भाषों के उल्लापूर्ण विकास की अपेक्षा उनका पूर्ण दमन ही आवश्यक होता है।[41]

इसके विपरीत प्रत्येक मुसलमान को यह दिखाया जा सकता है कि यदि वह इस्लाम धर्म की सशक्त लड़ाकू सेना का सैनिक नही बन सकता तो उसका जीवन ही व्यर्थ हैं। ईश्वरोपासना भी उसे दूसरों के साथ दलबद्ध होकर ही करनी चाहिए। जिहाद द्वारा अन्य लोगों में अपने धर्म के प्रचार और उसमें उसके काफीरी धर्म का नाश करने के लिए तत्परतापूर्वक

---

[41] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 606

प्रयत्न करके उसे अपने धर्म में अपनी दृढ़ अवस्था का सुस्पष्ट प्रमाण देना चाहिए। वह एक धर्म प्रचारक है, एवं अपने पड़ोसियों के आत्माओं के कल्याण की ओर से वह कदापि उदासीन नही रह सकता है। प्रयत्न जो भी भौतिक एवं आध्यात्मिक साधन उसे प्राप्त हो उन सब का प्रयोग कर अपने पड़ोसियों के कल्याण के लिए उसे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।[42]

इस्लाम धर्म कल्याण के लिए इस बात का सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। संसार में लेना सर्वथा अच्छा है और उसके उपयोग के लिए ही ईश्वर ने यह जगत अपने सच्चे धर्मानुयायियों को उत्तराधिकार के रूप में दिया है। उसमें पाये जाने वाले व्यवहारिक दृष्टिकोण और सामाजिक एकता के कारण ही मुसलमान साहित्य के अतिरिक्त अपनी कलाओं और संस्कृतियों को हिन्दुओं से कहीं अधिक विकसित तथा समन्वित कर सके। मुसलमानों के मनोरंजन के साधनों में अधिक सरसता एवं विभिन्नता पायी जाती है। मुगलकाल में हिन्दू राजा रईस भी ऐश्वर्य–विलास की ओर झुके थे, परन्तु उनका यह प्रयत्न मुसलमान अमीरों की बहुत ही भद्दी नकल से अधिक नही बन सका। भिखमंगों एवं मेहनत मजदूरी करने वालों के सिवाय अधिकतर मुसलमान जनता का आचरण विशेष समय एवं उनका रहन–सहन अधिक खर्चीला

[42] वही, पृष्ठ 607

होता है। इसके विपरीत उसी सामाजिक स्तर के हिन्दू अधिक धनी होते हुए भी मुसलमानों की अपेक्षा कहीं अशिष्ट और असंस्कृत होते है। निम्न श्रेणी के हिन्दू निसन्देह उसी वर्ग के मुसलमानों से अधिक स्वच्छ एवं बुद्धिमान होते हैं।

राजा जसवन्त सिंह एवं राजा जयसिंह के जीवित रहने पर औरंगजेब हिन्दुओं के दशहरे के समारोह में भाग लेता रहा। सरकारी इतिहासकार इसे 'हिन्दुओं की ईद' की संज्ञा दी थी। इस समारोह में औरंगजेब दरबार में उपस्थिति हिन्दू राजाओं को उपहार प्रदान करता था। हिन्दू राजाओं के उदासीन होने पर जब नया राज दरबार में उपस्थित होता था तो सम्राट उसके मस्तक पर टीका लगाता था। शाहजहाँ के काल में यह कार्य प्रधानमंत्री को सौंपा गया था। परन्तु 1679 ई. में इस प्रथा पर औरंगजेब पूर्णतः रोक लगा दिया था।[43]

धर्मोन्माद स्वधर्मावलम्बियों के द्वारा स्वधर्म के आदेशों का पालन करवाने से ही सन्तुष्ट नही हो जाता, अपितु अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म का पालन करवाने में अथवा प्रत्येक प्रकार से उसे पीड़ित करवाने में उसे असीम आन्नद एवं शान्ति का अनुभव होता था। औरंगजेब ने बड़ी धूर्तता के साथ हिन्दू धर्म पर धीरे–धीरे आक्रमण किये। नये मन्दिर का

---

[43] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग 3, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 607

में औरंगजेब को यह बताया गया कि यह कार्य इस्लामिक परम्परा के विपरीत है। 28 फरवरी 1659 को सिंहासनारूढ़ होने के साथ ही शीघ्र ही यह घोषित किया कि उसका धर्म नये मन्दिर बनाने की आज्ञा नही देता। साथ ही पुराने मन्दिरों को नष्ट करने का आदेश भी नही देता। अपने गुजरात सूबेदारी के शासनकाल में उसने अहमदाबाद में तत्काल नही बने हुए चिन्तामणि के हिन्दू मन्दिर में गौ हत्या करवा कर उसे भ्रष्ट करवा दिया और बाद में उस मस्जिद को मन्दिर में परिवर्तित करवा दिया और उसी समय वहाँ एक और हिन्दू मन्दिर को गिरवा दिया। औरंगजेब ने अपने ही शासनकाल को लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के स्थानीय अधिकारियों को सारे मन्दिर गिरवा देने की आज्ञा दी। इस हुक्म की तामील 10 से 12 वर्ष से बने सभी झोपड़ियों में स्थापित मन्दिरों के लिए दिया गया। 9 अप्रैल 1669 को एक आम आदेश था कि काफिरों के सब शिक्षालय और मन्दिर गिरा दिये जायें और उनके धार्मिक प्रथाओं को दबाया जाय और उनकी विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर बनारस में विश्वनाथ के मन्दिर और मथुरा में केशवराम मन्दिर के सामने बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी जिन्हें सारे भारत की समस्त हिन्दू जनता

धर्मान्धतापूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष रूप से आघात होते रहे। मथुरा के हिन्दुओं को दबाने के लिए ओरंगजेब ने नवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। दारा ने कई वर्ष पूर्व उपहार स्वरूप मथुरा के केशवराम के मन्दिर के पत्थर का जगमोहक जंगला लगवा दिया। औरंगजेब को इसका पता 14 अक्टूबर 1666 ई. को चला तो उसने तत्काल आदेश देकर उस जंगले को वहाँ से हटवा दिया था। जनवरी 1670 को इस मन्दिर को बिल्कुल ही विध्वस कर देने की आज्ञा दी। हिन्दुओं तीर्थों और मन्दिरों का विध्वंस कर उसे तहस–नहस करने के लिए साम्राज्य के सभी सूबों एवं परगनों, शहरों तथा महत्वपूर्ण स्थानों पर मुहतसिब की नियुक्त की गयी। जून 1680 ई. में राज्य के स्वामिभक्त राजा की राजधानी के सारे मन्दिर तुड़व ड़ाले गये। गुजरात में धर्मार्थ के रूप में दी गयी राशि जमीन 1674 ई. में जब्द कर ली गयी। औरंगजेब ने राजा जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त औरंगजेब ने दिल्ली के निकट ललित मन्दिर क़ो गिरवा दिया था।[44] औरंगजेब ने धार्मिक शिक्षकों को दण्डित करने का आदेश भी जारी कर दिया जिसका अपराध केवल अपने पास आये शिक्षार्थियों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करना

[44] मैनुची, पूर्वोद्धत, पृ. 154

था।[45] मूर्ति पूजकों की धार्मिक परम्पराओं के निषेध तथा मन्दिरों एवं अन्य स्थानों को बन्द करने के सम्बन्ध में सम्राट का आदेश समस्त प्रान्तीय शासकों और स्थानीय अधिकारियों के पास पहुँच गया। उक्त आदेश में यह आशा प्रकट की गयी कि प्रतिबन्धों के फलस्वरूप कुछ मूर्तिपूजक इस्लाम स्वीकार कर लेंगे। कुछ ब्राह्मणों की त्रृटियों के कारण समस्त हिन्दू धर्मानुयायियों के पूजा स्थलों का विध्वंश करना घोर अनाचार था। इस कारण से अकबर की भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करने की योजना धूमिल हो गयी। इसी नीति ने मुसलिम शासकों को भारत में पुनः इस्लाम के खडगधारी विजेता बना दिया औरंगजेब ने हिन्दू धर्म के विरूद्ध जिस दमनकारी नीति का आरम्भ किय वह निशचित रूप से भारत अन्य के स्थानों के पूर्वकालीन मुस्लिम शासकों की परम्पराओं के विपरीत थी।[46] मुस्लिम दमनकारी नीतियों से भयभीत होकर बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन मन्दिर के पुजारी मूर्तियों को उखाड़ कर चुपके से रात को भाग गये। उनके व उनके भगवान के लिए शाही क्षेत्रों में कोई आशय न था अतः वे भागकर जोधपुर में पहुँचे। महाराज जसवन्त सिंह उस समय शाही अभियान पर राज्य से बाहर गये हुए थे, और उनकी अनुपस्थिति में राज्य के अधीनस्थ अधिकारियों ने अपने को इस योग्य नही समझा कि वे उस

---

[45] मासिर-ए-आलमगिरी, पूर्वोद्धत, पृ. 30

[46] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, कलकत्ता, 1940, पृष्ठ 153

प्रभु को आश्रय दे सकें, जो तत्काल ही मुगल सम्राट को कर चुका था। मन्दिर के पुजारी दामोदर लाल ने गोपीनाथ के महाराज जयसिंह के पास यह प्रार्थना करने के लिए भेजा था, कि प्रभु को इतना स्थान दिया जाय। जिससे वह शान्तिपूर्वक अपने धर्म की सेवा कर सके। सिसोदिया राजकुमार ने दामोदर लाल को आमंत्रित किया और 5 सितम्बर 1671 ई. को यह दल चम्पासनी से विदा हो गया। महाराजा राजासिंह ने राज्य की सीमा पर राजकीय ढ़ंग से इस दल का स्वागत किया और भगवान को सिहर नामक स्थान पर धार्मिक समारोह के साथ स्थापित करने का निश्चय किया गया। दिसम्बर 10 मार्च 1672 ई. मूर्ति की स्थापना की गयी और वहीं से मेवाड़ भारत में वैष्णवों का केन्द्र बना हुआ है। सिहर का लघु गांव द्वारा नाथा के नाम से एक महत्वपूर्ण नगर से परिणत हो गया।[47] राजमहल के सम्मुख स्थित राज मन्दिर को धराशायी कर दिया गया। 24 जनवरी 1680 ई. को औरंगजेब अब उदयसागर की यात्रा पर गया तब उसने आज्ञा दी कि उक्त सरोवर के तट पर स्थित 3 मन्दिरों को धराशायी कर दिया जाय। 29 जनवरी को सूचना मिली कि उदयपुर और उसके आस–पास के 172 मन्दिर को नष्ट कर दिया गया। 22 फरवरी 1600 को औरंगजेब ने चित्तौड़ की यात्रा की तब वहाँ पर स्थित 63 मन्दिर नष्ट किये गये। इस तरह उदयपुर में केवल 235 मन्दिर नष्ट किये

---

[47] गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पूर्वोद्धत, पृ. 1, 35

गये।[48] दिल्ली सल्तनत एवं उदयपुर के राजपूतों में युद्ध चलने के कारण वहाँ के मन्दिरों को विध्वंश करने की अनुमति राजपूतों को शान्ति याचना करने पर विवश करने हेतु किया गया था। अतः इसे एक निर्दयी सैनिक कार्यवाही की संज्ञा प्रदान की गयी। राजा के कनिष्ठ पुत्र भीम ने प्रतिशोध के लिए अहमदाबाद पर आक्रमण कर दिया और वहाँ की अनेक छोटी बड़ी मस्जिदों को नष्ट कर दिया।[49] औरंगजेब ने कर्नाटक विजय किया तो उसने तिरूपति के प्रसिद्ध मन्दिर को खड़ा होने की अनुमति प्रदान कर दी। इसका मूल कारण यह था कि इस मन्दिर की यात्रा करने वाले हिन्दुओं से बहुत बड़ी राशि राजस्व के रूप में प्राप्त होती थी तथा दूसरा यह कि इस मन्दिर को गिराने से एक ऐसी क्रान्ति हो जायेगी जिसको दबाना कठिन हो जायेगा औरंगजेब ने मायापुरी (हरिद्वार) तथा अयोध्या के मन्दिरों को नष्ट कर दिये।[50] सरहिन्द की सरकार में एक लघु गांव के सिक्ख मन्दिर को नष्ट कर मस्जिद बना दी गयी। वहाँ एक इमाम नियुक्त कर दिया गया। जिसकी बाद में हत्या कर दी गयी।[51] देवी सिंह राजपूत का मकान जो मन्दिर के रूप में प्रयुक्त हो रहा था, मस्जिद के रूप में प्रमाणित कर दिया। औरंगजेब ने द्वारका के मन्दिर में प्रयुक्त होने वाली

---

[48] आदावे आलमगिरी, देखें एवं तुलना करें पूर्वोद्धत

[49] ईश्वरदास नागर, फुतुहोत आलमगिरी, द्वारा जहीरूद्दीन फारूखी, पूर्वोद्धत, पृ. 311

[50] मैनुची, पूर्वोद्धत, पृ. 244

[51] खादिमें तायबत, पृ. 155, देखें जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पूर्वोद्धत

कुशलतापूर्वक सब मन्दिरों को तोड़ दिये केवल एक मन्दिर में विरोध हुआ क्योंकि वह फौजदार के सैनिकों का मन्दिर था और उसे तब तक न तोड़ सके जब तक कि सभी मृत्यु के ग्रास नही बन गये।[53] राजपूत युद्ध समाप्त होने पर जब औरंगजेब ने अजमेर को छोड़कर दक्षिण भारत जाने का निश्चय किया तो 21 मई 1681 ई. को उसने श्रमिकों के अधीक्षक को आदेश दिया, कि मार्ग के सब मन्दिरो को नष्ट कर दिया जाय। औरंगजेब ने 13 अक्टूबर 1681 ई. को जयपुर से प्रस्थान किये तो कमरउद्दीन ने सुझाव दिया कि आस–पास को जो मन्दिर बन्द किये जा चुके थे उसे नष्ट करवा दिया जाय। किन्तु औरंगजेब इन मन्दिरों के बन्द रहने से ही सन्तुष्ट था, क्योंकि उस क्षेत्र में मुस्लिम निवास नही कर रहे थे।[54] औरंगजेब के बीजापुर एवं गोलकुण्ड के आक्रमण पर कुछ धार्मिक मुसलमानों ने इस युद्ध का कड़ा विरोध किया। इस कारण इस अदूर शेख–उल–इस्लाम को पदच्युक्त कर दिया गया। जब उसे उत्तराधिकारी अब्दुल्ला ने भी मुसलमानों का विध्वंस करने का विरोध किया तो उसके

---

[52] मीराते अहमदी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 21
[53] जयपुर रिकार्ड्स, II, पृष्ठ 161
[54] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोद्धत पृष्ठ 153

सम्राट के समक्ष आना निषिद्ध कर दिया गया।[55] औरंगजेब की कट्टरता के विषय पर कि उसने गोलकुण्ड पर विजय प्राप्त होने पर 1687 ई. में हैदराबाद के मन्दिरों को नष्ट कर उसको मन्दिरों में परिणत करने का आदेश जारी कर अपने कार्य को उचित सिद्ध किया। बुन्देलखण्ड में स्थित ईर्छ की जुम्मा मस्जिद औरंगजेब के शासनकाल में एक हिन्दू मन्दिर की सामग्री से निर्मित हुई थी।[56] देवगढ के जमीदार के एक भाई ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और और उसे इस्लाम न्यार का नाम कर दिया गया। वर्तमान प्रमुख को हटाकर उसको वहाँ का जमींदार बना दिया गया। इस जागीर ने तत्कालीन मुसलमानों की संख्या बढ़ाने में एक उत्साहवर्धक उदाहरण का कार्य किया। ओरार सिंह एवं श्याम सिंह ने शासनकाल के सोलाहवें वर्ष के 15 रमजान को इस्लाम स्वीकार करने पर चौकागढ़ का संयुक्त प्रमुख बना दिया गया। मनोहरपुर का जमीदार देवहचन्द्र, प्रमुख के पद से हटा दिया गया था, और उसकी जागीरें भी लौट दी गयी। 26 सितम्बर 1681 ई. को एक आदेश जारी किया गया कि जो बन्दी इस्लाम स्वीकार कर लेंगे उनको बन्दीग्रह से मुक्त कर दिया जाय। रामगढ़ के अमीन और फौजदार लाजपत को राज्य का कुछ ऋण चुकाना था, और वह उसकी अदायगी की व्यवस्था नही कर सका अतः उसे बन्दी बना

---

[55] खाफी खां, मुन्तखब उल-लुबाब, इलियट एवं डाउसन, पूर्वोद्धत, भाग 6, पृ. 243
[56] आर्कियोलाजी सर्वे रिकार्ड, VII, पृष्ठ 31

गया। 15 जनवरी 1704 ई. में उसे दरबार में उपस्थित किया गया तथा सम्राट स्वयं उसे सत्यधर्म अर्थात इस्लाम धर्म में शामिल किया। उसके सारे अपराध समाप्त करके उसे मनसब 250 से बढ़ाकर 400 कर दिया गया।

औरंगजेब की धार्मिक हिन्दू विरोधी नीति में चुंगी कर में भेद भाव था। क्योंकि 10 अप्रैल 1665 ई. को बेचने के लिए आने वाली वस्तुओं पर महसूल लगाने के लिए एक नियम जारी किया गया। इसके अनुसार मुसलमान सौदागरों की वस्तुओं के मूल्य पर 2 प्रतिशत तथा हिन्दुओं से उसका 5 प्रतिशत चुंगीकर बिल्कुल उठा लिया। परन्तु हिन्दू सौदागरों से पुराने नियम से कर लिया जाता था। इससे राज्य की वास्तव में अत्यधिक हानि की सम्भावना और भी बढ़ गयी, क्योंकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानों को प्रलोभन देकर अपने माल को उनका कहकर निकलवा देने की चालाकी को प्रेरित करने लगे थे।[57] काफिरों पर आर्थिक दबाव डालने की नीति का और एक साधन यह था, कि धर्म परिवर्तन करने वालों को पुरस्कार मिलते थे। मुसलमान हो जाने की शर्त पर हिन्दुओं को ऊँचे पद दिये जाने के कैद से छुटकारा पाने अथवा विवादग्रस्त जायजाद पर

---

[57] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब भाग III, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 198

परिवर्तन कर लिया 1666 ई.

चन्दा नामक एक व्यक्ति 26 जनवरी 1670 ई. को एक आवेदन किया कि वह बुद्ध प्रकाश का सगोत्र (बन्धु) है, और यदि उसे जमीदारी प्रदान कर दी जाय तो वह मुसलमान बनने के लिए तैयार है। औरंगजेब ने इस धर्म त्यागी को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो गया किन्तु उसके मंत्री असद उल्ला खाँ एक निर्दोष जमींदार को अन्यायपूर्वक पदच्युक्त करने का विरोध किया। औरंगजेब के पत्र से एक और घटना का ज्ञान प्राप्त हुआ, कि राजा इस्लाम खाँ हिन्दू छोड़कर मुसलमान बना हुआ था, औरंगजेब ने घोषणा की कि इस्लाम खाँ मुसलमान बनने पर उसे वचन दिया था, कि उसके बाद उसकी जननी तथा भगनी और अनेक व्यक्ति उसे बाद इस्लाम स्वीकार करेंगे तत्पश्चात सम्राट को कोई सूचना प्राप्त नही हुई, अतः औरंगजेब ने घोषणा की कि यदि इस्लाम खाँ की बहिन इस्लाम स्वीकार कर ले तो सम्राट के पौत्र के साथ उसका विवाह किया जायेगा।[59] राजा पलमऊ को इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दिया गया। राजा अनूप सिंह राठौर की एक पुत्री का विवाह मुअन्जम के साथ किया गया था। उसको राजमहल में लाकर पहले मुसलमान बनाया गया।[60] टेवेनियर

---

[58] श्रीराम शर्मा, मुगलों की धार्मिक नीति, पृष्ठ 190

[59] देखें औरगजेब, पूर्वोद्धत, पृ. 139

[60] मुहम्मद काजिम, आलमगिरी नामा, खादिम हुसेन, (सम्पादक), कलकत्ता, 1865-73, पृ. 655

स्वाभाविक रूप से उसके प्रति क्रूरता का व्यवहार रोक दिया जाता था। 22 जनवरी 1668 ई. को सूरत की परिषद और प्रधान के पत्र ने मुसलमान बनाने का अदभुद ढ़ंग जिसमें कहा गया कि औरंगजेब के हठधर्मिता एवं हिन्दुओं पर अत्याचार के कारण व्यापार में अनेक बाधांए उत्पन्न हो गयी थी कि यदि कोई मुसलमान यदि कोई बनिया बा ऋण चुकाना नही चाहता था और बनिया उसकी अदायगी पर जोर देता था तो वह मुसलमान काजी के पास शिकायत करता था, कि उक्त बनिये ने पैगम्बर को गालियां दी है और उसके धर्म की निन्दा की है। तब उस बनिये को मुसलमान बनने पर विवश किया जाता था। इस कारण प्रायः सभी व्यक्ति भयभीत रहते थे। सूरत में बलपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था। इस बात से क्षुब्ध होकर वे बम्बई बसने की योजना बनाने लगे किन्तु अंग्रेजों ने उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। अतः 8 हजार हिन्दू भचौड़ सम्राट के पास गये किन्तु उनकी प्रार्थना ज्ञात नही हुआ।[61] सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में कभी यदि दो व्यक्तियों में विवाद उत्पन्न हो जांता था तो अपना अधिकार स्वीकार कर लेने का मार्ग इस्लाम को स्वीकार कर लेना था, और इस युक्त का कोई प्रतिउत्तर नही था। अतः जिन व्यक्तियों

---

[61] श्रीराम शर्मा, मुगलों की धार्मिक नीति, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 190

व्यक्ति इसी कारण मुसलमान हुए होंगे। अपराधिक से समझौता करना मुसलमान बनने का दूसरा उपाय था। चाहे जो भी अपराध हो इस्लाम स्वीकार करने पर उसका प्रायश्चित हो सकता था। विद्रोह सम्बन्धी तथा क्रूरता कर्म प्रायश्चित भी इस्लाम स्वीकार करने से कर सकता था। छोटे मोटे गबन इत्याधि के अपराध इस्लाम स्वीकार करने पर समाप्त हो जाती थी। मुसलमानों की संख्या बढ़ाने में युद्ध एक बड़ा षडयन्त्र था। पूर्व अपराधों का विचार किये बिना इस्लाम स्वीकार करने वालों को दरबार में शाही सचिवालय और राजस्व व लेखा विभागों में स्थान प्राप्त होते थे। हिन्दुओं एवं सिक्खों की प्रचलित परम्पराओं में अनेक व्यक्तियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। मुसलमानों की संख्या में वृद्धि करना सम्राट अपना एक कर्तव्य समझता था, और मुसलमान बनने वालों को दयापूवर्क उपहार देता था। जिन लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया होगा शायद ही वे विश्वास के कारण धर्म परिवर्तित किया हो। प्रायः दुर्बलताओं एवं अपराधों के दण्ड से बचना एवं आर्थिक लोभ व उन्नति प्राप्त करने की इच्छा ही इसका कारण था। यह भी कहा जा सकता है कि जिन

लोगों ने धर्म परिवर्तन किया उन्हें उक्त धर्म में पूर्व श्रद्धा तथा विश्वास नही था।

यह तर्क संगत है कि विश्व इतिहास में शहीदों की अपेक्षा अवसरवादी व्यक्तियों की संख्या अधिक है, औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दुओं की भी यही दशा थी। आश्चर्य की बात यह है कि बड़ी संख्या में हिन्दू मुसलमान बने परन्तु यह भी सत्य है कि बहुसंख्या हिन्दुओं ने अनेक प्रलोभनों एवं अनेक अत्याचारों के उपरान्त भी अपना धर्म बनाये रखा।[62] हरिराम भक्त ने दिनांक 1666 ई. को इस्लाध धर्म ग्रहण किया और उसे दैनिक केवल 4 आने का प्रतिदिन का भत्ता प्रदान किया गया था। इस्लाम स्वीकार करने वालों में दूसरे दल के सूरत सिंह, रामदास, मकर, किशोर तथा चौहान रूप सम्मिलित थे, इनके साथ अपेक्षाकृत अच्छा व्यवहार किया गया और फरवारी 1667 ई. को उन्हें मानव वस्त्र प्रदान किया गया। इसी प्रकार मुरारी खत्री को भी सम्मान वेश प्रदान किया गया। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम स्वीकार करना भूल–चूक क्षमा करने का निश्चित मार्ग था। 26 जनवरी 1670 ई. को गोपीनाथ नामक व्यक्ति को मुसलमान बनाया गया तथा उसका नाम आकिल मुहम्मद रखा गया और उसे 7 रू. के दैनिक भत्ता दिया गया। दक्षिण के अभियान में खण्डई राव तथा जगन्नाथ को बन्दी बना लिया गया था 27 मई 1700 ई. को इन दोनों को

[62] वही, पृ. 198

मुसलमान बनाया गया था। 2 मई 1704 ई. को नामदेव नामक व्यक्ति को इस्लाम स्वीकार करने पर 400 का सेनापति नियुक्त किया गया था। राजाराम की मृत्यु के उपरान्त उसके परिवार के कुछ सदस्य मुगलों के हाथों में आ गये। राजाराम की एक पुत्री का विवाह 24 जनवरी 1704 ई. को शमशेर बेग से किया गया था। शम्भा जी की मृत्यु के बाद उसकी एक पुत्री का विवाह 5 मार्च को फकीर मुहम्मद से किया गया था। इसकी पुत्री को पहले ही मुसलमान बनाया गया था। गोकुल की मृत्यु के बाद उसके एक पुत्र को मुसलमान बनाया गया था, जो कि अपने समय में कुरान का व्याख्याता बन गया था।[63]

राजकीय पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति के सम्बन्ध में 1671 ई. को अध्यादेश निकाला कि राज्य के कर वसूल करने वाले सभी मुसलमान ही हो। सभी शासकों व तालुकदारों को आज्ञा दी गयी कि वे हिन्दू पेशकारों को हटाकर मुसलमानों की नियुक्ति करें। आगे चलकर अनिवार्य आवश्यकता से विवश होकर बादशाह को माल मंत्री और तनख्वाह नवीस के महकमें में आधे पेशकार हिन्दू और आधे मुसलमान रखने की अनुमति देनी पड़ी। औरंगजेब के काल में कानूनगो बनने के लिए मुसलमान बनना एक लोक प्रसिद्ध कहावत हो गयी थी। पंजाब के अपने परिवार में वे

[63] भीमसेन, तारीख-ए-दिलकुशा,अनुवाद जदुनाथ सरकार, बंबई, 1972, पृष्ठ 103

आज्ञापत्र आज भी सुरक्षित हैं। उसमें उक्त पद पर नियुक्ति की शर्त बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है।[64]

हिन्दुओं का राजस्व एवं लेखा विभाग के निम्न पदों पर एकाधिकार था, और कि मुसलमान उस निम्न पद को प्राप्त नही कर सकते थे। साम्राज्य में सरकारी नौकरियों के लिए वे सेना में भर्ती होना अच्छा समझते थे। अन्य अतिरिक्त विभागों के निजी सहायक प्रायः हिन्दु थे। औरंगजेब के शासनकाल में कुल 148 हिन्दू मनसबदार हुए। अतः इनकी बढ़ी संख्या औरंगजेब के उदारनीति का घोतक नही अपितु शासन के दीर्घ अवधि की ओर संकेत करती है। औरंगजेब के शासनकाल में 148 हिन्दू मनसबदार की तुलना में शाहजहाँ के काल में 51 हिन्दू मनसबदार कम नही कहे जा सकते, क्योंकि शासन के तीस वर्ष के अन्त में सब हिन्दू मनसबदार जीवित थे।[65] औरंगजेब के शासनकाल में योग्यता की अपेक्षा जाति को अत्यधिक महत्व दिया जाता था, क्योंकि औरंगजेब के शासनकाल में एक भी हिन्दू प्रान्तीय शासक के पद पर नियुक्त नही था। अहकाम–ए–आलमगिरी में औरंगजेब का एक ऐसा आदेश वर्तमान हैं जिसके अनुसार कोई भी राजपूत फौजदार अथवा प्रान्तीय शासक नियुक्त नही किया जा सकता था। 20 नवम्बर 1665 ई. को जारी किये गये सम्राट

[64] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग III, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 191
[65] श्रीराम शर्मा, मुगलों की धार्मिक नीति, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 134

अनुसार यह आदेश होली के दिनों में शान्ति बनाये रखने के लिए जारी किया गया था।[66] 1692 ई. में बनेडा के राजा भीम तथा किशन सिंह दक्षिण भारत में नियुक्त थे। उन्होनें होली समारोह मनाने की व्यवस्था की किन्तु निषेध अधिकारी द्वारा रोकने पर उच्च पद प्राप्त अधिकारी के सामने अपनी बात चलती न देखकर उन्होंने इस बात की सूचना सम्राट को दे दिया। अतः सम्राट के आदेश पर होली समारोह रोक दी गयी।[67] 1703 ई. में अहमदाबाद में साबरमती के तट पर हिन्दुओं को मृतक का दाह संस्कार करने की अनुमति नही दी गयी थी। इसके पूर्व 1698 ई. में जारी किये गये आदेशों के अनुसार दिल्ली में भी यमुना तट पर दाह संस्कार करने पर राजकीय प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। औरंगजेब के शासकीय वर्षों की गिनती करने के लिए सूर्य सम्बन्धी इलाही सम्वत का प्रयोग बन्द कर दिया गया। किन्तु हिजरा के चन्द्र सम्वत के प्रयोग से शासन के कार्यों में अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होने लगी। अतः यह निर्णय किया गया कि प्रत्येक शासकीय वर्ष का प्रारम्भ रमजान मास की प्रथम तिथि से किया जाय। मासिरे आलमगिरी में इलाही सम्वत का प्रयोग मिलता है। सूर्य सम्वत ईरानी सम्राटों के द्वारा परम्परागत एवं पवित्र प्रयोग हो चुका था

---

[66] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब भाग II, पृष्ठ 261

[67] मीराते अहमदी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 261

मानव पूजा प्रतीत हुई। अतः इसे रोक दिया गया। झरोखा दर्शन में लोगों को अपनी कठिनाइयां सम्राट के सामने रखने का अवसर मिल जाता था। इस समारोह के बन्द होने से लोगों की कठिनाइयां बढ़ गयी। उसने सोने चांदी तथा अन्य पदार्थों के बराबर सम्राट को तोलने की प्रथा समाप्त कर दी गयी। बुराई से बचने के लिए तुलादान का महत्व स्वीकार किया तथा सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिए उसने अपने पौत्र को तुलादान करने की सहमति दी।[69] सम्राट औरंगजेब ने 1659 ई. में मुद्राओं पर कलमा अंकित करवाना बन्द करवा दिया क्योंकि औरंगजेब के विचार में हिन्दुओं के हाथों में पड़कर (प्रयोग से) भ्रष्ट हो जाता है।[70] महाराजा जसवन्त सिंह और राजा जयसिंह के जीवित रहने पर औरंगजेब हिन्दुओं के दशहरे के समारोह में भाग लेता रहा। सरकारी इतिहास कार इसे हिन्दुओं की ईद की संज्ञा दी थी। इस समारोह में औरंगजेब दरबार में उपस्थित हिन्दू राजाओं को उपहार प्रदान करता था। हिन्दू राजाओं के पदासीन होने पर जब नया राजा दरबार में उपस्थित होता था तो सम्राट मस्तक पर टीका

---

[68] मआसिर आलमगिरी पृष्ठ संख्या 176

[69] मीराते अहमदी, भाग I पूर्वोद्धत, पृष्ठ 352

[70] औरंगजेब, पूर्वोद्धत पृष्ठ 8

था।[71] औरंगजेब ने अपने शासन के 12वें वर्ष गृहशास्त्रियों तथा ज्योतिषियों को पदच्युत कर दिया। अतः लेखा विभाग ने उनके पदच्युत किये जाने का कड़ा विरोध किया क्योंकि वे महीनों तथा दिनों का ठीक ढ़ंग से अनुमान लगाने वाले विद्वानों के मार्ग दर्शन से वंचित हो रहे थे। ज्योतिषियों से कि ये वेतन सम्बन्धी सारणी तैयार करना तथा विभिन्न विभागों को ठीक परिणाम से वेतन वितरण में सहायता करते थे। दूसरा कि वे अन्य कार्यों के शुभ दिन का मुहूर्त करते थे। लेकिन हिन्दू ज्योतिषी हिन्दू रीति से ही कार्य करते थे। अतः उन्हे पदच्युत करके उनके स्थान पर मुगल ज्योतिषी की नियुक्ति की गयी, किन्तु इस पदच्युत का पूर्ण पालन नही हुआ। क्योंकि 5 नवम्बर 1671 ई. को औरंगजेब ने ज्योतिषियों से अपने–अपने दिल्ली प्रवेश का शुभ दिन पूछा तो उन्होंने 26 नवम्बर निश्चित किया तथा इस तिथि को स्वीकार कर लिया गया। 1702–1703 ई. को पंचांग बनाना भी निषिद्ध कर दिया गया था।[72] हिन्दू एवं मुसिलम मेले पर पशु, पक्षियों, स्त्रियों की मिट्टी की मूर्तियां बच्चों के मनोरंजन के लिए बनायी जाती थी। जीवित प्राणियों का इस प्रकार का प्रतिनिधित्व

---

[71] खाफी खाँ, मुन्तखब-उल-लुवाव, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 212

[72] वही

था। औरंगजेब ने इस प्रथा को इस्लाम विरोधी करार देते हुए इस पर रोक लगा दिया था।

तृतीय अध्याय

प्राचीन हिन्दू नीति के अनुसार प्रजा को अनाज का 1/6 भाग राजा को देना पड़ता था। इस्लामी कानून के अनुसार खराज को उपज का 1/2, 1/3, 1/4 एवं 1/5 होना चाहिए। इस्लामी कर प्रणाली युक्ति तथा यथार्थ के ऊपर आधारित थी। यह विधि व्यवहार में खलीफ उमर के समय से शुरू हुई और अब्बासी खलीफाओं के समय तक चलती रही। मुस्लिम कानून के विभिन्न रूपों को लेकर विशेषकर वित्त तथा कर प्रणाली से सम्बन्धित बहुत सा साहित्य लिखा गया। यद्यपि सभी मुस्लिम एक ही स्रोत का आधार लिया है। तथापि उन्होंने जिन सिद्धान्तों का निरूपड़ किया है उसमें से कुछ में महत्वपूर्ण विषयों को लेकर काफी मदभेद दृष्टिगत होता है। यहाँ तक कि 'हनबली' और 'मलिकी' कानून 'शफी' तथा 'हनीफी' भी कानून में प्रर्याप्त अन्तर है। धार्मिक कर को जकात कहते थे जो मुख्यतः मुसलमानों से वसूल किया जाता था। इसके पीछे यह भावना निहित थी कि धनवान मुसलमान अपनी सम्पत्ति में निर्धन मुस्लिम भाइयों को भागीदार मानकर उसकी सहायता करें। जकात का प्रयोग तीन प्रमुख सन्दर्भों में किया गया – सम्पत्ति कर, उश्र एवं वस्तुओं पर आयात–निर्यात करे। प्रत्येक मुसलमान को अपनी चल–अचल सम्पत्ति

सहायतार्थ में किया जाता था। जहाँ तक आयात–निर्यात का सम्बन्ध है बस्तुओं के मूल्य का 2% कर के रूप में लिया जाता था। परन्तु गैर–मुसलमानों से यह दुगुना तथा घोड़े के आयात पर 5% वसूल किया जाता था। सरा के अनुसार उश्री भूमि को मुसलमानों के स्वामित्व मे हो तो उससे भू–राजस्व उश्र की दर से लिया जाये। यदि वह भूमि प्राकृतिक साधनों से सिंचित की जाती थी जो उपज का 1/10 अंश तथा कुऐं से सिंचाई करने की दशा में उपज का 1/20 अंश वसूल किया जाता था। मुगल बादशाहों के शासनकाल में जकात को आयात–निर्यात कर के रूप में भी वसूल किया गया। अकबर ने अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में दैनिक जीवन में प्रयोग की वस्तुओं पर जकात की वसूली बन्द करने का आदेश दिया था। जहाँगीर ने अपने शासनकाल में आयात–निर्यात पर जकात को समाप्त कर दिया था। परन्तु हिन्दू व्यापारी जब इसका दुरूपयोग कर मुसलमानों के नाम से व्यापार करने लगे तो औरंगजेब ने आदेश दिया कि शरा के अनुसार छूट प्रदान कर शेष वस्तुओं पर जकात वसूल किया जाये। परन्तु आर्थिक हानि होने के कारण औरंगजेब ने पुनः मुसलमानों से यह कर वसूलना आरम्भ किया। [1]

---

[1] डॉ. आई एच कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि मुगल इम्पायर, कराची, 1966 पृ. 147

खिराजी भूमि ही मानी जाती थी, चाहे भूमि के मालिक इस्लाम धर्म को ही क्यों न अपना लें। इस प्रकार कर–लगाने सम्बन्धित इस नियम ने मुसलमानों पर कर का दोहरा बोझ डाल दिया, क्योंकि उन्हें खराज और उश्र दोनों ही कर देने पड़ते थे। इसी कारण खलीफा अबु हनीफ ने कहा है कि एक ही जमीन से उश्र और खराज दोनों वसूल नही किये जाने चाहिए। साधारणतयः इस मत का पोषण किया जाता था कि विजयों के द्वारा प्राप्त विजित लोगों की सभी चल और अचल सम्पत्ति विजेता की हो जाती है। जिनके पास चाहे जोती भूमि हो या बिना जोती हुई भमि हो उसको उपज का निश्चित भाग कर के रूप में देना पड़ता था। भूमिकर प्रायः उपजों के 1/3 से कम और 1/2 से अधिक नही लिया जाता था। भूमिकर निश्चित करने का आधार क्षेत्रफल, उपज तथा सिंचाई तीनों साधनों पर निर्भर होता था।भूमिकर नकद सिक्कों में देते समय जोती हुई भूमि से शहर से बाजार की दूरी के लिए परिवहन के खर्च आदि का ध्यान रखकर कर निर्धारित किया जाता था। खुम्सः धर्मनिरपेक्ष करों में खुम्स तीसरा और अन्तिम था। वस्तुतः खुम्स लूट का धन था जो युद्ध में शत्रु–राज्य की जनता से लूट में प्राप्त होता था। लूट का 4/5 भाग

में किसी ने भी एक सी भू–राजस्व नीति नही अपनायी क्योंकि विभिन्न सुल्तानों के समय में भिन्न–भिन्न समस्याऐं सामने थी। ऐसी स्थिति में सुल्तान के व्यक्तित्व पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता था। उन्होंने मुस्लिम कर–सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नही किया अपितु उन सिद्धान्तों का हिन्दुस्तान की परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार संशोधन भी किया।

जजिया भारत में मुस्लिम शासन के स्थापना के पश्चात् मुगल सुल्तानों के द्वारा गैर मुसलमानों से वसूल किया जाने वाला एक प्रमुख कर था। 712 ई. में मुहम्मद बिन–कासिम ने सिंध पर अधिकार करने के बाद वहाँ जजिया लागू कर दिया। जजिया न अदा करने वाले हिन्दुओं को जिम्मी का दर्जा दिया जाता था या इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया जाता था। जजिया मुहम्मद गजनवी एवं मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय जजिया वसूल किया जाता था, या नही इसका कोई उल्लेख मिलता है। सल्तनतकाल में प्रत्येक हिन्दुओं को जजिया देना अनिवार्य था। इस कर को लगाने के लिए हिन्दुओं को तीन वर्गों में उनकी

आर्थिक स्थिति के अनुसार बाँटा गया था। प्रथम दो वर्ग के हिन्दू 48 दिरहम, द्वितीय वर्ग के हिन्दू 24 दिरहम और तृतीय वर्ग के हिन्दू 12 दिरहम अदा करते थे। साधु संन्यासियों, बच्चों स्त्रियों को जजिया से मुक्त किया गया था। लेकिन फिरोज शाह तुगलक का मत था कि ब्राह्मण ही कुफ्र या हिन्दू धर्म के संरक्षक थे। अतः उसने उन पर जजिया लगा दिया था।[2] सन् 1679 में औरंगजेब द्वारा जजिया को दुबारा लगाया जाना भारत में मुगल साम्राज्य के इतिहास में एक मोड़ का घोतक है। यह धार्मिक कट्टरता की प्रवृत्ति की पराकाष्ठा को सूचित करता है। जिसके बदले में राजपूतों, मराठों और साधारणतः हिन्दुओं में साम्राज्य विरोध की बहती हुई प्रवृत्ति के परिणाम के स्वरूप में चित्रित किया है जिसने औरंगजेब के सामने एक सुस्पष्ट मुस्लिम राज्य की ओर प्रत्यावर्तन द्वारा मुसलमानों की निष्ठा का आवाह्न करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नही छोड़ा था।[3] सभी परिस्थित हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मदभेद और शत्रुता तथा विशेषाधिकार की भावना के विकास को जजिया पुनः लगाने का मुख्य कारण माना जाता है। फिर भी इस कार्यवाही को समझने के लिए साम्राज्य के राजनैतिक और आर्थिक विकास का क्रम दरबार की धार्मिक प्रवृत्ति और विशेषरूप से राज्य के स्वरूप से सम्बन्धित विवाद को ध्यान में

---

[2] जदुनाथ सरकारः औरंगजेब, तृतीय, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 264-65, 274, 325

[3] जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, 1980, पृष्ठ 148-151,

औरंगजेब द्वारा जजिया के पुनरावरोपण पर कुछ समकालीन और समकालीनों के बाद के प्रेक्षकों की व्यवस्था की जाँच कर ली जाय। मुहम्मद खाफी मुस्तैद खांन जिनका लेखन अधिकारिक दस्तावेजों पर आधारित है और जो एक प्रकार से औरंगजेब के शासन का अधिकारित इतिहासकार माना जा सकता है कहता है: क्योंकि धार्मिक बादशाह का उद्देश्य इस्लामी कानून का प्रचार और काफिर व्यवहार को उखाड़ फेंकना था, उसने दीवानी उच्चाधिकारियों को आदेश जारी किये कि (बुधवार, 2 अप्रैल 1670, रबी पहली, 1090 से कुरान के आदेश)– 'जब तक वे दीनता से जजिया दें' – का पालन करते हुए और धर्म वैधनिक परम्परानुसार राजधानी और सूबों के काफिरों जिम्मी से जजिया इकट्ठा किया जाय। इसरदास (ईश्वरदास) और अली मुहम्मद खान मोटे तौर पर साकी मुस्तैद खान से सहमत होते हुए भी इस मामलों में उलमा की भूमिका पर ज़ोर देते हैं। ईसरदास के शब्दों में धर्मतत्वज्ञों विद्वानों और परम्परा वादियों ने (सच्चे) विश्वास के लिए खुदा के साथ–बादशाह को श्रद्धा को दृष्टि में रखते हुए, उसे समझाया कि शरीयत के अनुसार जजिया की उगाही

[4] मआसिर-ए-आलमगीरी, विल्लियो इंडिका सीरीज, पृष्ठ 174

आवश्यक एवं अनिवार्य है।[5] क्योंकि महामहिम व्यय निश्चित करने, राज्य के और साथ ही राजस्व और प्रशासन के सभी मामलों में शरियत के विरूद्ध सब वस्तुओं को अस्वीकार करते हुए शरियत के कानूनों में निष्ठा बनाने और उसे प्रचलित करने की ओर उन्मुख थे, अतः इस शुभ घड़ी में विद्वज्जनों, धर्मतत्वज्ञों ने विश्वास के लिए बादशाह की श्रद्धा को दृष्टि में रखते हुए उसे समझाया कि शरियात के अनुसार जजिया की उगाही आवश्यक एवं अनिवार्य है और उसके साम्राज्य के सूबों में इसे पुनः लगाने का आग्रह किया।[6] एक ही प्रकार के वक्तव्य अधिकारित दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए माने जा सकते हैं। राजकीय घोषणाओं में जजिया के पुनः लगाने का कारण स्वाभाविक रूप से सच्चे विश्वास के लिए बादशाह की श्रद्धा और धर्मतत्वज्ञों और विद्यानों आदि की राय के प्रति उसके सम्मान को बताया गया होगा। मगर यह इस बात की व्याख्या नही करता कि बादशाह को जो स्वयं शरियत में दक्ष था, राज्यारोहण के बाद जजिया के सम्बन्ध में इस कट्टर स्थिति तक पहुँचने में बाईस वर्ष क्यों लगे जो प्रमाणिक उलमा द्वारा बार–बार प्रतिपादित की गयी थी और पर्याप्त स्पष्ट थी।[7] समकालीन यूरोपीय यात्री और भारत में नियुक्त व्यापारिक कम्पनियों के प्रतिनिधि इस कार्यवाही की थोड़ी भिन्न व्याख्या देते है। सूरत में

[5] ईश्वर-दास नागर, फुतुहात-ए-आलमगीरी, पूर्वोद्धत, पृ. 462
[6] मिराते-अहमदी, पूर्वोद्धत, पृ. 80
[7] सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, नई दिल्ली 2004 पृष्ठ 77,78

अंग्रेजी कारखानों के खजाने को भरने के लिए ही नही बल्कि आबादी के गरीब हिस्सों को मुसलमान हो जाने के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से भी जजिया बड़ी सख्ती से वसूल किया जाता था।[8] पच्चीस वर्ष बाद मैनक्सी ने इसी कारणों पर जो देते हुए कहा :– जसवंत सिंह की मृत्यु से औरंगजेब के सामने हिन्दुओं पर और अधिक अत्याचार करने का रास्ता खुल गया क्योंकि अब उनकी रक्षा के लिए कोई साहसी और शक्तिशाली राजा नही रहा था। उसने हिन्दुओं पर कर– (मथौट) लगा दिया जिसे देने के लिए हर कोई बाध्य था। कम या अधिक कम या अधिक....। औरंगजेब नें ऐसा दो कारणों से किया। 1. क्योंकि अभियानों में व्यय के कारण 2. खजाना खाली होता जा रहा था, दूसरा हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर बाध्य करने के लिए।[9] हो सकता है कि औरंगजेब के बहुत से समकालीन इस तर्क पर सचमुच विश्वास करते रहे हो कि जजिया लगाकर वह गैर मुसलमानों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहता है लेकिन ऐतिहासिक जाँच के प्रकाश में यह युक्ति–युक्त नही ठहरता है। विशेष रूपों से चार सौ वर्षो से अधिक समय से देश के बड़े भाग में मुस्लिम शासन होते हुए भी हिन्दू हठ धर्मिता से अपने विश्वास से चिपके हुए थे।[10] इस अवधि के अधिकांश समय में उन्हे जजिया देना पड़ा

---

[8] फासेट (सं.), दि इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इंडिया, न्यू सीरीज, तृतीय 241, (ओ.सी, खंड 40, संख्या 4705, दिनांक 18 अगस्त 1680)
[9] मैनुची, पूर्वोद्धत, भाग दो, पृ. 233-34
[10] शेख निजामुद्दीन औलिया, फवैद-उल-युवाद, लतीफ अहमद (संपा.), लाहौर, 1966, पृष्ठ 65,150,195-97

था।[11] औरंगजेब इतना आशावादी नही हो सकता था कि जजिया को पुनः थोपकर इससे भिन्न परिणाम की आशा करता। यद्यपि यह एक प्रतिगामी कर था और अमीरों की तुलना में गरीबों पर अधिक लगता था, लेकिन उसके शासनकाल में इस कार्यवाही द्वारा बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन का कोई प्रमाण नही मिलता। यदि ऐसा कुछ हुआ होता तो बादशाह के प्रशंसकों द्वारा उल्लास के साथ उसकी नीति की विजय के रूप में इस घटना को दर्ज किया जाता।[12] जहाँ तक शुद्ध रूप से आर्थिक कारण का सम्बन्ध है यह सच है कि अपने शासन के तेरहवें वर्ष में जब औरंगजेब ने अपने वित्तीय साधनों का निरीक्षण किया तब पाया कि पिछले बारह वर्षों का व्यय आय से अधिक था। परिणाम स्वरूप कई प्रकार की आर्थिक नीतियाँ लागू की गयी, जिनमें बादशाह शहजादों और बेगमों के व्यय में कोई भी चीजों की कटौती शामिल नही थी।[13] यह भी माना जा सकता है कि विशेष रूप से 1676 के बाद दक्खिन में निरंतर युद्धों उ.प. सीमा युद्ध अफगान कबीलों से आंतरिक लड़ाइयों और बाद में राठौर और सिसोदियों से टकराव ने जिसमें से किसी में भी किसी बड़े क्षेत्र की उपलब्धि थी, आर्थिक क्षतिपूर्ति नही हुई, निश्चित रूप से शाही खजाने पर दबाव डाला होगा। अपने शासन काल में औरंगजेब ने बहुत से प्रचलित उपकारों को

---

[11] के.ए. निजामी, सम आस्पेक्ट्रस ऑफ रिलीजन एण्ड पालिटिक्स इन इंडिया ड्यूरिंग दी थर्टीन सेन्चुरी, दिल्ली, 1978, पृ. 315

[12] एस.नूरल हसन, चिश्ती ऐंड सोरावर्दी सिलसिलाज इन इंडिया ड्यूरिंग थर्टीज एंड फोर्टीज सेंचुरी, अप्रकाशित शोध, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, एस. ए.ए. रिजवी, मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेन्ट इन नार्दन इंडिया इन दि सिक्सटीथ एण्ड सेबेटीथ सेंचुरीज (आगरा 1965) पृष्ठ सं. 15.21

[13] मुआसिर-ए-आलमगीरी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 100

वर्जित करते हुए कई आदेश निकाले।[14] इस प्रकार के आदेश पहले के शासकों द्वारा भी निकाले गये थे। पता लगा है कि इन आदेशो के बावजूद मालगुजारी विभाग की जागीर की जमादामी (मूल्यांकन) में इन वर्जित उपकरों से होने वाली आय शामिल करता रहा।[15] स्पष्ट रूप से यह आशा की जाती थी कि जागीरदार अपनी स्वीकृति आय से यह कमी कर लेंगे। लेकिन बहुत कम अमीर (जैसे राजा जसवन्त सिंह) ऐसा करने के लिए तैयार हुए बाकियों ने इस परित्यक्त आय के स्थान पर क्षतिपूर्ति की मांग की।[16] क्योंकि इसके लिए पर्याप्त धन नही था, अतः जागीरों में कमी की यह बात निरर्थक रही। अतः इस प्रकार यह तर्क निराधार है कि औरंगजेब ने चूँकि इस्लाम द्वारा अस्वीकृत उपकरों को समाप्त कर दिया था। अतः इस्लामी कानून द्वारा विशेष रूप से स्वीकार करों में से एक जजिया की वसूली न्याय संगत थी। हमारे पास मुगल साम्राज्य में जजिया की वसूली के औरंगजेब के शासन काल के कोई आंकड़े नही है, अठारहवीं शताब्दी के लेखक शिवदास लखनवी के अनुसार।[17] साम्राज्य के सब सूबों में जजिया की वसूली की राशि चार करोड़ रूपये थी। यद्यपि यह संख्या 1720 में सैय्यद बंधुओं की पराजय के बाद राजा जय सिंह के अनुरोध पर जजिया की पुनः समाप्ति के संदर्भ में दी गयी है, फिर भी इसे बीजापुर

[14] वही पृ. 392, 432-438

[15] खाफी खाँ, मुंतखब-उल-लुबाब, पूर्वोद्धत, पृ. 88-89

[16] अजीज अहमद : इस्लामिक कल्चर इन इंडिया एनवायरमेन्ट, लाहौर, 1965, पृष्ठ सं. 148

[17] शिवदान लखनवी, शहनामा-ए-मुनब्वर कलाम (ब्रि.म्यू ओ-आर पृष्ठ सं. 64 बी-65ए) देखें सतीश चन्द्र, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट दी मुगल कोर्ट, नई दिल्ली, 1979, पृ. 30-35

गोलकुण्डा को राज्य में मिलाने के बाद कुल मिलाकर सारे साम्राज्य पर लागू माना जा सकता है। जगजीवन दास के अनुसार 1708–09 के आस–पास साम्राज्य की वसूली 26 करोड़ रूपये से कुछ अधिक थी।[18] इन आंकड़ों से जजिया से होने वाली आय कुल आय की 15 प्रतिशत ठहरती है। इसमें संदेह है, कि प्रत्येक वर्ष जजिया की पूरी राशि की वसूली हो पाती होगी। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ की एक और कृति–'निगारनामा–ए–मुंशी' के अनुसार जमा के 1,00,000 दाम पर 100रू. जजिया कर निर्धारित किया गया था, अर्थात खालिस के अधिकारी और जागीरदार अपने ढंग से किसानों में यह राशि प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र थे।[19] फसल खराब होने पर जजिया से छूट की प्रार्थना की जा सकती थी और ऐसी छूटें पर्याप्त मात्रा में नियमित रूप से दी जाती रही प्रतीत होती है। शहरों का निर्धारण साधारणतः अलग से होता था, जिसमें होने वाली आय का मोटा हिसाब भी तैयार करना मुश्किल है। खाफी खाँ के अनुसार 1092–1681 में अमीन–ए–जजिया मीर अब्दुल करीम ने सूचित किया कि उसने पिछले साल के दौरान बुरहानपुर के आधे निवासियों (पुर जाट) द्वारा 108000 रूपये देय निश्चित कर दिये थे।[20] बहादुरपुर शहर और परगने से सम्बन्धित एक दस्तावेज में हम पाते हैं। कुल निर्धारित

---

[18] इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इंडिया, बम्बई, 1963, पृष्ठ सं. 409
[19] मलिकजादा, निगारनामा-ए-मुंशी, नवल किशोर लखनऊ, 1882 पृष्ठ 98
[20] मआसिर-ए-उमरा, तृतीय, द्वारा इलियट एवं डाउसन, पूर्वोद्धत भाग- 7 पृ. 335-45

2950 रूपये में से शहर का हिस्सा 2140 रूपये 10 आना या मोटे रूपये में 72 प्रतिशत था।[21] इतने अल्प प्रमाण के आधार पर सामान्यीकरण करना कठिन है, फिर भी यह परिणाम निकालना गलत नही होगा कि शहरों में होने वाली आय काफी ज्यादा थी। इससे पता चलता है कि जजिया का विरोध प्रायः शहरों में होता रहा और इसमें प्रायः व्यापारियों की भूमिका रही। ईसाई व्यापारियों–अंगरेज, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली और भारत के साथ व्यापार करती दूसरी यूरोपीय कम्पनियों द्वारा आयातित सारे माल पर जजिया के स्थान पर डेढ़ प्रतिशत का एक अतिरिक्त कर वसूल किया जाता था।[22] इस प्रकार जजिया से प्राप्त होने वाली राशि नगण्य नही थी। फिर भी यह ध्यान रखने योग्य बात है कि उन धन को एक अलग कोष 'खजान–ए–जजिया' में जमा करना होता था, और पुण्य कायों के लिए अलग रखा जाता था।[23] इस प्रकार जजिया को सामान्य खजाने पर कर का बोझ केवल इस सीमा तक कम करने का उपाय माना जा सकता है। जिससे यह दिखाया जा सके कि राज्य के लिए नकद वृत्तिधारियों या यामियादारों को सामान्य खजाने से दी जाने वाली राशि में किफायत करना सम्भव है।[24] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल आर्थिक प्रयोजन को जजिया के पुनः थोपे जाने का मुख्य कारण नही माना जा

---

[21] खुलासत-उल-सियाक पृष्ठ सं. 39 बी. 41 (इरफान हबीव, ऐग्रेरियन सिस्टम, पृष्ठ 119-120)
[22] विलियम फोस्टर (सं.) इंग्लिश फैक्ट्रीज, पृ. 29
[23] मिरात, पूर्वोद्धत, पृष्ठ, 30-31
[24] फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ 158-161

भूमिका एवं राज्य के स्वरूप से सम्बन्धित तत्कालीन राजनीतिक और वैचारिक विवाद हिन्दुओं की स्थिति तथा उलेमा द्वारा राज्य की आधारभूत नीतियों के निर्धारण की सीमा को ध्यान में रखे बिना इस कार्यवाही को नही समझा जा सका। वृत्तिधारियों की फौज मध्यकालीन सुल्तानों के लिए हमेशा एक समस्या रही जिसमें धर्मतत्वज्ञ, संन्यासी विधवांए और अनाथ विद्धमंडली का एक हिस्सा बड़ी संख्या में अल्लम गल्लम परोपजीवी शामिल थे। यह इस्लाम के प्रारम्भिक काल के अस्पष्ट समतावादी और मानवतावादी उत्तराधिकारी का एक पक्ष था कि राज्य का शारीरिक रूप से सक्षम सब मुसलमानों के लिए कुछ ज्ञान था। बलवन के समय से ही इन हिस्सों के अनुदानों और विशेषाधिकारों को कम करने के लिए कदम उठाने पड़ रहे थे। लेकिन सामान्य रूप से जनसमूह का संरक्षण करने के उत्तरदायित्व से किसी भी शासन ने इनकार नही किया जो राज्य द्वारा कल्याण कार्य के पालन का महत्वपूर्ण ढ़ंग था। अकबर ने एम्मादारों को दिये जाने वाले अनुदान के लिए गांव अलग रखते हुए इसे एक नये आधार पर संगठित करने का प्रयत्न किया। लेकिन समय के बीतने के साथ–साथ इस समस्या ने फिर गम्भीर रूप धारण कर लिया और औरंगजेब को नये सिरे से उससे जूझना पड़ा।[25] वृत्तिधारियों में एक बड़ा

[25] इरफान हबीब, ऐग्रेरियन सिस्टम, पृष्ठ 298-316

समूह धर्मतत्वज्ञों का था। शिक्षा पर उनका परोक्ष रूप से एकाधिकार था और उन्हें शासकों का अत्याधिक संरक्षण प्राप्त था। अनेक राजाओं द्वारा प्रशासन में उनकी सेवाऐं ली जाती थी। यद्यपि उनका दर्प बहुत से शासकों को अरूचिकर था और बहुत से काजियों को धन लोलुपता ने उलेमा को बदनाम किया। फिर भी वे उनकी उपेक्षा नही कर सकते थे। क्योंकि भारत में मुसलमानों के विभिन्न समूहों और हिस्सों में इस्लाम ही एकता का सूत्र माना जाता था। उलेमा का कोई एक संगठित ढ़ांचा नही था, और शरियत की शक्ति ने (जिसने पशिचिमी एशिया में जन्म लिया था) जहाँ की स्थितियां भारत से बिल्कुल अलग थी। शासकों के लिए अनेक राजनीतिक समस्याऐं पैदा की। भारत का सुल्तान किस सीमा तक शारियत के अनुसार शासन कर सकता है, यह चिन्ताजनक विवाद का विषय था। सामान्य रूप से इस बात पर सहमति थी कि भारत में राज्य सच्चे अर्थों में इस्लामी नही हो सकता।[26] और यह कि सुल्तान द्वारा अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए वेत उल॰अल का विनयोग भरी शान शौकत का रख रखाव मुस्लिम खून के बहाने जैसे गैर इस्लामी लक्षणों कों सहना ही पड़ेगा। फिर भी उलेमा की ओर से विदात और शरियत द्वारा वर्जित बस्तुओं पर रोक लगाकर सुल्तान से इस्लाम के समर्थक की भांति कार्य करने की उपेक्षा की जाती थी। वे उनमें हिन्दुओं के विरूद्ध एक निरन्तर

---

[26] बरनी, तारीखे फिरोजशाही, द्वारा एस.ए.ए. रिजवी, खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1957, पृ. 22

जिहाद छोड़ने उन्हें अप्रतिष्ठित एवं अपमान करने और उन्हें मूर्तिपूजक गतिविधियों के खुले प्रदर्शन की आज्ञा न देने की आशा भी करते थे।[27] अधिकांश धर्मतत्वज्ञ जजिया का भुगतान इसलिए आवश्यक समझते थे कि यह हिन्दुओं को अपमानित करता था। कुछ उलेमा जजिया इकट्ठा करने वालों द्वारा हिन्दुओं को अपमान की वकालत में मूर्खतापूर्ण हद तक आगे बढ़ गये थे।[28] इस प्रकार धर्मतत्वज्ञों के लिए जजिया का पुनः लगाया जाना हिन्दुओं की निम्न एवं पराधीन की स्थिति का परिचायक और शासन वर्ग के मुस्लिमों की स्थिति और उसके द्वारा राज्य में सच्चे विश्वास के वाहक उलेमा की उच्च स्थिति को अक्षुण्य बनाये रखने का साधन था। राजनीतिक वास्तविकता को समझते हुए सुल्तान और उसके बड़े अमीर अनावश्यक राजनीतिक समस्याऐं उत्पन्न कर सकने वाली नीतियां लागू करने को तैयार नही थे। उलेमा और राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले हिस्सों के हितों में यह भेद मध्यकालीन भारत के मुस्लिम समाज का विशिष्ट लक्षण समझा जाना चाहिए। जैसी अपेक्षा की जा सकती है, न तो उलेमा और न ही राजनैतिक तत्व पूरी तरह संगठित थे। कट्टर एवं उदारपंथी इन दोनो प्रवृत्तियों के बीच विवाद 18वीं शताब्दी तक देश के बौद्धिक एवं राजनीतिक जीवन का लक्षण रहा। पहली प्रवृत्ति

---

[27] वही पृष्ठ 41,42

[28] शेख अहमद सरहिन्दी, मक्तूब-ए-इमाम-ए-रब्बानी, खण्ड 1, प्रपत्र संख्या 163 (स्त्रोत : पर्सियन सोर्सेज ऑफ इण्डियन हिस्ट्री संग्रहित एवं अनुवादित जी.एच. खरे, पूना, 1937-61)

थी। कट्टर प्रवृत्ति को भारत में विद्यमान स्थिति का ध्यान रखकर प्रवृत्ति कानून के शब्दों का सख्ती से पालन करते हुए शक्तिशाली कठमुल्लावासी शक्तियों का कानून प्राप्त था।[29] उदारवादी प्रवृत्ति राजनीतिक स्वार्थ को आकर्षित करती थी। बहादत–अल–वजूद और बहादत–अल–शहूद के समर्थकों के बीच और उनके बीच के सैद्धान्तिक मतभेद भी उन्हें एक दूसरे से दूर करते थे। दिल्ली सुल्तान के विघटन और उनके प्रान्तीय राज्य व्यवस्थाओं के पैदा होने के परिणाम स्वरूप मुस्लिम शासकों और उन क्षेत्रों के स्थानीय हिन्दू 'उच्च वर्ग' में निकट सम्बन्ध स्थापित हुए। बड़ी संख्या में अफगानों के ग्रामीण क्षेत्रों में बसने की भी यही प्रभाव पड़ा विभिन्न स्तरों पर राज्य की सेवा में नियुक्ति हिन्दू जमींदारों के संसर्ग की ओर झुकाव को लोदी और सूर शासकों द्वारा बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला।[30] जिसे आगे चलकर अकबर ने एक नीति के रूप में अपनाया। घटनाचक्र के इस परिवर्तन में सल्तनत काल के दौरान परिश्रम पूर्वक विकसित किये गये राज्य सिद्धान्त परोक्ष रूप से निहित थी। इसके बाद एक और चोट

---

[29] के.एम. अशरफ : लाइफ एंड कंडीशन आफ दी पीपुल आफ, हिन्दुस्तान, पृष्ठ 183-184

[30] वाक़्याते मुश्ताकी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय रोटोग्राफ पृष्ठ 63

1564 ई. को अकबर के जजिया समाप्त करने के निर्णय से पहुंची अबुल फजल के अनुसार बादशाह को राजनेताओं की असहमति और बेवकूफों की ज्यादा बकवास की अवहेलना करनी पड़ी। ऐसा लगता है कि उलेमा (उस काल के हठ धर्मियों) का विरोध विशेष रूप से प्रचंड रहा होगा लेकिन उसका कोई फल न निकला। जजिया की समाप्ति के औचित्य पर अबुल फजल द्वारा दिये गये, आधारभूत तर्क राजनीतिक और वैचारिक थे, यद्यपि आर्थिक पक्ष को अनदेखा नही किया गया था उसने तर्क दिया कि पहले जजिया शासकों के लालच और हिन्दुओं के विरोध के कारण वसूल किया जाता था। तो भी तत्कालीन आका के प्रचुर सद्भाव और दयालुता के कारण एक प्रकार से सोचने वाले विभिन्न धर्मो के लोगों ने भक्ति और सेवा के लिए कमर कस कर स्वयं राज्य के विस्तार के लिए काम किया और इसी कारण इस प्रकार के लोगों और जानी दुश्मनी बनाये रखने वाले पुराने हिस्सों के बीच भेद करना आवश्यक हो गया। फिर पहले शासकों और उसके सहयोगियों की आर्थिक आवश्यकताओं के कारण जजिया वसूल किया जाता था। लेकिन बादशाह के खजाने को धन्यवाद कि उसे समय की कोई जरूरत नही थी। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ जजिया के लाभ केवल 'काल्पनिक' थे वहाँ इसका आरोपण वसूल किये जाने वालों में से मनमुटाव को बढ़ाता था और इसलिए राजनीतिक

रूप से हानिकर था।[31] राज्य के प्रति हिन्दुओं की मुस्लिमों के समकक्ष निष्ठा का तर्क देकर अबुल फजल ने जजिया के पक्ष में धार्मिक तर्क की मुख्य टेक को हटा दिया।[32] उसने इस पर भी जोर दिया कि इन स्थितियों में जजिया की वसूली राजनीतिक हितों और स्वाभाविक न्याय के विरूद्ध थी। निष्ठा के आधार पर लोगों में भेद न कर पाने की परिकल्पना और 'सुलह–ए–कुल' की मूल संकल्पना की धर्मों के एक ईश्वर तक पहुँचने के रास्ते हैं, इन दोनों ने साथ मिलकर राज्य को सब धर्मों से (यद्यपि धर्म विरोधी नही) एक संस्था का रूप दिया। इस प्रकार अकबर की राज्य की संकल्पना आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक और धर्म निरपेक्ष थी तथा धार्मिक विशेषाधिकारों की जड़ पर चोट करती थी। सत्रहवीं शताब्दी में कट्टरपंथी और उदारवादी शक्तियों के बीच जंग का विस्तार विश्लेषण प्रस्तुत करने के संदर्भ में आवश्यक नही है। रूढिवादी तत्वों को शेख अहमद सरहिन्दी के रूप में एक सलाहकार मिला और वे बहादत उल शहूद के नारे को लेकर इकट्ठे हो गये। सत्राहवीं शताब्दी के दौरान शेख अहमद सरहिन्दी के सही सही राजनीतिक और बौद्धिक प्रभाव को अधिक नही आंका जाना चाहिए। फिर भी अमीर वर्ग और उलेमा दोनों में रूढिवादी दृष्टिकोण की एक पर्याप्त शक्तिशाली प्रवृत्ति के अस्तित्व पर अधिक संदेह है। अमीर वर्ग का एक गुट राजतन्त्र को एक जातिवादी और धार्मिक संस्था के रूप

---

[31] अबुल फजल, अकबरनामा, बेबरिज, द्वितीय, पृष्ठ 316-317

में देखता था। अतः उस वर्ग ने राज्य में अपनी शक्ति का एकाधिकार भंग होने पर अप्रसन्नतः व्यक्त की।[33] उन्होंने साम्राज्य को सुदृढ करने के लिए देशी शासकों के वर्गो के व्यापक समूहों को अमीर वर्ग में लाने की अकबर के नीति विषयक तर्क पर अप्रसन्नता दिखाई। शाहजहाँ के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही 5000 के ऊपर पदों पर आसीन मराठों की संख्या राजपूतों से अधिक हो चुकी थी।[34] इस नीति के विस्तार से अमीर वर्ग के पुराने समूहों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना आवश्यक रूढ़वादी उलेमा द्वारा अकबर की राज्य की परिकल्पना का विरोध इससे कम निष्ठुर नही था। मुगल बादशाहों के सामने मूलभूत राजनीतिक समस्या राजपूतों और दूसरे देशी शासक वर्गों के साथ मित्रता की आधारभूत नीति को छोड़े बिना रूढिवादी तत्वों के विरोध को शान्त करने की थी। इसके लिए बदले में व्यापक धार्मिक सहिष्णुता की नीति की आवश्यकता थी। जहाँगीर रूढिवादी तत्वों पर खुली चोट करने से बचता रहा, लेकिन कुल मिलाकर स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नही आया। शाहजहाँ ने स्वयं को औपचारिक रूप से ईनाम का रक्षक घोषित करके यह दर्शाने का प्रयास किया कि उसके राज्य का मूल चरित्र इस्लामी है। उसने नवनिर्मित मन्दिरों को नष्ट करने का आदेश दिया और भिवंर में हिन्दुओं और

---

[32] अब्दुर कादिर वदायूनी, मुन्तखबउत-तवारीख, अनु. रैंकिंग, पृष्ठ 339
[33] अब्दुल हमीद लाहौरी : पादशाहनामा, संपादक एवं अनुवादक अब्दुर रहीम, प्रथम भाग कलकत्त, 1867-72 पृष्ठ 328

इन्कार कर दिया और बजूदियों तथा शहूदियों सहित उलेमा के सब हिस्सों को राज्य का संरक्षण और प्रदान किया। शाहजहाँ की परिकल्पना अबुल–फजल द्वारा प्रतिपादित अकबर की राज्य विषयक परिकल्पना की प्रगतिगामी लेकिन मुस्लिम रूढ़िवादी की संस्थापित शक्ति को ध्यान में रखकर हुए सत्रहवीं शताब्दी के भारत में केवल यही समझौता सम्भव था।[35] अन्य सभी समझौतों की भाँति यह समझौता भी राजनीतिक स्वार्थ के अतिरिक्त किसी अन्य स्पष्ट सिद्धान्त पर आधारित नही था और इसलिए अस्थायी था। एक बार आधारभूत रूप से राज्य का इस्लामी चरित्र सिद्धान्त रूप में जब मान लिया गया तब इसे शरियत पर आधारित करने का तर्क बहुत जोर पकड़ने लगा। इस भय से कि यदि वह सिद्धान्त का उत्तराधिकारी बना तो राज्य विषयक अकबर की परिकल्पना की ओर फिर लौट जा सकता है। इन विचारात्क तर्कों को बल मिला। यद्यपि औरंगजेब ने समूहगढ़ की लड़ाई से पहले इस्लाम का नारा बुलंद नही किया।[36] राजपूतों (विशेषकर मेवाड़ के राणा राजसिंह और एक हद तक आम्बेर के जयसिंह कछवाहा के साथ राजनीतिक सन्धि की, फिर भी उसके गद्दी पर

---

[34] वही, द्वितीय भाग, पृ. 130-33

[35] रिजवी, रिवाइलिस्ट मूवमेन्टस, पृ. 407-409

[36] एम.अतहर अली, रिलिजस इशूज इन दि बार आफ सक्सेशन, प्रोसीडिंग्स इं. हि. का 23, पृष्ठ 53-254

बैठने से कट्टरपंथी उलेमा की प्रत्याशाओं को बल मिला।[37] औरंगजेब ने नये मन्दिरों के निर्माण पर रोक के पुराने आदेशों को फिर से जारी किया, अनेक नवाचारों (इनोवेरान्स) को बन्द करवा दिया और इस्लामी कानून तोड़ने की झूठी दलील पर दारा को फाँसी दी तथा मुराद को बन्दी बना लिया। लेकिन लगता है कि प्रारम्भ में वह शाहजहाँ की नीतियों के ढांचे से आगे जाने के लिए तैयार नही था। इस प्रकार कट्टरपंथी दृष्टिकोण के अनुसार जजिया की अनिवार्यता में कोई संदेह न होते हुए भी औरंगजेब ने इसे पुनः लागू नही किया। उसने राजपूतों और देशी शासक वर्ग के अन्य तत्वों के साथ सन्धि की नीति को दृढ़तापूर्वक जारी रखते हुए जयसिंह और जसवन्त सिंह को शाही मामलों और शाही पदानुक्रम में राजा मानसिंह के समय से किसी भी हिन्दू को प्राप्त स्थिति में ऊँची स्थिति प्रदान की। उलेमा को राज्य के नीति–निर्माण में भाग लेने की अनुमति नही थी। फिर भी आंशिक रूप से पिता को बन्दी बनाने और भाईयों के साथ दुर्व्यवहार से अपने विरूद्ध उभरी जनप्रतिक्रिया का सामना करने के लिए धर्म का इस्तेमाल करने की औरंगजेब की नीति से कट्टरपंथी तत्वों का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ता गया।[38] औरंगजेब की स्वयं की कट्टरपंथी प्रवृत्ति और उसके द्वारा शरियत के विरूद्ध होने के आधार पर परंपरागत

[37] वीर विनोद, द्वितीय, पृष्ठ 415-431
[38] मीरात, प्रथम, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 248

उत्साहित किया। एक समकालीन लेखक के अनुसार यद्यपि अपने शासनकाल के प्रारम्भ में जजिया को पुनः जारी करने के प्रश्न ने बादशाह का ध्यान दिया फिर भी उसने कुछ विशिष्ट राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण इस मामले को स्थगित कर दिया।[39] लेखक ने इन राजनीतिक आवश्यकताओं की चर्चा नही है लेकिन हम मान सकते है कि राजपूतों के साथ सन्धि बनाये रखने की आवश्यकता उसमें से एक थी। हो सकता है कि औरंगजेब को मराठों के साथ भी किसी समझौते पर पहुँचने की आंशा रही हो। फिर भी ये आशायें धूमिल पड़ गयी। विशेष रूप से ई.1676 में शिवाजी के साथ बहादुर खांन की सन्धि वार्ता के असफल होने तथा शिवाजी द्वारा गोलकुण्डा के सहयोंग से दक्षिण में एक मराठा राज्य स्थापित करने के प्रयत्न और मुगलों के विरूद्ध दक्खिन राज्यों के रक्षण का भार ग्रहण करने के बाद।[40] इन परिस्थितियों में दक्खिनी राज्यों के विघटन के आसन्न खतरे का सामना करने के लिए ही 1676 में औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य को पूरी शक्ति के साथ दक्खिन की ओर फैलाने का निर्णय लिया। इस प्रकार उसने सीमित अनाधिकार हस्तक्षेप की उस नीति का परित्याग कर दिया। जिसका पालन अकबर के समय से मुगल करते

---

[39] खुलासत-उल सियाक, अलीगढ़ विश्वविद्यालय पांडुलिप, पृष्ठ 38 बी (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय पुस्तकालय)
[40] जदुनाथ सरकार, शिवाजी, चौथ संस्करण, पृष्ठ 214-216

नीतियों पर चलना लगभग छोड़ दिया था। लम्बे युद्धों और कठिन प्रयासों का एक नया युग जन्म ले रहा था। 1676 से 1678 तक दक्खिन में जोरदार फौजी कार्रवाइयां हुई। मुगलों का न्यूनतम लक्ष्य बीजापुर एवं गोलकुण्डा में अपने लिए एक ऐसी स्थिति बनाना था जिससे इन राज्यों के मराठा अधिकार में जाने से बचाव के लिए उन्हें मराठों के साथ सन्धि करने से रोका जा सके और मुगलों द्वारा इन राज्यों के स्रोतों और सीमा क्षेत्रों का उपयोग मराठों के विरूद्ध किया जा सके। इसके बावजूद 1678 में मुगल इन सीमित उद्देश्यों को भी प्राप्त करने में असफल रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन परिस्थितियों में औरंगजेब के एक ऐसी प्रभावशाली घोषणा करने की आवश्यकता अनुभव की जो उत्साह जगाकर मुस्लिम विचारधारा को उसके पक्ष में लाकर इकट्ठा कर दे ऐसा पहले नाजुक स्थिति का सामना होने पर शासन जिहाद की घोषणा कर दिया करते थे। मूल रूप से कट्टरपंथी औरंगजेब को सबसे सही यह लगा कि साम्राज्य के विस्तार का नया दौर अधिक कट्टर पंथी राज्य की ओर प्रत्यावर्धन को रूचि करने वाले जजिया को पुर्नस्थापन से दर्शाया जाना चाहिए। यद्यपि

---

[41] जदुनाथ सरकार, शिवाजी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 277-280

हुई कि 1679 के बाद अमीर वर्ग के विभिन्न स्तरों में हिन्दुओं की संख्या कम नही हुई।[43] इस प्रकार जजिया के पुनरारोपण को एक कट्टर हिन्दू विरोधी नीति के उदघाटन का सूचक नही माना जा सकता है। जैसा कि कई बार तर्क के रूप में इसे प्रस्तुत किया गया। अतः जजिया का पुनरावरोपण मुख्य रूप से दक्खिन की बिगड़ी हुई स्थित के कारण गहराते राजनीतिक संकट का सूचक था। इसका कारण न होते हुए भी राठौर युद्ध ने संकट को और अधिक बढ़ाया।[44] जजिया के पुनःरोपण का एक अन्य कारण धार्मिक तत्वों में बढ़ती हुई बेरोजगारी थी। मुगलों के संरक्षित संत शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के वंशज भी गरीबी और अभाव में दिन काट रहे थे।[45] जजिया की आय को विद्वज्जनों, फकीरों धर्म तत्वओं आदि में पुण्यार्थ वितरण के लिए उद्दिष्ट करके और अपने खजाने तथा अमीन दल

---

[42] अबुज फजल तैमूरी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय रोटोग्राफ पृष्ठ 162ए, पृष्ठ 173बी। (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय पुस्तकालय)
[43] अहकाम, सरकार की प्रतिलिपि संख्या 39
[44] अतहर अली : मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब, बम्बई, 1966, पृष्ठ 34
[45] अबुल फजल तैमुरी : (ओ–आर 1674 पृष्ठ 149 ए) के अनुसार सतनामियों के दमन के बाद और औरंगजेब के अजमेर जाने से पहले पुनरारोपित किया गया था और इसका उद्देश्य 'विद्रोही काफिरों को सताना'था (मनकुल सख्तन कुफ्फर-ए-दारूल हर्ष) (सौजन्य एवं स्त्रोत : अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय पुस्तकालय)

उम्मीद थी कि धार्मिक प्रभाव द्वारा मुस्लिमों के सभी तबके उसके साथ हो जायेगें। लेकिन धार्मिक तत्वों ने स्थिति का लाभ उठाकर बड़े पैमाने पर बलपूर्वक वसूली और उत्पीड़न किया तथा व्यक्तिगत धन–सम्पति इकट्ठी की। मेरथा से शाही खबरची ने लिखा कि वहाँ के काजी ने जजिया के बहाने हिन्दुओं से भारी धन राशि छीनी।[47] मनूची और भी आगे बढ़कर कहता है कि जजिया के अमीन वसूली का आधा भाग या तीन चौथाई तक भी अपने पास रख लिया करते थे।[48] इस बात के प्रमाण भी मिलते हैं कि कई बार काजी जजिया की उगाही का उपयोग हिन्दुओं को अपमानित करने के अवसर के रूप में करते थे।[49] इस प्रकार औरंगजेब ने वापस एक रूढ़िवादी राज्य की ओर कदम रखे, जिसके कुछ लक्षण सल्तनत काल के थे। जैसा कि खाफी ख1ान और मामुरी के अनुसार।[50] इस कारवाई का सही उद्देश्य दारूल इस्लाम (शरियत का राज्य) को दारूल हर्ब (काफिर राज) से अलग करना था। लेकिन औरंगजेब ने यह नही सोचा कि सत्रहवीं शताब्दी का भारत चौथी और पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत से भिन्न

---

[46] साकी मुस्तैद खाँ, मासिर-ए-आलमगिरी, अनुवाद : जदुनाथ सरकार, कलकत्ता, 1947, पृष्ठ सं. 174
[47] वकाए-सरकार अजमेर, इलियट एवं डाउसन, भाग 5, इलाहाबाद, 1972, पृ. 116-120
[48] मैनुची, पूर्वोद्धत, पृ. 415
[49] डब्ल्यू के फारमिंजर द्वारा सम्पादित जे.ए.एस.बी., न्यू सीरीज पृष्ठ सं. 97
[50] खाफी खाँ मुन्तखब उल लुवाब, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 255

के नाम पर हिन्दुओ को अमीर वर्ग से और इस प्रकार राजनीतिक एवं सैनिक संचालन शक्ति से निकलना संभव नही था। इस प्रकार जजिया की पुनर्स्थापना एक अर्थहीन कार्य था। अमीर वर्ग के एक शक्तिशाली हिस्से द्वारा इसका विरोध हुआ जिसमें कहा जाता है कि जहाँआरा बेगम भी सम्मिलित थी।[51] यह बात महत्त्वपूर्ण है कि औरंगजेब की मृत्यु के शीघ्र बाद उसके दो मुख्य अमीरों, असदखान और जुल्फिकार खान ने जजिया को समाप्त करने में पहल की।[52] स्पष्टता ये शासक वर्ग उस हिस्सा का प्रतिनिधित्व करते थे, जो जजिया को एक राजनीतियुक्त मानता था और जिसे धार्मिक प्रभाव की वृद्धि तथा राजनीतिक मामलों में धार्मिक हस्तक्षेप के प्रति अरूचि थी।[53] स्वाधीन हिन्दू राजाओं ने भी इस पर बुरी तरह से नाराजगी जाहिर की थी।[54] प्रत्येक समूह पर जजिया की ठीक--ठीक गणना करना आसान नही है। एक आधुनिक आकलन के अनुसार शहरी मजदूर को वर्ष में एक महीने का वेतन जजिया के रूप में देना होता

---

[51] मैनुची, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 288-91
[52] सतीश चन्द्रा, पार्टीज एण्ड पालिटिक्स, पृष्ठ सं. 45
[53] आर.ए.एस. पेरिस, सूची 173 पृष्ठ सं. 8A-11A
[54] भीमसेन, दिलकुशा, अनुवाद जदुनाथ सरकार, बम्बई, 1972, पृष्ठ 179

द्वारा जजिया के भुगतान से छूट[57] इस पर कड़ी आपत्ति उठाने के बावजूद ऐसा लगता है कि ऐसी छूटे नियमित रूप से दी जाती रही है।[58] 1704 में अकाल और युद्ध से उत्पन्न संकट के कारण पूरे दशक में जजिया माफ कर दिया गया था।[59] राजनीतिक रूप से जजिया पर सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि यह हिन्दुओं के सबसे प्रभावशाली हिस्सों को परेशान और विमुख करता है, जैसी शहरी जनता, विशेष रूप से द्रुतगति से बढ़ता हुआ, व्यापारी दुकानदार और साहूकार वर्ग, जिसका देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन में उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा महत्त्वपूर्ण स्थान था।[60] जजिया इकट्ठा करने वालों द्वारा ये लोग बुरी तरह परेशान और उत्पीड़ित किये जाते थें और बदले में अनेक अवसरों पर हड़ताल एवं आम प्रदर्शनों की शरण लेते थे।[61] अन्त में साम्राज्य के राजनीतिक विरोधियों के लिए हिन्दुओं की भावनाओं को इसके विरूद्ध संगठित करने के लिए जजिया

---

[55] इरफान हबीब, ऐग्रेरियन सिस्टम आफ द मुगल अम्पायर, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 246-247
[56] एगानाइड्स, मोहम्डन थियोरीज आफ फाइनेन्स, पृष्ठ सं. 399-405
[57] मैमूरी पृष्ठ सं. 179A
[58] मलिकजादा, निगारनामा ए- मुंशी, लखनऊ, 1882, पृष्ठ 45
[59] इरफान हबीब : ऐग्रेरियन सिस्टम आफ द मुगल अम्पायर पृष्ठ सं. 246
[60] मैनुची, पूर्वोद्धत, द्वितीय भाग, पृ. 415
[61] खतूत-ए- शिवाजी, आर.एम.एम.एस., पृष्ठ सं.

कोई विश्वास नही, सैनिक अत्याधिक गरीब है, लेखक बेरोजगार है और व्यापारियों के पास साधन नही है, किसान दबे कुचले है और हिन्दू फिरके पर दो विपत्तियाँ टूट पड़ी हैं, (पहली) शहरों में जजिया का अपहरण और (दूसरी) देश में शत्रु (अर्थात मराठों) का उत्पीड़न। जब लोगों पर सब ओर से कष्ट ही कष्ट आ पड़े हो तो वे शासकों को धन्यवाद कैसे दें और कैसे उसके लिए प्रार्थना करें।[63] जजिया को लेकर किये गये औरंगजेब के प्रयोग ने यदि यह कुछ सही दर्शा सकता है, तो भारत में राज्य को औपचारिक रूप से भी शरीयत आधारित करने की और इस आधार पर हिन्दुओं और मुस्लिमों में भेद बनाये रखने की व्यावहारिक असंमबाध्यता को दर्शाता है। अन्त में अकबर का व्यापक आधार वाला धर्म निरपेक्ष राज्य और सल्तनत काल का संकीर्ण आधार वाला राज्य चल नही पाया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान मुस्लिम शासकों के अधीन जो साधारणः चल पाया वह शाहजहाँ का विभिन्न दर्शनग्राही समझौता था।

मुसलमानी राज्य में रहने की इजाजत के लिए हर काफिर को जजिया नामक कर देना पड़ता था। जजिया का अर्थ है बदले में दिया

---

[62] खतूते-ए-शिवाजी, पत्र संख्या 32

[63] मीराते अहमदी, पूर्वोद्धत, पृ. 40-42

युद्ध करो जब तक कि वे दीनतापूर्वक अपने ही हाथों जजिया नही चुका देते।[64] स्त्रियों तथा 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे तथा गुलाम इस कर से मुक्त थे। यदि अन्धे, लगड़े और पागल धनवान होते थे तो उनको भी यह कर देना पड़ता था। निर्धन होने पर मंहत एवं सन्यासी भी इससे छूट जाते थे, किन्तु यदि वे एक सम्पन्न मठ में रहने वाले में होते थे तो इनके मठाधीशों को उन गरीब महन्तों या सन्यासियों की ओर से भी यह क्रर चुकाना पड़ता था। इस कर की राशि मनुष्य की वास्तविक आय के अनुपात में नही होती थी। जायदाद के मूल्यांकन के आधार पर कर देने वाले साधारणतः तीन श्रेणियों में विभाजित किये जाते थे। सबसे पहली श्रेणी में रूपया पैसा का लेन–देन करने वाले कपड़े के व्यापारी, जमीदार और वैद्य होते थे परन्तु दर्जी रंगरेज कुम्हार चमार आदि व्यवसायी लोगों की गिनती गरीबों में होती थी। उनसे यह कर उसी स्थिति में लिया जाता था, जबकि उनके पास जीवययापन के लिए आवश्यक राशि के बाद भी उनकी आय मे कुछ राशि शेष बचता है। भिखारी एवं दिवालिया इस कर से बच जाते थे। आबादी की गरीब़ जनता पर ही जजिया का सबसे

---

[64] वही, पृष्ठ 206

उदारनीति को उलट कर अपने आदेश से 2 अप्रैल 1679 ई. में साम्राज्य के सर्व भागों में जजिया कर फिर से लगा दिया। जिसकी सम्पत्ति 200 दिरहम (52 रूपये) अर्थात 51 तोले, 10 माशे व 7½ गेन चाँदी के बराबर थी, उनको 12 दिरहम(3½ रूपये) जजिया देना पड़ता था।[65] यह सम्पत्ति का 6 प्रतिशत जजिया होता था। यंह एक अकिंचन प्रकार से पूंजी कर था, जिसके द्वारा लगभग 20 वर्षों में सारी पूंजी समाप्त हो जा सकती थी। दिनांक 10.2.1704 के धन के लेन–देन सम्बन्धी एक विवरण में ब्याज की दर 4 प्रतिशत बताई गयी है।[66] इससे पता चलता है कि दरिद्र लोगों से अर्थात जिनकी सम्पत्ति का मूल्य 52 रूपये से लगभग 2500 रूपये थी। उनको 24 दिरहम अर्थात 6¼ रूपये जजिया देना पड़ता था। चार प्रतिशत की दर से 2500 रूपये की आय 100 रूपये थी। अतः जजिया की दर आय का 6¼ प्रतिशत हुई। इस वर्ष के लिए जजिया की दर बहुत कम थी। जिसकी सम्पत्ति का मूल्य 10 हजार दिरहम से अधिक था। उनकी आय का विचार किये बिना उनसे 48 दिरहम लेकर उसको सरलता से

---

[65] वही, पृष्ठ 206
[66] जयपुर रिकार्ड, पृष्ठ 16.33

लिया गया कि स्वेच्छा से कर न देने वालों का एक साल बाद भी यदि पता चलेगा तो कर दाता को एक वर्ष में ही कर चुकाना होगा। किन्तु यदि संग्रहकर्त्ता की भूल के कारण कर की अदायगी नही हुई तो कर दाता को एक वर्ष हो का कर चुकाना पड़ता था।[67] दिल्ली और वहाँ के समीपवर्ती प्रदेश के हिन्दुओं ने एकत्रित होकर इस कर को हटा देने के लिए औरगंजेब से बड़ी ही करूणा जनक प्रार्थना की थी। किन्तु बादशाह ने यह सब सुनी अनसुनी कर दी। इसी समय शिवाजी तर्कयुक्त एवं विचारपूवर्क सम्पूर्ण शब्दों में एक पत्र लिखकर इस नये कर की अवनीति को दूर करने के लिए औरगंजेब से प्रार्थना की थी। मानव मात्र के लिए ईश्वर एक ही है और उस ईश्वर का सच्चा विश्वास करने वाले सारे धर्म ईश्वर के लिए समान ही हैं। इस महान सत्य की ओर ध्यान देने के लिए औरगंजेब से बड़ी ही करूणाजनक प्रार्थना की थी। किन्तु अपने पत्र में विशेष आग्रह किया था। किन्तु इस ओर सम्राट ने कोई ध्यान नही दिया[68] कभी कभी इससे छूट भी मिल जाया करती थी। दीवान–ए–दक्कत

---

[67] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, कलकत्ता, 1940, पृष्ठ 181
[68] जदुनाथ सकार, औरंगजेब, भाग 3, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 179

जजिया की छूट किसी स्थिति में न दे। जजिया के अतिरिक्त वह सब कुछ छोड़ सकता था, क्योकि सम्राट को जजिया पुनः लगाने में बड़ी कठिनाइयों के बाद सफलता प्राप्त हुई थी।[69] कुछ ऐसी घटनाओं का संकेत भी प्राप्त होता है, जबकि औरंगजेब ने कुछ आपदग्रस्त नगरों को जजिया अदा करने से मुक्त कर दिया था। 1681 ई. में बहादुरपुर के निवासियों ने जजिया छोड़ने के लिए सम्राट के अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की थी। औरंगजेब उसी दिन इस विषय पर विस्तृत प्रत्यावेदन प्रस्तुत करने का आदेश दिया था। दुर्भाग्य से वर्तमान अभिलेखों में इस विषय पर जारी किये गये अन्य आदेश से उपलब्ध नही है। स्थानीय अधिकारियों एवं निवासियों के आवेदन पर एक या दो साल के लिए इस कर का संग्रह रोक दिया गया था। 19 फरवरी 1704 ई. को दक्षिण मुगल प्रान्तों में मराठों के आक्रमण से उत्पन्न कठिनाइयों के कारण जजिया की वसूली रोक दी गयी थी।[70] 12 नवम्बर 1704 ई. को देवलघाट में 30 वर्ष के लिए उक्त कर संग्रह निषिद्ध कर दिया गया था। हैदराबाद की विजय के

---

[69] खाफी खाँ, पूर्वोद्धत, पृ. 377
[70] कोर्ट बुलेटिन, 19 फरवरी, 1704

सम्भवतः यह अस्थायी रूप की व्यवस्था थी। लेकिन समकालीन लेखकों के कथनानुसार कि औरंगजेब ने अपनी दक्षिण भारत की विजय के बाद जजिया कर उसका बलपूर्वक संग्रह किया था। जो लोग इस्लाम को नही मानते, उनसे उस समय तक लड़ते रहे, जब तक कि वे नम्रतापूर्वक जजिया न दे, ये पैगम्बर के वचन है। (कुरान, नवाँ, 729) फिर भी ये विशाक्त कर अकबर ने समाप्त कर दिया तब से एक शताब्दी तक पुनः किसी ने लागू नही किया था। अब आलमगीर ने पुनः इसको पुनर्जीवित किया। सरकारी इतिहास में लिया है,'' धार्मिक सम्राट का उद्देश्य था कि इस्लाम का प्रचार–प्रसार हो और काफिरों की धार्मिक क्रियाएं नष्ट हो, इसलिए ही उसने आदेश दिया कि रवी–उल (2 अप्रैन 1979) से कुरान के नियमों के अनुसार जिम्मी लोगों पर जजिया कर लगाया जाय।[72] कुछ वर्तमान लेखक यह मानते हैं कि ज़ज़िया उनसे लिया जाता था जो सैनिक सेवा से मुक्त होना चाहते थे लेकिन यह बात इतिहास से सिद्ध नही होता। जदुनाथ सरकार के अनुसार '' यह कोई भूल नही होगी कि मुगल साम्राज्य में प्रत्येक नागरिक राज्य को कर देता था; उसका 1/3 जजिया

---

[71] ईश्वर दास नागर, फुतुहात-ए- आलमगिरी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 111
[72] एस.आर शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 328

उदाहरण मीर अब्दुल करीम कोतवाल बुरहानपुर के व्यवहार से मिलता है। वह " पहले इस शहर से 26 हजार रूपया प्रत्येक वर्ष जजिया के रूप में वसूल करता था, परन्तु उसने तीन महीने में ही केवल आधे नगर से चौगुने से भी अधिक धन वसूल कर लिया (सन् 1682)। जजिया के विषय पर बादशाह का रूख सब प्रकार के राज्यकर में छूट देने में तुम लोगों क़ो आजादी है। परन्तु काफिरों पर जजियाकर लगाने में मुझे बड़ी कठिनता से सफलता प्राप्त हुई, इसलिए तुम लोगों ने जजिया में कहीं छूट दी तो यह अधर्म का काम होगा और जजिया, वसूल करने की सारी व्यवस्था में गड़बड़ी हो जायेगी।" इसलिए जब हजारों हिन्दू बादशाह से प्रार्थना करने के लिए इकट्ठे हुए उसने आदेश दिया कि वे एक घण्टे के अन्दर चले जायें जब वे नही हटे और विरोध करते रहे तो उन्होने उन पर हाथी दौड़े दिये।[73] जकात महसूल (कर) दुर्भाग्य वश जजिया ही एक ऐसा कर नही था जो हिन्दुओं को देना पड़ता था। खाफी खाँ लिखता है, "एक ऐसा आदेश दिया गया जिसके अनुसार मुसलमानों को व्यापारी माल पर सारे भारतवर्ष में कर माफ कर दिया गया, परन्तु थोड़े दिन बाद माल के हाकिमों को रिपोर्ट आयी और अच्छे एवं अनुभवी लोगों ने लिखा तो दूसरा

---

[73] वही, पृ. 329

आदेश जारी हुआ कि मुसलमानों को ऐसी चीजें जिनका मूल्य अधिक नही हो, बिना महसूल के आ जा सकती है परन्तु जिन चीजों की कीमत ज्यादा हो उस पर कर लिया जाय। साझेदारों के सामान पर कर नही लगाया जाय। तब हाकिमों ने सूचना भेजी कि मुसलमान लोग अब महसूल से बचने के लिए अपनी चीजों के छोटे –छोटे भाग कर देते हैं और अपने नाम पर हिन्दुओं के माल को भी बिना कर निकाल देते हैं, इसलिए कुरान में जो जकात देने का आदेश है उससे लोग बच जाते हैं तब यह आदेश हुआ कि शरीयत के अनुसार मुसलमानों से 2½ और हिन्दुओं से 5 प्रतिशत कर लिया जाय।[74] जजिया के अतिरिक्त औरंगजेब ने हिन्दुओं पर यात्रा कर और गंगा में हड्डी डालने का कर लगाकर उस पर करों का भार लाद दिया था।[75]

---

[74] वही, पृ. 339

[75] ए.एल. श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 512

चतुर्थ अध्याय

औरंगजेब के शासन काल में हिन्दू मनसबदारों की स्थिति

मनसब शब्द से स्थान और पद का अर्थ निकलता है। मनसबदार सेना के अर्न्तगत उच्च पद प्राप्त अधिकारी होते थे। मनसबदारों का पद निम्नतम दर्जा 10 का था और सर्वोच्च दर्जा 10 हजार का था। अपने शासन काल के उत्तरार्द्ध में अकबर ने इस सर्वोच्च दर्जा को ग्यारह हजार का बना दिया था।[1] समस्त मुगलकाल में मनसबदारों को उच्च बेतन दिये जाते थे। वेतनों का भुगतान जागीर अथवा नकद में हुआ करता था। 1690 ई. में 11456 मनसबदार में से 7999 को नकद तथा 3457 को जागीर के रूप में वेतन का भुगतान किया जाता था।[2] मनसबदार मुगल साम्राज्य का शासक वर्ग था। लगभग सभी अमीर, प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारी मनसबदारी ही होते थे। मनसबदारों की संख्या और विभिंन्न कालों में उनकी संरचना न केवल राजनीति और प्रशासन को प्रमाणित करती थी, और साम्राज्य की अर्थ व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता था। अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार शाहंजहाँ के राज्य काल के बीसवें वर्ष में 8000 मनसबदार थे और 7,000 'अहदी' और सुसज्जित तोपची थे। जो कि

---

[1] आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 187

[2] श्रीराम शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं.116

सम्राट की प्रत्यक्ष सेवा में थे अर्थात साम्राज्य स्वयं उनको वेतन देता था।[3] औरंगजेब के राज्यकाल में 1690 ई. से कुछ समय पूर्व– मनसबदारों अहदियों (दो–अस्पा, से अस्पा) तोपचियों और अन्य सेवकों की संख्या 14949 थी।[4] मनसबदारों की संख्या के विवरणों का उल्लेख पृथक रूप से निहित किया गया हैं। किन्तु इस अभाव की कोशिक पूर्ति सम्राट के सेवकों के वर्गीकरण से हो पती है कि नगदी मनसबदारों की संख्या 7957 तथा जागीरदारों की संख्या 6992 थी।[5] मनसबदारों की श्रेणी में कुछ ही नाम नकद पाने की सूची में था। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त संख्या में वास्तविक मनसबदारों की संख्या (अहदियों के अतिरिक्त) 8000 से अधिक न थी। इसका अर्थ यह होगा कि मनसबदारों की जो कुल संख्या शाहजहाँ के राज्यकाल के 20वें वर्ष में थी। उसके अनुपात में कोई विशेष वृद्धि दिखाई नही पड़ती। चूँकि इसमें वर्ष का उल्लेख स्पष्ट रूप से नही है किया गया था। इस कारण तुलना को अधिक महत्तव नही दिया जा सकता। क्योंकि प्रस्तुत आंकड़ें औरंगजेब के राज्यकाल के प्रारम्भिक भाग से लिये गये हैं। इनमें सबसे प्रमुख वह तालिका है जो कि आईन में 200 और उससे 500 और उससे उच्च जात के मनसबदारों से

---

[3] अब्दुल हमीद लाहौरी, पादशाहनामा, अनु. कबीरूद्दीन अहमद और अब्दुर रहीम, 2 भाग, कलकत्ता,1867-72 द्वितीय, पृष्ठ सं. 715

[4] जबालित-ए-आलमगीरी, पृष्ठ सं.15 अ, द्वारा सेलेक्टेड ऑफ औरंगजेब्स रेन, पूर्वोद्धत, पृ. 302

[5] वहीद मुमालिक-ए-महरूम-ए-आलमगीरी, पृष्ठ सं. 137 द्वारा पर्सियन सोर्सेज ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, अनु. जी.एच. खरे, पूना, 1937-61, पृ. 496 भाग 4

आसीन थे। लाहौरी ने दो तालिकाएं प्रस्तुत की है, एक शाहजहाँ के राज्यकाल के प्रथम दशक की ओर द्वितीय दशक की, तथा वारिस की तालिका तीसरे दशक से संम्बन्धित हैं। इन तीनों तालिकाओं में मनसबदारों के नाम भी अंकित है जो कि भूतपूर्व दशक में था तो परलोक सिधार चुके थे, पदच्युत कर दिये गये थे और उनके मनसब भी वहीं दिखाये गये है। जो कि जिसमें शाहजहाँ के शासनकाल के सभी मनसबदारों के नाम उनके द्वारा उच्चतम प्राप्ति पद के आधार पर दिये गये हैं। प्रत्यक्षतः साहेल क्री तालिका लाहौरी और वारिस की तालिकाओं पर आधारित है। जिसमें उन मनसबदारों के नाम जोड़ दिये गये हैं जिनकी शाहजहाँ के काल में अन्तिम तीन (चन्द) वर्षों में या तो नयी नियुक्ति हुई या पदोन्नति हुई।[7]

दुर्भाग्यवश औरंगजेब के राज्य काल से सम्बन्धित इस प्रकार की कोई भी तालिकाएं प्राप्त नही हैं। इस अभाव की पूर्ति का केवल एक ही उपाय है कि अवशिष्ट ऐतिहासिक सामग्री से व्यक्तिगत मनसबदारों और उनके पदों से सम्बन्धित जानकारी एकत्र कर ली जाय।

---

[6] मुहम्मद साहिल कम्बू, अमल-ए-साहेल तृतीय, पृष्ठ सं. 448, 89, एम. अतहर अली, मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, बंबई, 1966, पृ. 285 द्वारा उद्धरित

[7] वही,

के नाम तथा जिन अवधि में उनको उच्च मनसब प्राप्त हुए अंकित कर दिये गये हैं। अतः उन तालिकाओं में कई नाम समान रूप से आये हैं।[8]

मुहम्मद काजिम द्वारा रचित राजकीय इतिहास आलमगिरीनामा से औरंगजेब के राज्यकाल के प्रथम दशक के 1000 जात और उसके ऊपर के मनसबदारों की पदोन्नति का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त हमारे पास कोई भी तुलनात्मक ब्यौरा नही है और यह भी सम्भव है कि आधार भूत ग्रन्थों में निम्नश्रेणी के मनसबों का उल्लेख ही नही किया गया है अतः सन् (1679–1707) ई. की तालिका में 3000 से लेकर 4500 जात के मनसबदारों की संख्या में कुछ वृद्धि की तो अवश्य आवशएकता हो सकती है। किन्तु 1000 से 2700 जाति के मनसबदारों की संख्या वास्तविक संख्या से सम्भवतः बहुत ही कम है। उपरोक्त तालिका के रूप–रेखा में लाहौरी और वारिस की तालिकाओं से प्रत्यक्ष तुलना नही की जा सकती है, क्योंकि ये उपेक्षाकृत सीमित अवधि से सम्बन्धित है। अधिकांशतः यह आईन और सालेह की तालिकाओं के समान है।

---

[8] एम. अतहर अली : औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पूर्वोद्धत पृष्ठ सं. 20,

सम्राट के पुत्र व पौत्रों के अलावा मनसबदार	राज्यकाल के 40 वर्ष	राज्यकाल के 30 वर्ष	21 वर्ष	29 वर्ष
5000 और उसमें उच्च	29	49	51	79
3000 से 4500	30	88	90	133
1000 से 2700	74	300	345	363
योग	133	437	486	575

इस विवरण से स्पष्ट है कि अकबर के राज्यकाल के 40 वे वर्ष और शाहजहाँ के राज्यकाल के तीसवें वर्ष के मध्य मनसबदारों की सभी श्रेणियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी।[9] साहेल की तालिका तथा औरंगेजेब के मनसबदारों की दो तालिकाओं के मध्य कि जहाँ शाहजहाँ के राज्यकाल के तीस वर्ष की सम्पूर्ण अवधि में 5000 जात व उससे उच्च के मनसबदारों की संख्या केवल 49 ही थी, औरंगजेब के राज्यकाल के प्रथम बीस (सौर) वर्षों में, यही संख्या 51 हो गई। औरंगजेब के राज्यकाल प्रथम

[9] आइन-ए-अकबरी, भाग 1, अनु. ब्लाखमैन, कलकत्ता, 1927, पृ. 513

यह अन्तर प्रचुर नही है।[10] औरंगजेब द्वारा उत्तराधिकारी के युद्ध के मध्य और तत्पश्चात अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु नियुक्तियों एवं पदोन्नतियों के कारण हुई। शाहजहाँ की स्थिति सिंहासनारोहण के समय अपेक्षाकृत अच्छी थी, और उनको मनसबों की अपेक्षाकृत कम वृद्धियां करनी पड़ी।

	शाहजहाँ के राज्यकाल के प्रथम दो वर्ष	औरंगजेब के राज्यकाल के प्रथम दो वर्ष
जात	43500	89,000
सवार (दो–अस्पा सेह–अस्पा को चुनाव करके गणना की गयी है।)	44420	54000

ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब ने अपने राज्यकाल के अगले आठ वर्षों में, पदोन्नतियां करने में रोक लगा देने की चेष्टा की जैसा आलमगिरीनामा पर आधारित तालिका द्वारा स्पष्ट है।[11]

---

10 मुहम्मद काजिम, आलमगीरनामा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 40

11 एम. अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 23

सवार	54000	16400	7550	5230	8700	17550	2400	1400	5770

मनसबदारों, अहदियों इत्यादि के आंकड़े जवावित–ए–आलमगिरी में उल्लिखित है। सम्भवतः वह औरंगजेब के राज्यकाल की प्रथम अवधि (1658–78 ई.) अन्तिम वर्षों में किसी एक वर्ष के ही है। परन्तु आगामी अवधि (1679–1707 ई.) में मनसबदारों की कुल संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई लेकिन यह अवधि पूर्व से 8 वर्ष अधिक है, परन्तु केवल यही तथ्य मनबदारों की संख्या में वृद्धि का एक मात्र कारण स्वीकार नही किया जा सकता है। जबकि शाहजहाँ के समस्त तैतीस वर्ष के राज्एकाल में 5000 और उसके ऊपर के मनसबदारों की संख्या प्रथम बीस वर्षीय राज्यकाल की अवधि जिसमें यह संख्या 47 थी कि तुलना में 49 थी। यह अन्तर औरंगजेब के प्रथम इक्कीस वर्षीय अवधि में 51 से बढ़कर आगामी उन्तीस वर्षीय अवधि में 79 हो गयी जो 56 प्रतिशत वृद्धि दिखलाता है।[12] 3000 से लेकर 4500 तक के मनसबदारों की संख्या 90 से 133 हो गयी अर्थात उसमें 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई। तृतीय श्रेणी अर्थात 1000 से 2700 तक

[12] अब्दुल हमीद लाहौरी, पादशाहनामा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 716-18

बढ़कर 365 हो गयी, सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि आधारभूत ग्रन्थकारों ने इन श्रेणी के सभी मनसबदारों का उल्लेख नही किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि मनसबदारों की संख्या में वास्तविक वृद्धि विशेषकर उच्चश्रेणी में औरंगजेब के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में उस समय हुई जब उसने समस्त दक्कन को विलय करने की योजना क्रियान्वित कर दी और मराठों के विरूद्ध अन्नत युद्ध उसे आरम्भ करना था। ऐसी दशा में अधिकाधिक संख्या न केवल मराठा और दक्खनी अमीरों की भर्ती ही हुई, वरन् उनमें से अनेक की पदोन्नति भी हुई तभी तो संतोषजनक सेवा के कारण परन्तु मुख्यतः दल बदलने के लिए लालच के रूप में इस प्रकार मनसबदारों की संख्सा इतनी बढ़ गई, कि उनको जागीरें प्रदान करना भी कठिन हो गया।[13] मुगल अमीर वर्ग सम्राट की संरचना थी। केवल उन्हें अपनी ही प्रजा को मनसब प्रदान करने, उसमें उन्नति करने या जब्त करने का एकाधिकार प्राप्त था। परन्तु यह धारणा कि मुगल अमीर में कोई व्यक्ति योजना के किसी निर्धारित मापदण्ड की पूर्ति करके और सम्राट को संतुष्ट करके सम्मिलित हो सकता था, भ्रामक हैं, मनसबदार केवल जनसेवक ही न थे, वरन् साम्राज्य के सम्पन्नतम एवं कुलीन वर्ग के सदस्य होते थे। अमीर वर्ग की नियुक्ति के समय सर्वाधिक

[13] खाफी खां, मुन्तखब उल लुबाव, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 411-12

एक हजारी या उससे उच्च पद के मनसबदारों में से 213 या तो मनसबदारों की सन्तानें थी या वंश द्वारा निकट सम्बन्धी (केवल विवाह द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों को छोड़कर) ही थे।

1658–1678 ई.			
जात	मनसबदारों की कुल संख्या	खानजादा	प्रतिशत
5000 जात और उसमें उच्च	51	25	49
3000 जात से 4500	90	61	68
1000 से 2700	345	127	37
योग	986	213	44

सन् 1679–1707 की अवधि में ऐसे मनसबदारों की संख्या 575 में से 272 थी।[15]

[14] वही,

[15] बहार-ए-आजम, एस.वी. 3 पृष्ठ सं. 17 (एम, अतहर अली से उद्धत)

	संख्या		
5000 जात और उसमें उच्च	79	24	30
3000 जात से 4500	133	70	33
1000 से 2700	363	178	47
योग	575	272	47

मनसबदारों की कुल संख्या में जिसके बारे में हमारी जानकारी अधिक पूर्ण हैं, उसका अनुपात गिरकर 51 से 25 और 79 में से 24 हो गया था। जब हम निम्न श्रेणियों पर आते है तो उसका अनुपात बढ़ जाता है। किन्तु निम्न श्रेणियों की हमारी श्रेणियां उतनी पूर्ण नही हैं। उसके अतिरिक्त हमारे इतिहासकारों का ध्यान उन समान श्रेणी वाले मनसबदारों जिसका सम्बन्ध किसी सुप्रसिद्ध परिवारों से न था, कि अपेक्षा उन मनसबदारों की ओर अधिक गया जो विशिष्ट अमीरों के वंशज थे।1[16] मनसबदारी के लिए अमीर वर्ग का अधिकांश भाग वंशानुगत अधिकार के

[16] खाफी खां, मुन्तखब उल लुवाब, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 396-97

था, जिसके पास मनसब थे। उनमें से उनके ऐसे व्यक्ति जो भूसम्पदा की दृष्टि से शक्तिशाली थे। इस वर्ग में साम्राज्य के सामन्त या जागीरदार थे। यद्यपि जमींदारों को राज्य के अधिकारियों की श्रेणी में सम्मिलित कर मुगलों ने कोई नई बात नही की।[17] अकबर ने अधिकाधिक जमींदारों और उनके सम्बन्धि रायों को मनसब प्रदान कर इस वर्ग को अधिक महत्त्व प्रदान किया। उनकी पैत्रिक सम्पदा उनके पास रहने दी गयी। जिसे उनकी वतन जागीरें समझा गया, परन्तु सरकारी अधिकारी होने के नाते उन्हे साम्राज्य के विभिन्न भागों में जागीरें प्रदान की गयी।[18]

औरंगजेब का राजपूत के प्रति नीति विवादास्पद विषय है। क्योंकि उसकी नीति, धर्म से अत्याधिक सम्बन्धित है और उसकी धार्मिक नीति दीर्घकाल से विवाद का विषय बनी हुई है। शाहजहाँ एक धर्मपरायण मुसलमान शासक था। जिसने अपनी कट्टरता का प्रदर्शन करने के लिए अनेक पग उठाये इसके बाद सूचियों से स्पष्ट है कि उसके राज्यकाल में राजपूत मनसबदारों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई।[19] औरंगजेब भी धर्मपरायण मुसलमान था तथा राजपूतों के प्रति द्वैष रखने के लिए

---

[17] बरनी, तारीखे-ए-फिरोजशाही, एस.ए.ए. रिजवी, खिलजी कालीन भारत, अलीगढ़, 1957, पृ. 198-9
[18] एम. अतहर अलीः औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग पृष्ठ सं. 26,
[19] श्रीराम शर्मा, रेलीजन पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, आक्सफोर्ड, 1940, पृ.

शाहजहाँ के दरबार में उसकी निन्दा की गई थी। राव करन की पदोन्नति के विरोध को शाहजहाँ ने औरंगजेब के प्रस्ताव को ठुकराया था।[20] उत्तराधिकार युद्ध होने के कुछ वर्ष पूर्व ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब ने प्रमुख राजपूत सरदारों को अपने पक्ष में करने की चेष्टा की थी। उसने मेवाड़ के राणा राजसिंह को जो 'निशान' भेजे थे वे उपलब्ध है।[21] औरंगजेब द्वारा भेजे गये राणा के निशानों में उसने राजा को आश्वासन दिया कि 1654 में चित्तौड़ के दुर्ग को पुनः सुदृढ़ बनाने के लिए उसे दण्ड के रूप में लिये गये प्रदेश को वापस कर दिया जायेगा। एक निशान में उसने जोरदार शब्दों में आश्वासन देते हुए कहा कि वह अपने पूर्वजों की धार्मिक नीति का अनुसरण करेगा और इस बात की घोषणा की कि वह सम्राट जो दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णुता का व्यवहार करता है, ईश्वर के प्रति विद्रोह है।[22] प्रोफेसर कानूनगो ने इस बात का विस्तृत उल्लेख किया है कि मिर्जा राजा जयसिंह गुप्त रूप से औरंगजेब का समर्थक बन गये थे तथा उन्होंने दारा शिकोह को उखाड़ फेंकने में भाग लिया था।[23] सूमहगढ़ के युद्ध के पूर्व औरंगजेब के 124 समर्थकों में से 1000 व उसके ऊपर के मनसबदारों में केवल वही राजपूत थे जबकि दारा शिकोह के

---

[20] वही,
[21] बीर विनोद, द्वितीय, पृष्ठ 423-24, 426-27
[22] एम.अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 419-20
[23] के. आर. कानून गो, दारा शिकोह, दिल्ली, 1960, पृ. 60-61

राजपूत समर्थकों की गणना करते समय औरंगजेब के समर्थकों की श्रेणियों में से जयसिंह तथा कछवाहों को पृथक ही रखा गया, चूँकि वे उस समय सुलेमान–शिकोह की सेना में थे जो शुजा के विरूद्ध कूच कर रही थी। उसके अतिरिक्त दारा शिकोह की सूची में बहुत से ऐसे राजपूत का नाम है जो उस समय दरबार में थे और उनके सामने दारा का समर्थन करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नही था। वास्तव में दारा के प्रति राजपूतों में स्वामिभक्ति न थी।[25]

औरंगजेब अपने राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में राजपूतों के प्रति कुछ सीमा तक सम्बद्धतः दिखायी एवं शाहजहाँ के समय जो उनकी स्थिति थी, उसमें वास्तव में कुछ सीमा तक सुधार भी हुआ। शाहजहाँ के सम्पूर्णकाल में एक भी राजपूत अधिकारी 7000 का मनसबदार न था। किन्तु राजा मिर्जा जयसिंह तथा हालाँकि जसवन्त सिंह ने खजुवाह के युद्ध में औरंगजेब के विरूद्ध भाग लिया था, जिसकी पदोन्नति 7000/7000 तक कर दी गयी।[26] 1606 ई. में मानसिंह को बंगाल से वापस बुला लिया जाने से लेकर अब तक किसी भी राजपूत अमीर को कोई भी महत्वपूर्ण प्रान्त नही सौंपा गया था, किन्तु 1665 में जयसिंह को

---

[24] एम. अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 37
[25] वही, पृ. 45-46
[26] एम अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 37

एक शहजादे के परामर्शदाता के रूप में नही प्रत्युत अपने ही अधिकार द्वारा दक्कन का वायसराय नियुक्त किया गया। मुगल साम्राज्य में यह पद सर्वोच्च एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण पदों में एक था जो साधारणतः शहजादों को सौंपा जाता था। जसवंतसिंह को दो बार (1659 --61 व 1670--72)ई. गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया।

वर्नियर जो आगरा में 1665 तक रहा वह लिखता है कि यद्यपि महान मुगल हैं और इस प्रकार हिन्दुओं का शत्रु है। लेकिन फिर भी वह सदैव राजाओं को बहुत अधिक अपनी सेवा में रखता है तथा उन लोगों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करता है जैसा अन्य अमीरों के प्रति, तथा अपनी सेनाओं में महत्वपूर्ण कमानों में उनकी नियुक्ति करता है।[27]

मुहम्मद काजिम द्वारा रचित राजकीय ऐतिहासिक ग्रन्थ आलमगिरीनामा में मनसबों की वृद्धि एवं उसमें की गई कटौती के सम्बन्ध में दिये गये विवरण का नीचे दी गई तालिका में शासकीय ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है।[28]

[27] बर्नियर, ट्रैवेल्स इन मुगल एम्पायर, संपा. ए. कान्सटेबुल, पृ. 40
[28] आलमगीरीनामा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 45

	वृद्धि या कटौती (शाही को छोड़कर)			राजपूत का भाग
जात	1–2 वर्ष	3–6 वर्ष	7–10 वर्ष	1–10 वर्ष
योग	89000	4600	–10000	83600
राजपूत	12600	1000	–1600	12000
प्रतिशत	14.16	21.74	16.00	14.35
				घटने पर
योग	59000	3930	27,320	86750
राजपूत	11900	1350	2500	10750
प्रतिशत	22.04	24.86	––	12.40

शाहजहाँ के मनसबदारों की साहेल ने जो सूची दी है उसमें एक हजार जात व उसके ऊपर के 437 अमीरों में से 82 (18.7%) राजपूत थे। जबकि 1000 व उससे ऊपर के अमीरों के जात पद का योग 10,07000 था तथा उसमें से 178500 या कुल योग का 17.7% राजपूत थे। प्रथम दशक में दिये गये जात मनसब में 14.35 प्रतिशत की संख्या से यह प्रतीत होता है कि तभी भी पूर्ण रूप से पुराना अनुपात बनाये रखा गया। जबकि

प्रथम दशक के प्रथम छः वर्षों में राजपूतों को अन्य उपेक्षा उच्च पद प्रदान किये गये विशेषतौर से जहाँ सवार पद का सम्बन्ध है। अन्तिम चार वर्षों में उनकी स्थिति में विशेष हरास हुआ, जबकि सामान्य अमीरों के कुल मनसब में काफी वृद्धि हुई, राजपूतों के सवार मनसब में बहुत बुरी तरीके से कटौती की गयी।[29] औरंगजेब के हिन्दू अमीर वर्ग में राजपूत और मराठा दोनों मिलकर प्रचुर बहुमत में थे यह कहा गया है कि औरंगजेब के राज्यकाल में न केवल राजपूतों वरन् सम्पूर्ण हिन्दू अमीर वर्ग को छति पहुँची।[30]

	अकबर 1595		शाहजहाँ 1628—58		औरंगजेब 1658—78		1679—1707	
	कुल	हिन्दू	कुल	हिन्दू	कुल	हिन्दू	कुछ	हिन्दू
5000 व उसके ऊपर	7	1	49	12	51	10	79	26
3000 से 4500	10	1	88	22	90	18	133	36
1000 से 2700	17	6	300	64	345	77	363	120
500 से 900	64	14						
योग	98	22	437	98	486	105	575	182

इस तालिका के आधार पर कि कुल मनसबदारों की संख्या दुगनी होने पर भी हिन्दू अमीरों की संख्या उतनी बनी रही जितना कि शाहजहाँ

[29] एम. अतहर अली, पूर्वोद्धत, पृ. 340
[30] रेलिजस पॉलिसी आफ द मुगल एम्परर्स, पृष्ठ 178-80

मनसबदारों, अहदियों, तोपचियों आदि की कुल संख्या केवल अमीरों के लिए ही प्रयोग की गई है।[32] आईन के आधार पर हिन्दू अमीरों और मनसबदारों की संख्या जो 1595 ई. में सेवा में थे तथा शाहजहाँ के राज्यकाल के मनसबदारों की संख्या, जो 1595 ई. में सेवा मे थे तथा शाहजहाँ के राज्य काल के मनसबदारों की संख्या तालिका में प्रस्तुत किया गया है।[33]

	अकबर 1559	शाहजहाँ 1628–58	औरंगजेब 1658–78	1679–1707
5000 व उसके ऊपर	14.3	24.5	19.6	32.9
3000 से 4500	10.00	25.0	20.0	27.1
1000 से 2700	35.3	21.3	22.3	33.1
500 से 900	21.8			
कुल योग	22.5	22.4	21.6	31.6

31 वही
32 वही
33 डा. आर के सक्सेना, मुगल शासन प्रणाली, जयपुर 1991, पृष्ठ सं. 97

औरंगजेब के राज्य के प्रथम चरण के हिन्दू अमीरों की स्थिति में कछ ह्रास दृष्टिगोचर होता है किन्तु अन्तिम 29 वर्षों में यह बहुत ही सुधर गयी। परिणाम स्वरूप इस काल में शाहजहाँ या उसके पूर्व किसी भी काल की अपेक्षा अनुपातः कहीं अधिक हिन्दू शाही सेवा में थे। इस प्रकार यह तालिका औरंगजेब के ऊपर लगाये गये अभियोग हिन्दू मनसबदारों के प्रति भेदभाव रखता था एक उत्तम वकील की ओर से उत्तर दे सकती है। इस काल में अमीर वर्ग में मराठों की संख्या राजपूतों से भी अधिक होने लगी थी। अतः उनके प्रवेश के कारण हिन्दुओं की संख्या में वृद्धि हो गयी थी।[34]

मनसब अपने में एक पद नही था वह उसके प्राप्तकर्ता के स्तर को ही निर्धारित नही करता, वरन् उसके वेतन को भी निर्धारित करता था, तथा उसे वह उत्तरदायित्व सौंपता था कि वह निश्चित संख्या में सैनिकों को, घोड़ों व साज सामान के साथ अनुरक्षित करेगा।[35] भारतीय मुगलों की समय से पूर्व ही तुर्की सेनाओं में घुड़सवारों का संगठन दशमलव प्रणाली के नमूने पर आधारित था। दिल्ली के घुड़सवारों के अन्तर्गत जो एक आदर्श प्रथा लागू थी उसके अनुसार 10 घुड़सवार (सवार) एक सर–ए–खैल के अन्तर्गत 10 एर–ए–खैलों को एक (सिपहसलार) के

[34] ए.एम. अतहर अली : औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग पृष्ठ सं. 425
[35] वही, पृष्ठ 58

के अन्तर्गत और कम से कम 10 खानों को एक सम्राट के अन्तर्गत रखा गया था। इस प्रकार एक सर–ए–खैल के अन्तर्गत 10 व्यक्ति, एक सिपहसलार के अन्तर्गत 100, एक अमीर के अन्तर्गत 1000, एक मलिक के अन्तर्गत 10000 तथा एक खान के अन्तर्गत 100000 व्यक्तियों की कमान होनी चाहिए।[36] चौदहवीं शताब्दी के एक अरब–निवासी द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार भारतीय सेना में खान के अन्तर्गत 10000 अश्वारोहीा, मलिक के अन्तर्गत 1000, अमीर के अन्तर्गत 100 और सिपहसलार के अन्तर्गत उससे भी कम अश्वारोही होते है। इस प्रकार तीन उच्च श्रेणी के अधिकारियों की सैनिक टुकड़ियों का आकार 1/10 कम हो जाता है।[37] भारतीय मुगलों ने चंगेजी एवं मुगलों को अपना वंशज होने का दावा किया कि सेना में सबसे छोटी सैनिक टुकड़ी 10 घुड़सवारों की होती थी तथा अधिकारियों की ऐसी 10 इकाइयाँ, 100 के सेनानायक , के अन्तर्गत और 1000 के 10 सेना–नायक, 10000 के एक सेनानाएक के अन्तर्गत हुआ करते थे।[38] मनसब प्रथा की इस व्यवस्था में मुख्य सिद्धान्त यह था कि निम्न श्रेणी के अधिकारी उच्च श्रेणी के अधिकारियों के अधीन रहे तथा उनकी टुकड़ियाँ उच्च श्रेणी के अधिकारियों की सैनिक टुकड़ियों

---

[36] बरनी, तारीखे-ए-फिरोजशाही उद्धत एस.ए.ए. रिजवी, पूर्वोद्धत, पृ. 195
[37] डा. आटो स्पाइ, ऐन अरब एकाउन्ट आफ द फोर्टीन्थ सेन्चूरी, पृष्ठ सं. 67
[38] एच.एच. होवर्थ, हिस्ट्री आफ द मंगोल्स, भाग प्रथम, पृष्ठ सं. 108-109

का अंग बनी रही। दिल्ली सल्तनत में, यदि यह मान लिया जाये कि खान के अन्तर्गत 10000 घुड़सवार थे तो यह संख्या 10 मलिकों के अन्तर्गत रहने वाली सैनिक टुकड़ियों के समरूप थी। अतः यह कहा गया कि मनसब प्रथा की उत्पत्ति दशमलव प्रणाली पर आधारित सैनिक संगठन में हुई।[39] अकबर द्वारा लागू मनसबदारी प्रथा पहले की प्रणाली से भिन्न थी, साथ ही यह व्यापक एवं नियन्त्रणीय थी। मुगल मनसब प्रथा में सभी मनसबदार प्रत्यक्ष रूप से सम्राट के मातहत थे चाहे वे 10 सवारों या 5000 सवारों को ही क्यों न संचालित करते हों। 5000 का मनसबदार 1000 के पांच मनसबदारों को अपने अन्तर्गत रखकर अपनी सैनिक टुकड़ी नही बना सकता था। उसका मनसब केवल उसकी सैनिक टुकड़ी को इंगित करता था। अपनी सेना की विभिन्न सैनिक इकाइयों की देखभाल करने हेतु वह अपने अधीन अधिकारियों को रख तो सकता था लेकिन ऐसे अधीनस्थ अधिकारी तब तक मनसबदार नही हो सकते जब तक उनकी निजी सैनिक टुकड़ियाँ उनके उच्च अधिकारियों के सैनिक टुकड़ियों से पृथक न हो।[40] मुगल मनसब द्विसूचक होता था तथा दो संख्याओं को संकेतित करता था एक को जात (निजी) तथा दूसरे को सवार (घुड़सवार) संबोधित किया जाता है था। अकबर के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों से ही जात की

[39] अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिस्टम एण्ड द मुगल आर्मी, दिल्ली 1972, पृष्ठ सं. 16-25
[40] एम. अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 60

संख्या कृत्रिम संख्या बन चुकी थी, जिसका मुख्य कार्य लागू वेतन मान के अनुसार वेतन को इंगति करने के साथ अधिकारी वर्ग में मनसबदार को निश्चित स्थान पर रखना था।[41] सवार पद का निर्धारण करता था, कि मनसबदार को कितने घुड़सवार और घोड़े रखने पड़गें। अतः इसे अश्व सैनिक कहने या सैनिक पद कहने चाहिए। अकबर के उत्तरकालीन वर्षों में पहले–पहल हमें दूसरे पद के रूप में मिलता था। बरनी बलबन की घोषणा को उद्‌धृत करते हुए कहता है कि यदि एक मलिक अपनी 10,000 की सैनिक टुकड़ी नही रखता तो वह इस उपाधि के उपयुक्त नही है।[42] कुछ इतिहासकारों के अनुसार कि बंदायूँ के गर्वनर मलिक बक–बक के पास 4000 सैनिक (चाकर) थे, और वह यह बात ऐसे सन्दर्भ में कहता है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि बकबक के पास अखण्ड स्वरूप एक बहुत ही बड़ी सैनिक टुकड़ी है।[43] यद्यपि कि बकबक 10,000 सैनिकों का सेनानायक या वास्तव में उसके पास 4000 सैनिक ही थे। मोर–लैण्ड ने भी यह बताया है कि किस भाँति प्रारम्भिक मुगलों के समय में उच्च उपाधिधारी अधिकारी बहुत ही कम औसरों पर अपनी उपाधियों के अनुसार सैनिक टुकड़ियां रखते थे। तथा यह सुझाव दिया है कि ऐसी परिस्थिति से निपटने के लिए ही अकबर द्वारा द्विपद सिद्धान्त की व्यवस्था की

---

[41] अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिस्टम एण्ड द मुगल आर्मी पृष्ठ सं. 93
[42] बरनी, तारीख-ए-फिरोजशाही, द्वारा एस.ए.ए. रिजवी, पूर्वोद्धत, पृ. 197
[43] वही, पृ. 198

गयी।[44] मनसब में अमीरों का पदानुक्रम निर्धारित करने के लिए सांकेतिक पद जात मनसब तक ही सीमित रखा गया। किन्तु प्रत्येक अमीर द्वारा उनके वेतन या निर्धारित आय के अनुरूप सैनिक टुकड़ियाँ रखने की व्यवस्था पर भलीभाँति नियंत्रण रखने के लिए एक सवार पद की व्यवस्था की गयी जो जात पद के या तो बराबर हुआ करता था या उससे कम।[45] अकबर की मनसबदारी प्रथा के आधारभूत तत्वों को बनाये रखा गया किन्तु साथ ही साथ उसमें नये तत्व सामने आये। इस प्रकार जहाँगीर के अन्तर्गत प्रथम बार दो–अस्पा, सेह–अस्पा मनसब के सम्बन्ध में सुनते हैं। शाहजहाँ के अन्तर्गत हमे नये मासिक वेतनमान (मासिक अनुपात) तथा विभिन्न सवार मनसबों के अन्तर्गत सैनिक टुकड़ियों का आधार निर्धारित करने के लिए नियम मिलते हैं। इन तत्वों और इसके अतिरिक्त अन्य तत्वों जैसे प्रतिबन्धित (मशरूत) मनसब जो कि अकबर के समय में होगे की जानकारी औरंगजेब के काल में अतिव्यापाक हो जाती है।[46] अकबर के समय साधारणतः सवार पद जात पद के पास तो बराबर या उससे कम उसके उत्तराधिकारियों के अन्तर्गत भी स्थिति इसी प्रकार की रही।[47] औरंगजेब के शासनकाल के द्वितीय भाग में ऐसे मनसबदार बहुत अधिक

---

[44] ए.जे. कैसर, प्रोसीजिग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, इलाहाबाद सेशन, 1965, पृष्ठ 155-156
[45] अबुलफजल, आईन-ए-अकबरी, भाग 1, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 123-124
[46] एम.अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 61,
[47] अब्दुल अजीज, द मनसवदारी सिस्टम एण्ड द मुगल आर्मी पृष्ठ सं.3

संख्या में थे जिनके सवार पद जात पद से अधिक थे।[48] सत्यता की पराकाष्टा पर जाने से यह मालूम पड़ता है कि सवार पद प्रतिबन्धित (मशरूत) थे। जयपुर अरवबारात में, ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है कि जिसमे साधारण पद तथा प्रतिबन्धित सवार पद को मिलाकर जात पद से कहीं अधिक था।[49] परन्तु साथ ही साथ ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ सवार पद न पूर्ण रूप से और न उसका कोई भाग प्रतिबन्धित है और फिर भी जात पद से अधिक था।[50] जात और सवार पदों में ही प्रतिबन्धित (मशरूत) पदों को जोड़ दिया जाता था।

मीरात–अल–इस्तिलाह के रच्यिता के अनुसार जात मनसब के साथ अप्रतिबन्धित सवार मनसब प्रदान किया जाता था, और 'प्रतिबन्धित' मनसब किसी विशिष्ट अधिकारी को किसी विशेष पद पर सेवाएं किसी की बात ध्यान में रखकर प्रदान किया जाता था। यदि किसी मनसबदार को एक विशेष प्रदेश में फौजदार नियुक्त किया जाता था, और इस बात का आभास होता था, कि उसके द्वारा संतोषजनक कार्यों के करने के लिए 100 सवारों के मनसब की और आवश्एकता है तो फौजदार के मनसब में प्रतिबन्धित मनसब की वृद्धि कर दी जाती थी ताकि वह सौ सवारों को भर्ती कर ले। इस अतिरिक्त प्रतिबन्धित मनसबों के वेतन के लिए उसे

---

48 मुहम्मद काजिम, आलमगीरी नामा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 461,
49 मीरात-ए-अहमदी भाग 1, पूर्वाद्धत, पृ. 317
50 जदुनाथ सरकार, औरगंजेब, भाग 3, कलकत्ता, 1973, पृष्ठ सं. 127

जागीर भी प्रदान की जाती थी। जब उसे इस पद से स्थानान्तरित कर दिया जाता था, तो साधारणतः उसका प्रतिबन्धित मनसब रद्द कर दिया जाता था और अतिरिक्त दी गयी जागीर भी उससे वापस ले लिया जाता था।[51] प्रतिबन्धित मनसब का पूरा या उसका एक भाग कभी कभी अप्रतिबन्धित कर दिया जाता था ऐसा होने पर उक्त मनसबदार की पदोन्नति समझी जाती थी, और साधारणतः उक्त मनसबदार को सम्मान सूचक चिन्ह प्रदान करने की दिशा में ऐसा होता था।[52] जहाँगीर के राज्यकाल में मनसबदारी प्रथा में एक महत्वपूर्ण हुआ कि दो–अस्पा सेह–अस्पा का लागू होना। इन्ही के काल के 10वें वर्ष में जब महावत खाँ को दक्कन के कार्य को करने के लिए नियुक्त किया गया तो उसे विशिष्ट ढ़ंग से सम्मानित करने के लिए उसके मनसब में से 1700 सवारों को दो अस्पा में कर दिया गया।[53] जहाँगीर के शासनकाल में तो दो अस्पा–सेह–अस्पा मनसब दिये जाने से सम्बन्धित उदाहरण अभिलिखित है किन्तु जहाँगीर के शासनकाल में वे अनेक बार प्रदत्त किये गये। 1000 जात व उसके ऊपर के मनसबदारों की नीचे दी गई तालिका में यह तथ्य देखा जा सकता है।[54]

---

[51] आनन्द राम मुखलिस, मीरात अल-इस्तिलाह, 1775 ई. अलीगढ़ के अंजुमन तरक्की उर्दू, पुस्तकालय में पाण्डुलिपि।
[52] एम. अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं.63
[53] अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा, भाग प्रथम, पूर्वाद्धत, पृष्ठ सं.113
[54] एम. अतहर अली : औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग पृष्ठ सं. 63

	योग	दो अस्पा–सेह–अस्पा मनसब के मनसबदार
शासन का 10 वाँ वर्ष	191	12
शासन का 20 वाँ वर्ष	219	23
शासन का 30 वाँ वर्ष	253	25

औरंगजेब के शासनकाल में इस प्रकार मनसब प्राप्त करने वालों की संख्या और भी बढ़ी गयी। उसके शासनकाल में प्रथम बीस वर्षों में 1000 जात व उसके ऊपर के कुल 486 मनसबदारों की संख्या में 68 मनसबदार ऐसे थे जिसके पास दो अस्पा–सेह–अस्पा मनसब था। औरंगजेब के शासनकाल के शेष भाग में, 1000 जात व उसके ऊपर के 575 मनसबदारों में से 70 ऐसे अभिलिखित मनसबदार थे जिसके पास यह मनसब था।[55] दो अस्पा से–अस्पा मनसब को सवार पद का एक अंग माना जाता था। इस मनसब को व्यकत करने का राजकीय ढ़ंग इस प्रकार था। "4000 जात, 4000 सवार कुल (महा) दो–अस्पा, सेह–अस्पा" जिसका अर्थ था, 4000/4000, या 4000 जात, 4000 सवार, उसमें से 1000 दो

[55] वही पृष्ठ 66-67

पद से नही बढ़ सकता था। यदि सवार पद का कोई भी भाग दो–अस्पा, सेह–अस्पा कर दिया जाता तो शेषं पद को बाराबर्दी कहा जाता था। अर्थात यदि 4000 सवारों में से 1000 दो–अस्पा–सेह–अस्पा होते थे तो शेष 3000 को बारावर्दी कहा जाता था।[56] बारावर्दी के बाद वाले पद के भाग के लिए अमीर को उसी दर से भुगतान किया जाता था। जिस प्रकार उसे उसके साधारण मनसब के लिए तथा उसका उत्तरदायित्व भी उसी पैमाने पर होता था। परन्तु दो–अस्पा, सेह–अस्पा के लिए उसका उत्तरदायित्व एवं वेतन दोनों ही दुगने कर दिये जाते थे। दूसरे शब्दों में सैनिक उत्तरदायित्व एवं वेतन की दृष्टि से 4000 सवार पद, जिसमें से 1000 सवार दो–अस्पा–सेह–अस्पा का वास्तविक अर्थ 5000 सवार था। (अर्थात 3000 साधारण + 1000 2– 3 अस्पा= 3000 साधारण + 1000 X 2 साधारण = 5000 साधारण) इससे निष्कर्ष मिलता है कि जब सम्राट किसी व्यक्ति पर कृपा करना चाहता था तो बिना उसके जात पद में वृद्धि किये वह एक बड़ी सैनिक टुकड़ी रखें तो वह उसको दो–अस्पा, सेह–अस्पा प्रदान कर दिया करता था।[57] मनसबदार का पद 3000 सवार था, और उसमें से एक 1000 सवार दो–अस्पा, सेह–अस्पा थे तथा प्रत्येक सवार

---

[56] अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा, खण्ड द्वितीय, पूर्वाद्धत, पृष्ठ सं. 507

[57] आनन्द राम मुखलिस : मीरात-अल-इस्तिलाह, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 15 ब,

परिमलन निम्न ढ़ंग से होगा 3000 के सवार पद में से 1000 दो–अस्पा, सेह–अस्पा का वेतन =16,000000 दाम होगा। 1000 दो–अस्पा, सेह–अस्पा का वेतन 1000 X 8000 X 2= 16000,000 दाम का होगा। कुल योग = 32000,000 दाम।[58] सवार पद का वेतन उसी संख्या में जात पद के वेतन से कहीं अधिक होगा, क्योंकि प्रथम के अनुसार सैनिकों को रखने के लिए धन मिलता था जबकि दूसरा अमीर का व्यक्तिगत वेतन था। आईन में वेतन रूपये में व्यक्त किया गया है लेकिन परिर्वर्ती मानों में वह दाम में दिया गया है।[59] औरंगजेब के राज्यकाल के दस्तूर–उल–अमलों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि शाहजहाँ ने जो वेतन मान निश्चित किये थे उसमें किसी भी प्रकार का परिर्वतन न करते हुए औरंगजेब ने उसे जारी रखा। जात पदों के लिए वेतन के आंकड़े वही है जबकि सवार पदों के लिए 8000 दाम प्रति इकाई की दर से भुगतान होता रहा।[60] मोरलैण्ड के रेंक (मनसब) 'इन द मुगल स्टेट सर्विस' में उसके जात एवं सवार श्रेणियों के उन सिद्धान्तों जिन पर उनके भुगतानों की गणना होती थी और सवार श्रेणी के आधार पर दायित्वों के स्वरूप (विशेषकर रखी जाने वाली सैनिक टुकड़ी के आकार एवं संरचना) की व्यवस्था का समर्थन हुआ

---

[58] अब्दुल हमीद लाहौरी बादशाहनामा, खण्ड द्वितीय, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 374-75
[59] मैनुची, खण्ड द्वितीय, अनु. विलियम इरविन, पृष्ठ सं. 374-75
[60] एम. अतहर अली, औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, पृष्ठ सं. 67

और अनुसंधानों द्वारा प्रर्याप्त रूप से पुष्टि हुई मोरलैण्ड का विश्लेषण खासतौर से शाहजहाँ के शासनकाल में मनसब व्यवस्था के कार्यान्वयन के विविध पक्षों की दृष्टि से प्रर्याप्त रूप से प्रमाणिक है। क्योंकि इन मामलों में जयपुर में सुरक्षित मनसबदारों के वेतनमानों की संतुष्टि से सम्बन्धित शाही फरमानों की एक श्रृंखला का उपयोग कर सकता था।[61] शाहजहाँ के काल के सम्बन्ध में अपनी सूचना तथा पूर्ववर्ती काल के उपलब्ध ऐतिहासिक साहित्य के साक्ष्य के आधार पर मोरलैण्ड ने शाहजहाँ के शासनकाल की मनसब व्यवस्था के विकास की प्रमुख धाराओं (जैसे की उनकी थी, संगठन हास और पुर्नसंगठन के चक्रों) को प्रस्तुत करने तथा उसके आधार पर शाहजहाँ द्वारा उस व्यवस्था में दिये गये परिवर्तनों को निश्चित करने की कोशिश की। इस प्रयास में उसे पूर्ववर्ती काल के लिए दस्तावेजीय साक्ष्य के अभाव में जिसे उसे स्पष्ट स्वीकार किया, बाधा का सामना करना पड़ा। उसे सामान्यतः बिखरे हुए कुछ परिच्छेदों के आधार से प्राप्त निष्कर्षों से ही चलना पड़ा।[62] अकबर द्वारा स्थापित मनसबों की दो श्रेणियाँ जात और सवार तीसरी अवस्था में किये गये इस प्रकार के समझौते का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी शर्तों के अन्तर्गत पुरानी श्रेंणी नाम मात्र की होने के कारण वैसे ही मान ली गयी, तथा केवल व्यक्तिगत

[61] इरफान हबीब, मध्य कालीन भारत, भाग 3, 1998, पृष्ठ सं. 59'
[62] जनरल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन, बाल्यूम XX (1), 1954, पृष्ठ सं. 661-662

अन्तर्गत इस व्यवस्था का हाल भी पुरानी जैसी ही हुआ, और अब सवार श्रेणी की प्रवृत्ति नाम मात्र की हो गयी। उसका उत्तराधिकारी शाहजहाँ अधिक कड़े प्रशासन तथा अधिक सक्षम सेना के उद्देश्य के होते हुए भी अकबर की व्यवस्था को स्थापित करने की आशा नही कर सकता था तथा वह समझौते के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य हुआ, उसमें श्रेणियों को वैसे रहने दिया, पर श्रेणियों पर मिलने वाले कुल वेतन को घटा दिया, जात श्रेणी के वेतन को अधिक तथा सवार श्रेणी के वेतन को कम अनुपात में घटा दिया।[63] मोरलैण्ड की व्यवस्था अपने सरल एवं युक्तियुक्त तर्क के कारण निश्चित तौर से आकर्षक है। वास्तव में उनकी मुगल तथा मंगोल और तैमूरी सैनिक व्यवस्था की समानता की मान्यता तथा उसके यह सुझाव कि जात श्रेणी अकबर के पूर्व थी पर केवल सवार ही उसका नव प्रवर्तन था दोनों ही की अकाट्य आलोचना हो चुकी थी।[64] जहाँगीर के शासन के अन्तर्गत इन प्रशासनिक विघटनों को सुधारों तथा पुर्नसंगठन के उन उपायों की व्यवस्था के लिए एक मात्र कारक मानना प्रतीत होता है जिसे उसे शाहजहाँ कृति माना था। मोरलैण्ड द्वारा कि तथ्यों पर दिये गये

[63] इरफान हबीब, मध्य कालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 58-59
[64] एम. अतहर अली, द मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब, पृष्ठ सं. 39

अन्तिम वर्षो तथा जहाँगीर के शासनकाल में मनसब के वेतन तथा दायित्वों में हुए परिवर्तन के तथ्यों को स्थापित करने का प्रयास किया गया है ताकि यह पता चल सके कि उस व्यवस्था में क्या नवीनता थी जो शाहजहाँ के समय स्थापित पायी गयी थी। दूसरे भाग में उस संदर्भ की व्यवस्था का प्रयास करेंगे, जिसमें वे परिवर्तन हुए थे और तत्कालीन अन्य आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक घटनाओं से उसके सम्बन्धों का पता लगाने का प्रयास करेगें।[65] जात श्रेणियों के लिए निर्धारित वेतनों के लिए मोरलैण्ड के पास एक ओर आईने अकबरी में दी गयी वेतन सूची थी, जो अबुल फजल के स्वयं के शब्दों में लगभग 1595 ई. में बनी। दूसरी ओर थे वे वेतनमान जिसकी गणना उसने 1630 ई. के एक फरमान के आधार पर की गई थी। उससे पता चला कि दूसरे अधिकांश परिवर्ती काल के सूचियों के अनुरूप थे, और इस तरह से आईन अकबरी की सूची में दिये गये वेतनमानों से प्रतीक रूप से कम थे। इसलिए उसने यह माना कि जात वेतन में महत्वपूर्ण कमी इस काल में हुई होगी तथा इसे 1628 ई. में अपने सिंहासनारोहण के तुरन्त बाद शाहजहाँ द्वारा दिये गये आदेशों के अन्तर्गत मानता था, उसने केवल इंग्लिश फैक्ट्री अभिलेखों में उपलब्ध कुछ

---

[65] आइने अकबरी, I, ब्लाखमैन, पृष्ठ सं. 178-85

हुआ।[66]

ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित मुतामद खाँ के इकबालनामा–ए–जहाँगीर की एक पाण्डुलिपि है। इसके अन्त में अकबर के शासन का वर्णन है। जिससे कुछ अतिरिक्त सामग्री है, जो अन्त में पाण्डुलिपियों में नही है, और इसलिए उसके मुद्रित संस्करणों को छोड़कर दी गई है। इसमें साम्राज्य की माल गुजारी पर एक रिपोर्ट है जो जहाँगीर के सम्मुख 1605 ई. में उसके सिंहासनारोहण के तुरन्त बाद एक विशेष तिथि को रखी गयी थी और उससे संलग्न है।[67] विभिन्न मनसबों पर मुतामद खाँ ने इकबालनामा–ए–जहाँगीर को अकबर की मृत्यु के 15 वर्षो बाद पूरा कर लिया था।[68] मनसबों पर देय वेतन सूची उन वेतन मानों को प्रकट करने में सूची सम्भवतः सही है। जैसे वे 1605 में थे। आइने अकबरी की सूची से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है, कि कुछ मनसबों पर देय वेतन को कम करने के लिए कुछ छोटे परिवर्तन पहले ही किये जा चुके थे। दोनों ही सूचियों में वेतन प्रतिमाह रूपये में दिये गये हैं, पर आईन की सूची से भिन्न मुतामद खाँ द्वारा उद्घृत सूची में केवल प्रथम वर्ग के जात

[66] इरफान हवीब, मध्य कलीन भारत, भाग 1 पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 60-61
[67] फोस्टर, अर्ली ट्रैवेल्स इन इण्डिया, लन्दन, 1921ए पृ. 231-33
[68] बेनी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ जहांगीर, इलाहाबाद, 1974, पृ. 419

मनसबों के देय वेतन को निम्नलिखित ढ़ंग से तालिका बद्ध करते हैं जिन्हे आईने अकबरी के आंकड़ों के अनुरूप प्रतिशत में बदल दिया है।

10000	10	500	100
7000	89	400	75
5000	100	350	93
4500	99	300	86
4000	100	250	87
3500	100	200	92
3000	100	150	91
2500	100	100	86
2000	100	60	100
1500	100	50	100
		10	100

[69] वही, पृ. 419-21

इस तालिका से स्पष्ट है कि यद्यपि सूचियों में कुछ परिवर्तन किये गये थे जिनका तात्पर्य कम से कम 500 जात से नीची कुछ श्रेणियों के लिए महत्वपूर्ण कटौती था, जहाँगीर के सिंहासनारोहण के समय वेतन मान सामान्यतः1595 ई. के वेतनमान से बहुंत करीब थे। 1605 ई. के बाद के काल के लिए हमें शाहजहाँ के काल से पहले वेतन सूचियां नही मिलती, पर हमें ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है जिससे पता चलता है कि 1618 ई. तक हालत में परिवर्तन हुआ।1605 ई. में लिपिबद्ध किये गये वेतन मान ही प्रचलित थे। 1616 ई. में सर टामस रो ने 5000 की श्रेणी वाले एक मुगल मनसबदार से वार्तालाप लिपिबद्ध किया जिनसे यह बताया कि अपनी घुड़सवार सेना को रखने के खर्चे के अतिरिक्त वह "1000 रूपया प्रतिदिन की पेंशन भी पाता था।[70] 1615 ई. का और दूसरा 1618 ई. को जात मनसबों के वेतन का स्वरूप शाहजहाँ के काल के समान है। जिसका अध्ययन मोरलैण्ड ने किया था। उनके मूल पाठ हमें उपलब्ध नही है। पर श्यामल दास ने अपने मेवाड़ के इतिहास 'वीर विनोद' में उसकी बड़ी सावधनी से हिन्दी में अनुवाद किया जिसमें चार जात मनसबों के वेतन रूपये में दिये गये हैं और उनकी तुलना नीचे 1605 की सूची वालों में (पर केवल प्रथम वर्ग) की गई है। चूँकि दाईं ओर के कालम में दिये गये वेतन प्रथम वर्ग वालों के ही हैं। 1615/1618 के कालम में द्वितीय और

[70] सर टामस रो, दि एंबेसी ऑव सर टामस रो, सं. डब्लू फोस्टर, लन्दन, 1970, पृष्ठ सं. 210-11

तृतीय श्रेणी के लिए दिये गये थोड़े से कम आंकड़े उसी वेतनमान के आधार पर है।[71]

	1615 / 1618 ई.	1605 ई.
5000 प्रथम वर्ग	30000	30000
500 द्वितीय वर्ग	2440	2500
400 द्वितीय वर्ग	1440	1500
60 तृतीय	275	300

अकबर के शासनकाल के में तथा कुछ समय के लिए जहाँगीर के शासनकाल के अन्तर्गत सवार श्रेणी को भुगतान किये जाते थे। शाहजहाँ के शासनकाल में बिल्कुल वैसी प्रतीत नही होती। मोरलैण्ड ने वस्तुतः विपरीत अनुमान लिख दिया कि मानों 1595 ई. से सवार श्रेणी के भुगतान मानक दर से किये जाते रहे और कोई अगर परिवर्तन हुआ तो केवल यह कि इस दर में संशोधन किया गया, और वह भी शाहजहाँ के सिंहासनारोहण के बाद[72] अकबर के अन्तर्गत भुगतान का स्वरूप क्या था, यह बायाजीद बयात के एक अनुच्छेद उद्घृत करेंगे जो बादशाह के गृह विभाग में अधिकारी था और जिसने 1591 ई. (हि. 999) में अपने संस्मरण

[71] इरफान हबीब, मध्य कालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 61-62
[72] जरनल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसाइटी, पूर्वोद्धत, लन्दन, पृष्ठ सं. 658-59

अबुल फजल के महान ग्रन्थ के विषय में जानकारी के स्रोत के रूप में लिखे थे, बायाजीद हमें बताता है कि हि. 992 में उसे अपनी स्वयं की श्रेणी के लिए 100 व्यक्ति (वफर) बारावर्दी, और 100 (व्यक्ति) दागी (दाग चिन्ह हाजिरी) उनके बेटों की श्रेणियों के लिए दिये गये। लेकिन वह यह शिकायत करता है कि उसे देय एक हिस्सा अब बाकी है, और न ही उसे 100 बारावर्दी दाग के लिए दिये जाने वाले भत्ता (तफवाते–दागे–ए–सद–नफर–ए–बारावर्दी) की अनुमति दी गयी थी।[73] जब एक बार सवार श्रेणी दे दी जाती थी तो भुगतान की अनुमति उस सवारों के आधार पर दी जाती थी जो अभी तक बहियों पर थे और इस प्रकार जब मनुष्य और घोड़े वास्तव में हाजिरी और दाग के लिये लाये जाते थे देय भुगतानों की गणना फिर से की जाती थी। इसको ध्यान में रखते हुए आईने अकबरी के उस अनुच्छेद की पूर्णतः नई व्याख्या की जानी चाहिए जिसमें यह कहा गया है कि ''बादशाह घुड़सवारों (बहरे सवारी) के लिए वेतन (ख्वास्ता) अनेकों खाली हाथ लेकिन योग्य व्यकितयों के लिए तय करता है और इस संख्या के लिए वह इक्ता (जागीर) दाग की शर्त बिना प्रदान करता है। तूरानियों एवं ईरानियों को 25 रूपये प्रतिमाह किये जाते है, भारतीयों को 20 रू0 तथा खालसा की लगान

---

[73] विशेष अध्ययन हेतु, देखें अब्दुल अजीज, पूर्वोद्धत एवं दि आर्मी ऑफ दि इण्डियन मुगल्स, लंदन, 1903

किये सेनानायक थे, न कि सैनिक। वहां तूरानी–ईरानी भारतीय तथा लगान उगाहने वाले थे (अन्तिम निश्चय ही किसी भी तरह से मात्र सैनिक नही हो सकते) उनकी भावी टुकड़ियों के लिए जो तत्काल केवल वहियों में थी, अतः बारावर्दी थी, एक नही भिन्न दरों की (सम्भवता अनुदानित सवार श्रेणी की प्रति इकाई के अनुसार) अनुमति दी जाती थी जो तूरानी और ईरानी मनसबदारों के लिए 12000 दाम $(25\times12\times40)$ तथा भारतीय के लिए 9600 दाम प्रतिवर्ष के बराबर थी।[75] सेनानाएक (आगा) संख्या और किस्म की व्यवस्था करता है और बख्शी उसका निरीक्षण करता है। तदुपरान्त विवरणात्मक नामावालियां तैयार की जाती है। ऊँटों तथा बैलों की गणना एक अस्पा (एक घोड़े वाले सैनिको) की तरह की जाती है। उसके लिए अन्य दरें कभी उच्च श्रेणी के सैनिकों की दरों से आधी और कभी दो बटे पाँच होती थी। प्रत्येक एक–अस्पा की निर्धारित दर घोड़ों की नाल के मुताबिक 25 से 12 रू0 प्रतिमाह की सीमा के अन्तर्गत थी। पर खालसा के कर उगाहवे वालों को केवल 15 रू0 मिलता था यानी वही दर

[74] अबुल फजल, आईने अकबरी, भाग 1, पृष्ठ सं. 175

[75] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 63

कुल दर यादि हाजिरी के समय यह संयोजन बनाये रख जाता था, एक अस्पा के लिए स्वीकृत दरों से बहुत अधित हो सकती थी जो यहां भी बारावर्दी के लिए स्वीकृत दरों के लगभग बराबर थी।[76] किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का पहला ज्ञात कदम व्यवहारिक रूप से उसी वर्ष अकबर के शासनकाल के 40वें वर्ष में उठाया गया था। इस काल के दौरान बारावर्दी की मासिक दरें भिन्न आधार पर निर्धारित की गयी। 11वीं मिहर को यह आदेश दिया गया कि मुगलों अफगानों और सिंह अस्पा पर 1,000 दाम, दो–अस्पा पर 800 और एक अस्पा पर 600 दाम दिये जायेंगे। राजपूतों को प्रथम (अर्थात सिंह–अस्पा) पर 800 और द्वितीय पर 600 मिलेंगे।[77] आंकड़ों के आधार पर मोरलैण्ड ने प्रति सवार श्रेणी पर सैनिक टुकड़ी की संरचना के सरकारी सूत्र के आधार पर तीन श्रेणियों में इकाइयों की संख्या की 3:4:3 के अनुपात से गणना कर 9600 दाम का औसत निकाला है।[78] 1605 ई. में अकबर की मृत्यु के समय प्रचलित सूची के अन्तिम में हमें इन तीन वर्गो के लिए दरें दी गयी मिलती है जो टके में है। सिंह–अस्पा 1000 टका प्रतिमाह, दो अस्पा 80 टका और एक अस्पा

---

[76] वही, पृ. 64

[77] अबुल फजल अकबरनामा 3, अनु. एच. बेवरिज, दिल्ली, 1977 पृष्ठ सं. 671-72

[78] जनरल आफ द रायल एशियारिक सोसाइटी लन्दन, पूर्वोद्धत पृष्ठ सं. 658

9600 दाम प्रतिवर्ष के बिल्कुल बराबर है।[79] 800 दाम की घटी हुई दर जो मोरलैण्ड को अपने अभिलेख के साक्ष्य के अधार पर 1630 ई. में प्रचलित मिली शाहजहाँ द्वारा नही चलायी गयी थी वरन् असल में जहाँगीर द्वारा 1620 ई. कुछ पूर्ण और बहुत सम्भव है कि 1615 ई. अथवा 1616 ई. में चालू की गयी थी।[80] जहाँगीर द्वारा प्रयुक्त महावरे जाविता–ए–हाल एक ध्यानयुक्त तथा विचारणीय मुद्दा है। कि नई विशेष सवार श्रेणी का आविभार्व और उसके लिए 1596 ई. के व्यक्तियों में कि महामहिम (अकबर) ने निजी शहरूख की पदोन्नति की। 5000 जात तथा आधे (इसके) सवार का वेतन उसके लिए बारावर्दी निर्धारित किया गया।[81] सवार श्रेणी को प्रति इकाई के लिए मानद दर सुनने में आने लगती है कि अकबर के अन्तर्गत कोई उदाहरण नही मिलता, पर जो प्रारम्भ में उसकी मृत्यु के समय प्रचलित एक–अस्पा के लिए बारावर्दी दर के समरूप थी। ऐसी दर प्रथम वक्तव्य हाकिन्स (1608–12 ई.) से मिलता है और दो रूपये प्रतिमाह प्रति अश्व उनके भोजन के प्रबन्ध के लिए सवार और जात श्रेणियों के

[79] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 64
[80] वही पृष्ट सं. 64
[81] अबुल फजल, अकबरनाम 3, पृष्ठ 717

वेतन का अलग–अलग उल्लेख कर रहा है और उसके शब्दों का तात्पर्य एक समान दर से है जो 9600 दाम प्रतिवर्ष के बराबर है। क्योंकि उनका जात श्रेणी वेतन सम्बन्धी वक्तव्य स्पष्टतः गलत है, सवार श्रेणी के सम्बन्ध में उसके शब्द महत्वहीन रहते है।[82] किसी विशेष श्रेणी की प्रत्येक इकाई के लिए भुगतान सामान्य श्रेणी के वेतन से जो कि 8,800 दाम था, केवल 7000 दाम ज्यादा हुआ। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि बाद के काल में या तो शाहजहाँ के बाद वर्षों में या जहाँगीर के प्रारम्भिक वर्षों में दो–अस्पा, सिंह अस्पा श्रेणी के लिए निर्धारित दरों में वास्तविक वृद्धि हुई अतः मोरलैण्ड की मनसब व्यवस्था की व्याख्या में उनका यह विचार बड़े महत्व का है, कि अकबर के बाद सवार श्रेणी के दायित्व में भारी कमी हुई। यह आईने अकबरी के एक पूर्व उद्घृत अनुच्छेद का हवाला यह सिद्ध करने के लिए देता है कि अकबर 10 सवार श्रेणी के सेनानायक से 10 व्यक्ति तथा 20 घोड़े रखने की अपेक्षा करता था और अन्य सेनानायकों से भी इसी अनुपात में रखने की आशा करता था ताकि एक सैन्यदल में व्यक्तियों की संख्या श्रेणी की संख्या के बराबर तथा घोड़ों की संख्या उसकी दूनी हो। इस समय प्रचलित नियम के अनुसार अपनी जहाँगीर के प्रान्त में सेवारत मनसबदार को अपनी बराबर की श्रेणी के केवल तिहाई

[82] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 65

व्यक्ति रखने होते थे।[83] हिन्दुस्तान के किसी अन्य प्रान्त में सेवा की दशा में केवल चौथाई पर जो लोग 1646 ई. और 1647 ई. में बल्ख और बदख्शां के अभियान में सेवारत थे, उन्हें केवल पांचवा हिस्सा रखना होता था। मानद सैन्यदलों में घोड़ों की संख्या बहुत अधिक होती थी।[84] मोरलैण्ड की मान्यता थी कि आइने–अकबरी के अनुच्छेद में दिये गये सूत्र के अनुसार सैन्यदल प्रत्येक को रखना होता था। जो सवार श्रेणी की प्रति इकाई के लिए 9600 दाम की एक समान दर से अथवा यह कि बारावर्दी दर से होता था। लेकिन यह लगभग निश्चयात्मक रूप से ऐसा नही था। बारावर्दी दल दाग अथवा चिन्हांकन और हाजिरी से पहले स्वीकृति होती थी, तथा भुगतान वास्तविक टुकड़ों की तैयारी और हाजिरी के बाद एक मानद दर के आधार पर न होकर अनेक नियमों के अनुसार होते थे।[85] अकबर के अन्तर्गत किसी मनसबदार का वेतन बारावर्दी दर से स्वीकृत होता था जो उससे यह अपेक्षा नही की जाती थी कि वह अपना पूरा सैन्यदल 3 घोड़ों, 2 घोड़ों तथा 1 घोड़े वाले सैनिकों सहित इस वेतन में से स्थाई रूप से रखेगा। अतः पूरा सैन्यदल सम्भवतः तथ्य की अपेक्षा आदर्श अधिक था। दक्खिन से अकबर को प्रेषित अबुल फजल के एक प्रार्थना पत्र से यह संकेत मिलता है, कि प्रशासन की वास्तविक अपेक्षाएं

[83] वही, पृ. 67
[84] अब्दुल हमीद लाहौरी : बादशाहनामा- 2, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 506-07
[85] इरफान हबीब : मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 67

बहुत ही कम थी।[86] अबुल फजल के शिकायती पत्र के अनुसार कि ऐसे मनसबदार जिन्हें 1000 श्रेणी के वेतन के अनुरूप जागीरें मिली हुई थी पर उसके पास थोड़े भी व्यक्ति नही थे, और साथ ही ऐसे सदी (100 की श्रेणी वाले) भी थे जिनके पास सेवा के लिए तत्पर अच्छे 50 घुड़सवार थे, पर वे बिना जागीर के थे।[87] यह लगता है कि अबुल फजल किसी मनसबदार द्वारा अपनी श्रेणी के केवल आधे व्यक्ति रखने को उसके लिए तुरन्त वेतन निर्धारण और जागीर (सम्भवतः बारावर्दी दर) प्रदान करने के लिए प्रर्याप्त कारण मानता था। वास्तव में वह शायद सामान्य शब्दों में ऐसा कह रहा है, और विस्तृत नियमों का अस्तित्व माना जा सकता है। जिन्होंने मनसब मिलने पर रखी जाने वाली अपेक्षित निम्नतम आकार की सैन्य टुकड़ी निर्धारित की होगी।[88] जहाँगीर के शासनकाल के अन्तर्गत प्रचलित व्यक्तियों की संख्या श्रेणी की तिहाई होनी चाहिए (तथाकथित तिहाई का नियम) किसी मुगल अमीर द्वारा अपने वेतन और दायित्वों के बारे में बातचीत की रिर्पोट से यह स्पष्ट है (1616) कि अमीर का वेतन 5000 अश्व (सवार) था जिनमें से प्रत्येक के लिए उसे 200 रू0 (= 8000 दाम) वार्षिक मिलता था, पर वह 1500 रखता था और अतिरेक उसे

---

[86] वही
[87] देखें हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली, 1978, पृ. 190-194
[88] इरफान हबीब : मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 67

उसी समय के लगभग (1616–19) लिखते हुए टैरी भी कहता है, कि वह जो पांच हजार का वेतन पाता है, दो हजार का पौण्ड में रखने को बाध्य है और अन्यों के लिए भी वही अनुपात है।[90] मोरलैण्ड 'दौलत' के अनुवाद के लिए 'शासन' शब्द का सुझाव देता है।[91] यह निश्चित रूप से लाहौरी तथा उस काल के अन्य लेखकों के प्रयोग के विपरीत होगा जो अन्यत्र कहीं भी शासन की बात करते है तो इस पद के प्रयोग की बात नही करते है। यह शासन किसी भी तरह अंग्रेजी में उचित होते हुए भी फारसी दरबारी प्रयोग में वैसा नही होगा, विशेषकर जब स्वयं वर्तमान शासक का उल्लेख हो। इसके अतिरिक्त यदि शाहजहाँ स्वयं ही इन नियमों का प्रणेता था, तो लाहौरी के लिए इन मामले में अधिक स्पष्ट होना स्वाभाविक होता जैसा कि वह शाहजहाँ के ''पंचमांश का नियम'' लागू करने के विषय में है।[92] दो–अस्पा, सिंह अस्पा श्रेणी के अनुसार रखे जाने वाले सैन्य दलों के आकार के सम्बन्ध में जहाँगीर के काल से कोई भी सामग्री उपलब्ध नही है। शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तर्गत लागू नियम के आधार पर

[89] दि एंबेसी ऑव सर टॉमस रो पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 210
[90] अर्ली ट्रेवल्स सं. वि. फास्टर, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 327
[91] जरनल आफ द रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 655
[92] इरफान हबीब : मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 68

जिसने देखा कि कम महीने तक उत्तरदायित्व भी कम होता था।[94] मासिक मान के विषय में कोई कारण बताने का प्रयास नही किया कि माहवारी (भत्ता) कुछ के लिये अन्यों से कम क्यों था। यह स्पष्ट था कि माहवार–मान वस्तुतः निश्चित अनुपात की छोटी संख्या में (12 को पूर्ण समीकरण का प्रतिनिधित्व मानकर) किसी जागीर को जमा (नाममात्र का मानद निर्धारण) जो हर हाल में मनसबदार के वेतन दावे के बराबर होती थी।[95] इस तरह हासिल (एकत्रित वास्तविक राजस्व) जो मनसबदार की आय होती थी, के बीच सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने की युक्त था। अन्य शब्दों में यह स्वीकृत वेतन से वास्तविक आय का अनुपात बताता था।[96] शाहजहाँ के शासनकाल से पूर्व का इस युक्ति के प्रयोगों का उल्लेख अभी तक सिंन्धी के एक इतिहास में 1605–1606 ई. के वर्ष के लिए केवल एंक नायक और उसके अधीनस्थ अधिकारियों के बीच व्यवस्था के सन्दर्भ में हुआ था।[97] साक्ष्य के आधार पर उपलब्ध मासिक–मान का प्रयोग शाहजहाँ के प्रकाशन का कार्य प्रतीत होता है। अतः इसके अन्तर्गत मनसब व्यवस्थ

---

93 अब्दुल हमीद लाहौरी , बादशाहनामा - 2, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 854-5, 659
94 ए.एन सिद्दीकी, इमप्लीकेशन्स आव द मंच स्केल इन द मनसबदारी सिस्टम पृष्ठ सं. 157-162
95 इरफान हबीव : मध्यकालीन भारतीय, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 69
96 एम. अतहर अली, द मुगल नोबिल्टी अण्डर औरंगजेब, पृष्ठ सं. 46-49
97 फोस्टर, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 118-119

के औपचारिक विकास के सम्बन्ध में अपने निष्कर्षों का समाहार प्रस्तुत कर सकतें है।[98]

1. जात श्रेणी पर वेतनमानों में वास्तविक कमी 1618 ई. और 1630 ई. के बीच कमी हुई पर यह मानने के लिए कि ऐसा शाहजहाँ द्वारा किये गया, कोई समुचित प्रमाण उपलब्ध नही है। सवार श्रेणी के लिए अकबर के काल में 1595 तक जटिल व्यवस्था पर गुणित वेतन की तुलना परिवर्तित काल में प्रचलित वेतन से ही ढ़ंग से नही की जा सकती है।

2. सवार श्रेणी पर स्थायी मानक वेतन दर के लिए पूर्ण सम्भावना इस बात की है कि यह जहाँगीर के प्रारम्भिक वर्षों में स्थापित हुई। 9600 दाम प्रतिवर्ष से उसका 8800 होना शाहजहाँ के सिंहासनारोहण के बाद न होकर 1616 ई. अथवा 1617 ई. में हुआ। केवल 8800 से 8000 दाम की कमी शाहजहाँ द्वारा लागू की गयी। दो–अस्पा, सिंह–अस्पा पर स्वीकृत अतिरिक्त दर जहाँगीर के काल में शाहजहाँ के काल की अपेक्षा पर्याप्त रूप से कम थी।

3. स्वीकृति वेतन की शर्तो के रूप में सैन्य टुकड़ियों की अपेक्षित आकार में कमी को सिद्ध नही किया जा सकता। पर मनसब के

---

[98] इरफान हबीब : मध्यकालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 70

सन्दर्भ में व्यवहार में कमी हुई प्रतीत होती है। यह शाहजहाँ के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में नही वरन् जहाँगीर शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ।

4. सैन्य टुकड़ियों के आपेक्षित आकार का सेनानायकों की नाममात्र की तथा वास्तविक आय से सामन्जस्य स्थापित करने के लिए बनाये गये मासिक–मानों का प्रयोग शाहजहाँ के शासनकाल से हुआ।

मनसबदारों की संख्या का प्रश्न, अथवा, अधिक युक्तियुक्त रूप से स्वीकृत जात और सवार श्रेणी की कुल संख्या सामान्यतः आईन के जिसमें 200 जात तक के मनसबदारों की सूची दी गयी है।[99] शाहजहाँ के दशवें वर्ष के बीच जिसके लिए हमें लाहौरी की सूची प्राप्त है। उसमें मनसब की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।[100] अकबर के समय से ही पहली बार रईसों, अमीरों तथा सेनापतियों को संख्याओं के अनुसार मनसब (ओहदा) दिये जाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। जबकि यह प्रशासन का अनिवार्य अंग बन गया। मनसबों की संख्या का जोड़ा जात व सवार सम्मिलित होना लगा। जात निजी वेतन (तलब–ए–खासा) तथा शासकीय अधिक्रम में स्थित पद को निश्चित करता था और सवार रखे हुए घोड़ों की संख्या तथा उसके वेतन (तलब–ए–ताबीनान) के लिए आपेक्षित राशि सूचित करती थी, कुल

---

[99] अबुल फजल, आइने अकबरी 1, पृष्ठ सं. 222-23
[100] वही

देय वेतन जागीर के रूप में भूमि (एसाइनमेंट) या नकद भुगतान द्वारा चुकता किया जाता था।[101] मोरलैण्ड ने यह माना कि अकबर के पहले सिर्फ एक सैनिक ओहदा ही था। बाबर के समय तक ओहदों से सैनिक टुकड़ी (कोरिंजेट) के आकार का पता लगाना सम्भव नही था। हुमायूँ के समय में हमें किसी प्रकार की संख्या सूचक का हवाला नही मिलता, परन्तु उसने अमीरों और रईसों को अलग करने की कोशिश की थी और उसी के अनुसार वेतन भी नियत किया था। अतः इससे सैनिक टुकड़ी के आकार तथा इन श्रेणियों के बीच किसी सम्बन्ध का होना मालूम पड़ता है। क्योंकि हुमायूँ ने तीन (या सहम) नामक 12 श्रेणी करणों (ग्रेडेशन) से अधिक श्रेणियां नही बनायी। राज्य के सारे कर्मचारी इन 12 श्रेणियों में बंटे हुए थे और हर एक को एक सहम आवांटित किया गया था। बादशाह से लेकर द्वारपालकों और ऊँटों के हांकने वाले तक सभी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते थे। अतः यह सोचना मुश्किल है कि सैनिक टुकड़ियां इस प्रकार के श्रेणीकरण का आधार या इसके लिए बनाये गये माप दण्डों में से एक मापदण्ड रही होगी।[102] मनसब व्यवस्था के विकास का तीसरा चरण शासनकाल के 40वें वर्ष में हुआ। इस वर्ष मनसबदार तीन श्रेणियों में बांटे गये। अपनी मनसब संख्या (जो बाद में जात कहलाने लगे) के बराबर

[101] शीरी मूसवी का लेख (मध्यकालीन भारत भाग-2) संपादक : इरफान हवीव, पृष्ठ सं. 83-95
[102] वही, पृष्ठ सं. 83-95

दूसरी श्रेणी में रखा गया तथा तीसरी श्रेणी में वे अमीर थे जिनके पास अपने मनसब (जात) से आधे से कम घुड़सवार (बारावर्दी) होते थे।[103] अनुमानतः अकबर के 40 वें वर्ष (1595–96) तक प्रचलित व्यवस्था के अनुसार पहली बार मनसबदार बनाये जाने पर उससे यह आशा की जाती थी कि वह मनसब संख्या (जात) के बराबर घुड़सवार रखेगा। उसको पैयक्वित वेतन भी इसी आधार पर दिया जाता था कि वह अपनी जात के बराबर घुड़सवार रखेगा। बारावर्दी का वेतन अस्थायी तथा आशिंक दर के आधार पर नियत किया जाता था उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह बाद में अपने घुड़सवारों और घोड़ों के हाजिरी (मस्टर) और दाग के लिए पेश करेगा और उसके बाद ही उसे बाकी की राशि का भुगतान किया जायेगा।[104] इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि मनसबदार को जो बारावर्दी के लिए अस्थायी भुगतान राज्य द्वारा किया जाता था। उसमें राज्य का नुकसान रहता था क्योंकि अधिकतर मनसबदार बारावर्दी अपनी जाति के अनुरूप घुड़सवार लाने में असमर्थ रहते थे। स्थिति यह थी कि अधिकतर मनसबदार बारावर्दी दर को स्वीकार कर लेते थे, और घुड़सवारों

---

[103] अबुल फजल, अकबरनामा, भाग-3, पृष्ठ सं. 679
[104] अबुल फजल, आइने अकबरी, भाग1, पृष्ठ सं. 191

की पूरी संख्या रखने में असमर्थ रहते थे। शासन हकीकत के तकाजे को मानकर उसी के अनुसार व्यवस्था में संशोधन कर लेता था, यह स्थिति चालीसवें वर्ष की थी।[105] अतः इस प्रकार इस वर्ष पहले आहदे के लिए 'जात' व दूसरे के लिए 'सवार' ओहदे की शुरूआत हुई।[106] मनसबदारों को तीन भागों में बांटा गया था, मनसबदार, अमीर, अमरा–ए–आजम। एक विशेष पद अथवा कोटि निम्न अधिकारों को मनसबदार कहा जाता था। अकबर ने सुल्तानों की परम्परा का पालन करते हुए 200 अश्वारोहियों (निम्नतम) से ऊपर के अधिकारियों को अमीर को श्रेणी में रखा। शीघ्र ही इसे बढ़ा कर 500 कर दिया। निजामुद्दीन का कहना है कि 500 जात से कम के अधिकारी को अमीर को संज्ञा नही दी जाती थी। औरंगजेब के आरम्भिक वर्षों तक सही व्यवस्था चलती रही बाद में उसने सीमा को बढ़ाकर 1000 कर दिया, अतः स्पष्ट है कि 1000 जात से ऊपर वाले अमीर पुकारे जाते थे। जबकि अकबर के समय 500 या इससे अधिक जात वाले ही अमीर कहे जाते थे। इसको पुनः अमीर व अमीर–ए–आजम में विभाजित किया था। इरविन के अनुसार 500 से 3000 के बीच अमीर व 3000 अथवा उसके ऊपर को 'अमीर–ए–आजम कहते थे। अब्दुल अजीज इसकी पुष्टि करते हैं, परन्तु समस्त मुगलकाल का सर्वेक्षण करने के लिए

[105] शीरीन मूसबी, मध्यकालीन भारत, भाग - 2, पृष्ठ सं. 92
[106] वही

शाहजहाँ ने भी इसी को अपनाया परन्तु औरंगजेब ने 1672 ई. में इसको घटाकर 2000 जात कर दिया। पुनः 1682 ई. में इस संख्या को घटाकर 1500 अथवा इससे ऊपर वाले जात वालों को अमीर–ए–आजम कहा जाता था।[107] 'सम्राट ने मनसबदारों को मनसब दहवासी (10 के नायक) से 10 हाजरी (10,000 का सेनापति) तक निर्धारित कर दिये लेकिन 5000 से ऊपर के मनसब अपने श्रेष्ठ पुत्रों के लिए सीमित कर दिये। सम्राट कुछ लोगों को एक ही नजर में पहचान लेता है और उन्हें ऊँचा मनसब प्रदान कर देता है। कभी–कभी वह किसी कर्मचारी के मनसब को बढ़ा देता हैं, लेकिन उसके सवार कम कर देता है। भार वाहक पशुओं की संख्या भी वही निर्धारित करता है।''

1579 ई. में सर्वोच्च मनसब को बढ़ाकर 10,000 कर दिया, परन्तु 6000 से ऊपर मनसब शहजादों के लिए सुरक्षित रखे। 1585 ई. में वह बढ़ा कर 12000 कर दिया और अमीरों को 7000 तक के मनसब दिये जाने लगे। 1605 ई. में मानसिंह को 7000 जात व 6000 सवार का मनसब दिया गया था।[108] मनसबदार सम्राट द्वारा नियुक्त किये जाते थे,

---

[107] शीरीन मूसवी, मध्य कालीन भारत - 2, पृष्ठ सं. 93-94
[108] आर.के. सक्सेना : मुगल शासन प्रणाली, पृष्ठ सं. 85

आरम्भ या अन्त में मनसबदारों के मनसब में वृद्धि करता था। परन्तु यह कोई आवश्यक शर्त नही थी क्योंकि 1505 ई. में टोड़रमल द्वारा बंगाल के सफल अभियान से लौटने पर यद्यपि अकबर ने उसे कई तरह से सम्मानित किया परन्तु उसे कोई मनसब प्रदान नही किया।[109] मनसबदारों की नियुक्ति प्रतिदिन ही होती थी। ''मुश्किल से कोई दिन जाता हो जिस दिन योग्य एवं ईमानदार व्यक्तियों को मनसब न प्रदान किये जाते हो अथवा उसके पद में वृद्धि न की जाती हो।''[110] अकबर के समय में सवार मनसब के प्रचलन के पहले उससे प्रत्येक मनसबदार से अपने मनसब के प्रचलन से पहले मनसब के अनुरूप सैनिकों को रखने की आशा की जाती थी। सौ के मनसबदार को सौ घुड़सवार रखने पड़ते थे। सैद्धान्तिक रूप से यह व्यवस्था थी परन्तु व्यवहारिक रूप में मनसबदार अपने मनसब के अनुरूप अश्वारोही सैनिकों को रखे बगैर ही वेतन व जागीर का प्रयोग करते थे। इस व्यवस्था को दूर करने के लिए अकबर ने 1594–95 ई. में सवार पद प्रारम्भ किया। अतः इसके बाद ही मनसबदारों के मनसब में

---

[109] अबुल फजल : अकबरनामा भाग 3, पृष्ठ सं. 157-58

[110] अबुल फजल : आइन-ए-अकबरी, भाग1, पृष्ठ 241

जात और सवार दो अलग–अलग अर्थ में प्रयोग किये जाते थे।[111] इरविन के अनुसार सवार पद एक अतिरिक्त सम्मान था और प्राप्तकर्ता को जात की संख्या के अतिरिक्त सवार पद एक में निश्चित सैनिकों को रखना पड़ता था।[112] अब्दुल अजीज का मत है कि जात मनसब के अनतर्गत मनसबदार एक निश्चित संख्या में हाथी, भारवाहक पशु आदि रखता था जबकि सवार मनसब यह बताता था कि उसके पास कितने सैनिक सवार होने चाहिए था।[113] मनसबदारों को इन घोड़ो की संख्या के आधार पर अतिरिक्त धन दिया जाता था। डॉ. कुरैशी के अनुसार सवार मनसब सम्मान सूचक था और इसके बदले मनसबदार को बगैर घुड़सवार रखे हुए ही अधिक मनसब मिलता था।[114] सी.एम.के. राव के अनुसार कि जात और सवार मनसब घुड़सवारों की संख्या को बताता था। क्योंकि अकबर के शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में केवल जात मनसब ही था, इसलिए राव के आधार पर इन वर्षों में अश्व से ही सैनिकों को अस्तित्व ही नही था। यह मत इतिहास संगत ही नही है, क्योकि बगैर अश्वरोही सैनिकों के मुगल सेना की कल्पना करना निरर्थक होगा। इसके अतिरिक्त यदि राव

---

[111] आईन-ए-अकवरी भाग1, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 241
[112] गिलियम इरविन, द आर्मी आफ द इण्डियन मुगल्स, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 4
[113] अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिस्टम आफ द मुगल, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 37
[114] आई. एच करैशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल अम्पायर, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 102

क अन्त म इनका सख्या 10 लाख स आधक हा जायगा। इस मात्र को स्वीकार करना सम्भव नही है। जात और सवार सम्बन्धी इन विरोधी विचारों के आधार पर इसका सही अर्थ निकालना कठिन है। अतः बदायूनी के विवरण के आधार पर कि बीस के मनसबदार को बीस सवारों के साथ ही एक निश्चित संख्या में घोड़े, हाथी, ऊँट और बैल गाड़ियां रखनी पड़ती थी।[115] जब बीस का मनसबदार अपने बीस सवारों के घोड़े दागने के लिए ले जाता था तब उसे सौ अथवा अधिक का नायक बना दिया जाता था। इसी तरह उन्हें उसी नियम के अनुसार अपने मनसब के अनुपात से हाथी, घोड़े और ऊँट रखने पड़ते थे। जब वे सैनिक परेड के अवसर पर अपने सैन्यदलों को पूरा प्रस्तुत कर देते थे तो उन्हे उनकी योग्यता और परिस्थितियों के अनुसार उसका मनसब बढ़ाकर दो हजार, चार हजार, पांच हजार कर दिया जाता था। अकबर ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार राज्य द्वारा जागीर व वेतन का मनसबदार दुरूपयोग करते हैं और राज्य को बगैर सैनिक सेवा प्राप्त हुए उनके द्वारा की गयी जागीरों का कोई लाभ नही मिल रहा है। उसने यह भी अनुमान किया कि प्रत्येक मनसबदार सेनानायक बनने के योग्य नही है इसलिए वही मनसबदार

---

115 आर.के. सक्सेना, मुगल शासन प्रणाली, पृष्ठ सं. 87

जिसमें सैनिक प्रतिभा है उन्हें ही सवारों को रखने का उत्तरदायित्व सौंपा जाये। अकबर ने इस प्रकार जात मनसबदारों को सवार रखने के उत्तरदायित्व से मुक्त रखने का निर्णय लिया।[116] अकबर के राज्यकाल में 40 वें वर्ष में जो जात मनसबदार की सूची दी गई है उसमें उसके द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों, हाथी, ऊँट व बैलगाड़ियों की संख्या तो दी है परन्तु सवारों को नही। इससे यह मानना कि जात मनसबदार घोड़े रखने के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिये गये यह उचित नही होगा। वे मनसब के अनुसार घोड़े अवश्य रखते थे, परन्तु घुड़सवार रखने से वंचित कर दियें गये थे। अकबर ने यह व्यवस्था 1594 ई. में आरम्भ की थी। इस तथ्य की पुष्टि इससे होती है कि 1585 से 1594 ई. तक सलीम केवल 12000 जात का मनसबदार था परन्तु 1595 ई में उसके मनसब में पहली बार 10000 सवार का मनसब भी जोड़ दिया।[117] 1597 ई. में शहरूख मिर्जा को 5000 जात व 2000 सवार का मनसब दिया गया, अथवा 1597 ई. में दानियल को 7000 सवार का मनसबदार बनाया गया। इस आधार पर यह स्वीकार करना अधिक तर्क संगत होगा कि अकबर के काल में मनसबदारों के सवार मनसबदार का अर्थ था कि वह अपने सवार पद के अनुसार घुड़सवार सैनिकों को रखेगा। 1595 ई. में उसने एक नये आदेश के द्वारा

---

[116] अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी भाग1, पृष्ठ सं. 257-58

[117] अबुल फजल, अकबरनामा, भाग 3, पृष्ठ सं. 649-50

और हिन्दुस्तानी सवारों के पास केवल एक घोड़ा है। दाम प्रतिमाह वेतन मिलेगा। दो घोड़े वाले राजपूत सवार को 600 दाम तीन घोड़े वाले को 800 दाम प्रतिमाह वेतन निश्चित किया गया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि शासन के तीन प्रकार के सैनिक थे जो एक घोड़ा, दो घोड़ा, व तीन घोड़े रखते थे। जिन्हें एक–अस्पा, दु–अस्पा व सेह–अस्पा की आज्ञाओं से जाना जाता है। अतिरिक्त घोड़े के लिए अतिरिक्त भत्ता मिलता था। राज्य के आरम्भ में कभी–कभी सैनिक चार घोड़े रखता था। और ऐसी स्थिति में एक दहबासी (दस का मनसबदार) के पास घोड़े होते थे।[118] नीम अस्पा में दो सैनिक मिलकर एक घोड़ा रखते थे। अकबर की यह व्यवस्था जहाँगीर के शासन के नवें वर्ष तक चलती रही। अपने शासन के दसवें वर्ष में उसने इस उद्देश्य से सैनिकों की संख्या बढ़ाई जावे परन्तु व्यय में अधिक बढ़ोत्तरी न हो। मनसब के साथ दु–अस्पा और सेह–अस्पा जोड़ना प्रारम्भ कर दिया। इसका सबसे पहला उदाहरण 1716 ई. में महामत खां के मनसब में मिलता है। दक्षिण के अभियान पर नियुक्ति करते समय उनके मूल पद (3000 जात, 2000 सवार) में कोई भी बढ़ोत्तरी नही की गयी। परन्तु 1700 सवारों को दु–अस्पा, सेह–अस्पा बना दिया।[119] सवार

---

[118] आई.एच.कुरेशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल अम्पायर, पृष्ठ सं.120
[119] तुजक-ए-जहाँगीरी, अनुवादित रोजर्स, नई दिल्ली, 1968, पृष्ठ सं. 147

दिया जाने लगा। शाहजहाँ के शासनकाल के तीसरे वर्ष 1000 जात व उसके ऊपर से 253 मनसबदारों में सें 25 मनसबदार दु–अस्पा सेह–अस्पा मनसब के थे। औरंगजेब के समय इनकी संख्या और भी गढ़ गई । शासन के तीसरे वर्ष तक 1000 जात के मनसबदारों में से 68 को दु–अस्पा, सेह–अस्पा मनसब प्राप्त था। शासन के अन्तिम तीसरे वर्षों में 1000 जात तथा इससे अधिक के 575 मनसबदारों में से 70 को दु–अस्पा, सेह–अस्पा का मनसब प्राप्त था।[120] अकबर द्वारा प्रचलित वेतन के आधार पर सेह–अस्पा को 3600 दाम $(1000\times3\times12)$ दु–अस्पा को 19200 दाम $(800\times2\times12)$ और एक–अस्पा को 7200 दाम $(600\times1\times2)$ प्रतिवर्ष वेतन दिया जाता था। यदि कोई 4000 जात व 4000 सवार का मनसबदार हैं जिसमें 1000 दु–अस्पा, सेह–अस्पा सैनिक हो तो उसे 1000 सैनिकों का अतिरिक्त भत्ता दिया जाता था। यदि प्रति सैनिक का वेतन 800 दाम प्रतिमाह हो तो कुल वेतन इस प्रकार होगा–

4000 सवार – 1000 दु–अस्पा, सेह–अस्पा= 3000 साधारण सैनिक,

[120] एम.अतहर अली, द मुगल नो विलिटी अण्डर औरंगजेब, पृष्ठ सं. 42-43

3000 साधारण सैनिको का वार्षिक वेतन $3000 \times 800 \times 12 = 28000$ दाम

पूर्ण वेतन = $28800000 + 192000000 = 220800000$ दाम

इन मनसबदारों को 3000 साधारण सैनिक (बारावर्दी) व 1000 दु–अस्पा, सेह–अस्पा के आधार पर $1000 \times 2 = 2000$ अतिरिक्त घुड़सवार रखने पड़ते थे। किसी भी स्थिति में दु–अस्पा का नियंत्रण पद सवार से अधिक नही हो सकता। शाहजहाँ ने मनसबदारी व्यवस्था में जटिलता को दूर करने के लिए शासन के बीसवें वर्ष कुछ नियम प्रतिपादित किया जिसमें कि मनसबदार उसी क्षेत्र में नियुक्त हो जहाँ उसकी जागीर हो तो उसे उसके मनसब का एक तिहाई यदि अन्यत्र नियुक्ति हो तो एक चौथाई यदि बल्ख एवं बदख्शां में नियुक्त हो तो 1/5 अश्वारोही रखने पड़ेंगे।[121] 600 सवार के मनसब को अपनी जागीर में रखते हुए 2000 अन्यत्र नियुक्ति पर 1500 व बल्ख एवं बदख्शां में 1200 पर ही रहने पड़ेंगे। बाद में बल्ख एवं बदख्शां का 1/5 का नियम काबुल के लिए भी नियुक्ति कर दिया गया था। इन मनसबदारों के लिए जो अन्य किसी प्रान्त में तैनात हो उनकी जागीर भी उसी प्रान्त में हो। भर्ती करने का एक बटा तीन नियम अतहर अली ने इस प्रकार दिया हैः –

121 अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिस्टम आफ मुगल आर्मी, पृष्ठ सं. 81-82

12	22	12	24	56
11	17	17	34	51
10	12	26	34	46
9	8	26	34	42
8	3	31	34	37
7	4	33	34	35
6	—	34	34	34
5	—	24	24	24
4	—	18	18	18
3	—	14	14	14
2	—	11	11	11
1	—	9	9	9

शाहजहाँ ने अपने शासनकाल में मासिक वेतन अनुपात भी निश्चित किया। इसकी आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई कि मनसबदारों को दी

गयी जागीर के जमा (निर्धारित किया गया लगान) व हासिल (वास्तविक में प्राप्त लगान) में बहुत अन्तर था। इस अन्तर को दूर करने के लिए मात्र दो उपाय थे। भूमि का पुनः सर्वेक्षण किया जावे और जमा तथा हासिल में अनुरूपता स्थापित किया जाये अथवा हासिल के आधार पर मनसबदार का वेतन महीनों के अनुपात में निश्चित किया जाये और उसी के अनुपात में घोड़े रखने की सुविधा दी जाये। इसके लिए यह नियम बनाया गया कि वे मनसबदार जिनके जमा व हासिल में अन्तर नही है। अर्थात उसकी आय 12 महीने के वेतन के बराबर है। वे प्रत्येक दस सैनिकों के लिए बाईस घोड़े रखेंगे। जिन्हें बारह की अपेक्षा जागीर से केवल ग्यारह महीने के वेतन के बराबर आय प्राप्त होते है। वे दस सैनिकों के लिए 20 घोड़े रखेंगे। इसी प्रकार वे मनसबदार जिन्हें वर्ष में दस महीने से कम के वेतन के बराबर ही जागीर से आय प्राप्त होती है वे सेह–अस्पा के नियंत्रित पद के अधिकारी नही होंगे। इसी प्रकार दस, नौ, आठ, सात, छः महीने के बराबर जागीर से प्राप्त आय के मनसबदार प्रत्येक दस सैनिक के लिए अट्ठारह, सोलह, साढ़े पन्द्रह, साढ़े बारह व ग्यारह घोड़े क्रम से रखेंगे। वे मनसबदार जिन्हें जागीर से केवल पांच महीने के वेतन के बराबर आय प्राप्त होती थी वे देश के सैनिकों के लिए दस घोड़े ही रखेंगे।[122]

---

[122] आई. एच. कुरैशी, द एडमिनिस्ट्रशन आफ द मुगल अम्पायर, पृष्ठ सं. 120

शाहजहाँ ने अपने राज्यकाल के 27 वें वर्ष एक फरमान निकाला कि नकद वेतनों के आठ माह के ऊपर या चार माह के दरों को नीचे निर्धारित न किया जाये केवल शहजादे और मात्र दो अमीर इस नियम के अपवाद थे जिनको कि दस माह अनुमाप के अनुसार वेतन मिलता था। औरंगजेब ने अपने शासन के 21वें वर्ष में आज्ञा दी कि नकदी आठ माही व सात माही के आधार पर न देकर छः माही के आधार पर दी जाये। नकदी में दिये गये वेतन को तालिका डॉ. अतहर अली ने इस प्रकार दी है।

12 माह 2500	11 माह 2291—10—6	10 माह 2083—5—3	9 माह 1875
8 माह 1666—10—6	7 माह 1458—5—0	6 माह 1250	5 माह 1011—10—6
4 माह 833—5—3	3 माह 625—00	2 माह 416—10—6	1 माह 208—5—3

100 सवार वाले नकदियों के लिए एक बटा पांच नियम–

माह	सेह–अस्पा	दो–अस्पा	एक–अस्पा	आदमी	घोड़े
12	6	12	2	20	44
11	5	10	5	20	40
10	–	15	5	20	36
9	–	12	8	20	32
8	–	11	9	20	31
7	–	5	15	20	25
6	–	2	18	20	22
5	–	–	20	20	16
4	–	–	16	16	12
3	–	–	42	12	8
2	–	–	8	8	4
1	–	–	4	8	

(नोट– इस तालिका में दस सवार की अपेक्षा 20 सवार के आधार पर आंकड़े दिये गये है।)

यदि मनसबदार के वेतन का कुछ भाग जागीर व कुछ भाग नकद में हो तो ऐसी स्थिति में यदि वेतन का आधे से अधिक भाग जागीर के रूप में हो तो उसे जागीर के नियमों के अनुसार घोड़े को दगवाने के लिए प्रस्तुत करना पड़ता था और यदि आधे से अधिक भाग नकद में हो तो नकदी के अनुसार घोड़े को दागने के लिए लाना पड़ता था। दक्षिण के मनसबदारों की स्थिति और भी दयनीय थी। उन्हें अपने जागीर से अधिक से अधिक चार माह का वेतन ही मिल पाता था इसलिए वे हमेशा उत्तर भारत की तरह जागीर पाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।[123] 1595 ई. में मनसबदारों को तीन श्रेणियों में बांटा गया। जिन मनसबदारों के जात व सवार पद एक से होते थे उन्हें पहले वर्ग में तथा जिनका सवार पद जात मनसब के आधे से कम होता था उन्हें दूसरे वर्ग में और जिनका सवार पद जात मनसब के आधे से ज्यादा होता था तो उन्हें तीसरे वर्ग में माना जाता था। इसी वर्गीकरण के आधार पर उन्हें वेतन दिया जाता था। साधारणतः जात की संख्या सवार से अधिक होती थी।[124] नियम यही था कि जात का मनसब सवार से अधिक होता था। अकबर के अबजद पद्धति के आधार पर अल्लाह के अक्षरों के संख्या वाचक मूल (10+30+35+5) को जोड़कर 10 से 19000 तक के मनसबदारों की 66 श्रेणियां बनायी थी।

[123] अबुल फजल, अकबरनामा भाग 3, पृष्ठ सं. 1031
[124] अब्दुल अजीज, द मनसबदारी आफ द मुगल आर्मी, पृष्ठ सं.3

लेकिन आइन–ए–अकबरी में मनसबदारों की जो संख्या व तालिका दी हुई है उसमें केवल 33 थी, बाकी 33 श्रेणियां सैद्धान्तिक थी।[125] डॉ. कुरैशी ब्लाखमैन की तरह यह मानते है कि मनसबदारों की वास्तविक श्रेणियां 33 थी बाकी 33 श्रेणियां सैद्धान्तिक थी।[126] डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव इसे स्वीकार नही करते। उनके अनुसार निजामुद्दीन के कथन के विपरीत ऐसा लगता है कि अबुल फजल की सूची अपूर्ण है। यह सूची 1595 ई. में बनायी गयी थी, और यह अकबर के शासन की पूरी सूची स्वीकार नही की जा सकती। अकबर के शासन के अन्तिम वर्षों में जो नियुक्तियां तथा पदवृद्धियां हुई। उसका इस सूची में उल्लेख नही है। इस सूची में सलीम, मुराद व दनियाल का मनसब दस, आठ व सात हजार बताया गया है। जबकि 1586 ई. में उनके मनसब बारह नौ व सात थे। शहजादा खुसरों को भी इस सूची में 5000 का मनसबदार बताया गया है, जबकि 1605 में वह 10 हजार का मनसबदार था। अकबर के अमीर फताउल्लाह सिराजी, अख करन, महावत खां, खाने–जहां–लोदी, अब्दुल खां फिरोज खां जैसे लोगों के नाम इसमें नही है। अबुल फजल ने भी अपना नाम 2500 के मनसबदारों में दिया है जबकि वह 1602 ई. में पांच हजार का मनसबदार था।[127] अबुल फजल केवल 33 श्रेणियों का नही अपितु 66 श्रेणियों के सभी

---

125 अबुल फजल, आइन-ए-अकबरी, भाग-1, पृष्ठ सं. 238-40

126 आई एच कुरैशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ मुगल अम्पायर, पृष्ठ सं. 3

127 ए.एल. श्रीवास्तव : अकबर महान, भाग 2, आगरा, 1967, पृष्ठ सं. 240

मनसबदारों को जितने घोड़े, हाथी, ऊँट और बैलगाड़ियां रखनी पड़ती थी। उसका पूरा–पूरा विवरण देता है। वह इन 66 श्रेणियों के मनसबदारों का अलग–अलग वेतन भी देता है। इस प्रकार ब्लाखमैन का मत तर्क संगत नही लगता। अबुल फजल का निश्चित कथन गलत नही कहा जा सकता। क्योंकि अकबर के समय में किसी विशेष तिथि को मनसबदारों की संख्या बताना कठिन है। क्योंकि समकालीन इतिहासकारों ने जो सूची दी है वह नितान्त अपूर्ण है। निजामुद्दीन केवल 500 या उसके ऊपर के मनसबदारों की सूची दी है। अबुल फजल ने ऐसे नाम नही दिये जिनकी 1595 ई. तक मृत्यु हो गयी थी अथवा उनको मनसब प्रदान किये गये। परन्तु उसके बाद भी आइन–ए–अकबरी में 1595 ई. में 1805 ई. में 1803 मनसबदारों की सूची मिलती है।[128] मनसबदारों की नियुक्ति पद वृद्धि आये दिन हुआ करती थी अथवा अनेक मनसबदार सेवानिवृत्ति हो जाया करते थे ऐसी स्थिति में मनसबदारों की कुल संख्या निकालना और भी कठिन है। डीलाइट ने जहाँगीर के राज्यरोहण के समय मनसबदारों की कुल संख्या 2941 बताई है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अकबर के शासन के अन्त में मनसबदारों की संख्या यही रही होगी।[129]

[128] अबुल फजल : आइने-ए-अकबरी भाग1, पृष्ठ सं. 604-05
[129] डी. लायेट, द अम्पायर आफ ग्रेट मोगल, एस.एन. बनर्जी, बम्बई, 1928, पृष्ठ सं.113

क्रम संख्या	संख्या	मनसब
1	8	5000
2	9	4500
3	25	4000
4	30	3500
5	36	3000
6	42	2500
7	45	2000
8	51	1500
9	55	1000
10	58	700
11	80	500
12	73	400
13	58	350
14	72	300
15	85	250
16	150	200
17	242	150
18	300	100
19	245	80
20	397	60
21	298	42
22	240	30
23	232	20
24	110	10

अकबर ने 10 से 10,000 के बीच मनसब निर्धारित किये गये थे लेकिन पांच हजार से ऊपर के मनसब अपने पुत्रों के लिए सुरक्षित किये

हुए थे।[130] अकबर द्वारा निर्धारित मनसब व्यवस्था (10 से 10000 के बीच) 1579 ई. तक चलती थी। इसी वर्ष उसने सलीम को 10,000 मुराद को 7000, तथा दानियाल को 6000 का मनसब दिया।[131] 1585 ई. में मनसब की अन्तिम सीमा 12000 कर दी। सलीम को यह मनसब प्रदान किया गया।[132] पांच हजार से ऊपर के मनसब अपने निकट सम्बन्धियों को दिये। 1594 ई. में सवार–पद के आरम्भ होने पर उसने 1602 ई. में अजीज कोका को 7000 जात व 6000 सवार का पद दिया।[133]

जहाँगीर के शासनकाल में मनसबों को बढ़ाकर 40,000 कर दिया गया। 1617 ई. में खुर्रम को 30,000 जात व 20,000 सवार तथा परवेज को 20000 जात व 10000 जात व 8000 सवार को मनसब मिला। जब शाहजहाँ ने विद्रोह किया तो परवेज का मनसब बढ़ाकर 40000 जात व 30000 सवार कर दिया गया। जहाँगीर के राज्यरोहण के समय यद्यपि डी. लायेट ने मनसबदारों की कुल संख्या 2941 बताई है परन्तु विभिन्न वर्ग के मनसबदारों की निश्चित संख्या जानना सम्भव नही हो पाया है। श्रीराम शर्मा के अनुसार कि उनके शासनकाल में 1000 से ऊपर मनसबदारों की संख्या 302 तथा 500 से ऊपर के मनसबदारों की संख्या 438 थी।[134] सात

---

[130] अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, भाग1, पृष्ठ सं. 237

[131] अकबरनामा, भाग3, पृष्ठ सं. 308

[132] बदायूंनी : मुन्तखव उल-तवारीख, अनु. लोवी, भाग 2, कलकत्ता, 1924 पृष्ठ 353-63

[133] अबुल फजल, अकबरनामा वही भाग 3, पृष्ठ सं. 121

[134] श्रीराम शार्मा, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, बम्बई 1951, पृष्ठ सं. 138-39

हजार जात तथा इतने ही सवार के पद मनसबदारों में सामउद्दौला, आसफखां महावत खां आदि प्रमुख व्यक्ति थे। 6000 जात के मनसबदारों की संख्या सात व 5000 जात के मनसबदारों की संख्या 50 थी।[135]

शाहजहाँ के शासनकाल में मनसबदारों को और ऊँचा करने के प्रमाण मिले है। दारा शिकोह को 6000 जात 40000 सवार का मनसब दिया गया था। इसी प्रकार शुजा को 20,000 जात व 15000 सवार के मनसब दिये गये।[136] दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह 15000 जात 3000 सवार तथा दूसरे पुत्र सिपहा सिकोह को 8000 जात व 3000 सवार का मनसब दिया गया।[137]

6000 से 5000 तक के मनसबदारों की सूची जिसमें हिन्दू मनसबदारों की संख्या इस प्रकार थी।

क्रम संख्या	कुल संख	मनसब	हिन्दू मनसबदरों की संख्या
1	7	6000	1
2	32	5000	11
3	37	4000	6
4	57	3000	16
5	24	2000	1
6	68	2000	17
7	72	.1500	18
8	138	1000	26

[135] वही पृष्ठ सं.109-11
[136] अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिस्टम आफ दि मुगल आर्मी, पृष्ठ सं. 125
[137] बनारसी प्रसाद सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहाँ, दिल्ली, 1932, पृष्ठ सं. 305

9	[illegible]	[illegible]	[illegible]
10	81	800	17
11	77	700	12
12	57	600	9
13	80	500	40
	755		179

इस तालिका से परिणाम निकलता है कि 6000 के मनसब में हिन्दू तथा कुल मनसबदारों की संख्या 1:7 के अनुपात में थी। 2500 के मनसब में यह अनुपात 1:24 तथा सबसे अधिक अनुपात 500 के मनसब में जो 1:2 का था। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 500 से नीचे के मनसबदारों में भी हिन्दुओं की संख्या अधिक रही होगी। अब्दुल हमीद लाहौरी ने जो शाहजहाँ के शासन के प्रथम, द्वितीय व तीसरे दशक की सूची दी है। उसमें 500 से कम मनसबदारों की तालिका प्राप्त नही हो पायी है। साहेल की तालिका से यह स्पष्ट है कि कुल मनसबदारों में हिन्दू मनसबदारों का अनुपात 1:4 के लगभग था (500 के मनसब के अतिरिक्त) और अधिकार छोटे मनसब पर हिन्दुओं को नियुक्त किया जाता था।

औरंगजेब अपने पुत्रों को उच्च मनसब दिये शहजादा मुज्जम को 40000 जात व 40000 सवार कामबक्स को 40000 जात व 40000 सवार

मु0 सुल्तान को 20000 जात व 10000 सवार, मु. आजम को 20000 जात, 9000 सवार तथा अकबर को 10000 जात व 20000 सवार मनसब दिया। इस प्रकार पौत्र बीदार को 15000 जात व 12000 सवार मु. मुईजुद्दीन को 12000 जात व 10,000 सवार मु. आजम को 10000 जात 20 सवार रफी अलकदार को 8000 जात 7000 सवार का मनसब दिया। डॉ. अतहर अली ने औरंगजेब के समय 1658–1678, 1679 से 1707ई. तक के मनसबदारों की स्थिति की तालिकाएं।[138]

औरंगजेब के अमीर वर्ग की जातीय एवं धार्मिक संरचना।[139]

ईरानी	तूरानी	अफगान	भारतीय मु.	अन्य मुसलमान	मु. की कुल सं.	राजपूत	मराठे	अन्य हिन्दू	कुल हिन्दू	कुल योग
5000 व इसके ऊपर के मनसबदार										
23	9	3	4	2	41	6	3	1	10	51
3000 से 4500 तक के मनसबदार										
32	16	9	10	5	72	11	6	1	18	90
1000 से 2700 तक के मनसबदार										
81	42	31	51	63	268	54	18	5	77	345
136	67	43	65	70	381	71	27	7	105	486

[138] एम अतहर अली, मुगल अमीर वर्ग, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 51
[139] वही

ईरानी	तूरानी	अफगान	भारतीय मुसलमान	अन्य मुसलमान	मु. की कुल सं.	राजपूत	मराठे	अन्य हिन्दू	कुल हिन्दू	कुल योग
5000 व उसके ऊपर के मनसबदार										
14	6	10	10	13	53	5	16	5	26	79
3000 से 4500 तक के मनसबदार										
40	22	4	18	13	97	15	18	3	36	133
1000 से 2700 तक के मनसबदार										
72	44	20	41	66	243	53	62	5	120	363
126	72	34	69	62	393	73	96	13	182	575

औरंगजेब के समय के हिन्दू मनसबदारों की तुलना, यदि अकबर और शाहजहाँ के समय से की जायें तो हमें ज्ञात होगा कि यद्यपि उसके राज्य के प्रथम बीस वर्षों में हिन्दुओं की स्थिति में अवश्य हुआ परन्तु अन्तिम बीस उन्नीस वर्षों में स्थिति में बहुत सुधार हुआ। जैसा निम्न तालिका से स्पष्ट है।[140]

[140] एम अतहर अली, मुगल अमीर वर्ग, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 47

	अकबर 1595	शाहजहाँ 1628–58	औरंगजेब 1658–78	1679–1707
5000 व उसके ऊपर	14.3	24.5	19.6	32.9
3000 से 4500	10.3	25.0	20.0	27.1
1000 से 2700	35.3	21.3	22.3	33.1
500 से 900	21.8			

यह तालिका निश्चित ही हिन्दू मनसबदारों की स्वस्थ स्थिति बताती है। परन्तु समकालीन ग्रन्थों में हमें 500 से 600 तक अथवा इससे कम के मनसबदारों की सूची नही मिल पायी है। औरंगजेब के शासन के 38वें वर्ष के महीनों की प्रतिदिन की विज्ञप्तियां (Bulletiny) हमें प्राप्त है। इसके अनुसार 40, 60, 80, 100, 150, 200, 300, 400, 500, 700, 1000, 2000, 3000, 4000 व 6000 में केवल 76 नियुक्तियां हुई थी। इनमें से अधिकतर निम्न वर्ग में हुई थी।[141] हिन्दुओं की नियुक्तियां अधिकतर निम्नवर्ग में हुई थी इसकी पुष्टि इससे होती है कि औरंगजेब के आदेशनामा में कि हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त न किया जाय।[142] अकबर के समय में मनसबदारों को अपने वेतन से ही राज्य के लिए घोड़े हाथी भारवाहक पशु व गाड़ियाँ रखनी पड़ती थी। अबुल फजल के 1695 ई. तक की जो सूची

[141] श्री राम शर्मा, मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 114
[142] वही पृष्ठ सं. 194

गाड़ियों की संख्या के साथ ही मासिक वेतन रूपये में बताये गये हैं क्योंकि वह तालिका केवल जाति की ही है इसलिए स्वाभाविक रूप से सवार मनसब के लिए प्रत्येक मनसबदार को अतिरिक्त वेतन दिया जाता था।[143] जात–पद कि मनसबदार द्वारा का अपने द्वारा रखे जाने वाले पशुओं आदि के खर्चे को निकालकर बाकी बचा हुआ धन व्यक्तिगत वेतन के रूप में होता था। सवार पद आरम्भ होने पर जात पद व्यक्तिगत हो गया था। सवार पद सैनिक टुकड़ियों के आकार को निर्धारित करता था जो अमीरों को रखनी पड़ती थी। अतः जात पद का वेतन मनसबदार के व्यक्तिगत वेतन के रूप में व सवार पद का वेतन उसकी सैनिक टुकड़ियों के लिए होता था, इनको सासह (व्यक्तिगत) ताबीनान (सैनिक टुकड़ी का खर्च) कहा जाता था। अकबर के समय में मनसबदारों को पूरे बारह महीने का वेतन दिया जाता था। घोड़े के साज सामान के लिए सैनिक का एक माह का वेतन काट लिया जाता था। जिसकी कीमत उसके वास्तविक मूल्य से पचास प्रतिशत अधिक बढ़ा दी जाती थी। इसलिए सैनिक को इससे कोई हानि नही होती थी। मनसबदारों को यह अनुमति थी कि वे सैनिकों को दिये जाने वाले वेतन में पाँच प्रतिशत काट ले। जब तक

---

[143] ए.एल. श्रीवास्तव, मुगल कालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृ. 244

घोड़े की नस्ल	मासिक वेतन
ईरानी	30
मजन्नास	25
टर्की	20
याबू	18
लाज	15
जंगला	12

1595 ई. में अकबर के फरमान से कि मुगल, अफगान हिन्दुस्तानी सैनिक के लिए वेतन की दरें निश्चित कर दी गयी है। एक–अस्पा को 15 रू., दु–अस्पा को बीस रूपये व सेह–अस्पा सवार को पच्चीस रूपये प्रतिमाह दिये जायेगें। राजपूत सैनिकों में दो घोड़े वाले सवार को पन्द्रह रूपये और तीन घोड़े वाले को बीस रूपये प्रतिमाह देना निश्चित किया गया। इन वेतनों में पांच प्रतिशत कटौती कर मनसबदार को सैनिक के साज सामान के लिए दे दिया जाता था। अतः मुगल अफगानी सैनिक का वेतन चौदह रूपये चार आना व राजपूत सैनिक का ग्यारह रूपये छः आना

[144] अबुल फजल, आईन-ए-अकबरी, भाग 1, पृष्ठ सं. 251

व 4.8 पाई प्रतिमाह था। जहाँगीर के काल में यही वेतन बना रहा। परन्तु शाहजहाँ और औरंगजेब के काल में कटौती कर दी गयी।[145]

शासक	वेतन प्रतिवर्ष (दाम में) साधारण अश्वारोही
अकबर	9600 (240रू.)
जहाँगीर	9600 (240रू.)
शाहजहाँ (1630 ई.)	8800 (220रू.)
शाहजहाँ (1638 ई.)	8000 (200रू.)
औरंगजेब	8000 (200रू.)

वेतन की कटौती के साथ शाहजहाँ और औरंगजेब के काल में खुराक–ए–दब्बान (रसद–ए–खुराकी) भी काटी जाने लगी। इसमें मनसबदारों के अधीन पशुओं के चारे का खर्च मनसबदारों के वेतन से काट लिया जाता था।[146] कटौती सबसे अधिक दक्खिनी अधिकारियों से ली जाती थी, जो वेतन का 1/4 भाग थी। इसकी को बजा–ए–दाम–ए–चौथाई अर्थात दाम में एक–चौथाई कटौती कहा जाता था।[147] लाहौरी ने शाहजहाँ के शासनकाल के 20वें वर्ष (1647–48) की 500 जात और उससे ऊपर की जो सूची दी है उसमें उसके 578 मनसबदार गिनाये हैं। जिसमें से इस वर्ष तक 133 की मृत्यु हो चुकी थी,

145 एम अतहर अली, द मुगल नोबिल्टी अण्डर औरंगजेब, पृष्ठ सं. 50
146 वही, पृष्ठ 51
147 डा. आर के सक्सेना, मुगल शासन प्रणाली, पृष्ठ सं. 99-100

अतएव 445 जीवित थे। इस समय मनसबदारों की कुल संख्यया 500 बनाई जाती है। जिसका अर्थ है कि 500 जात से ऊपर के मनसबदारों का प्रतिशत मात्र 5.6 प्रतिशत था। इसका कुल निर्धारित वेतन 54109 लाख दाम होता है। जिसमें से जात के अन्तर्गत इनका वेतन 12287 लाख दाम आता हैं और इसी वर्ष की कुल अनुमानित मालगुजारी 880 करोड़ दाम थी। इससे यह परिणाम निकला कि केवल 5.6 प्रतिशत मनसबदार राज्य की सम्पूर्ण अनुमानित मालगुजारी का लगभग 61.5 प्रतिशत हड़प लिया करते थे।

पद	कुल संख्या	जात व सवार पद का कुल वेतन (दस लाख दाम)	निर्धारित मालगुजारी आय (जमा) का प्रशित
7000 जात से ऊपर	4	724.00	8.2
7000 जात से ऊपर	4	400.0	4.5
6000 जात से ऊपर	2	88.0	1.0
5000 जात से ऊपर	15	929.7	10.5
4000 जात से ऊपर	10	336.8	3.8
3000 जात से ऊपर	33	743.4	8.4
2500 जात से ऊपर	5	87.2	0.9

पद	कुल संख्या	जात व सवार पद का कुल वेतन (दस लाख दाम)	निर्धारित मालगुजारी आय (जमा) का प्रशित
2000 जात से ऊपर	41	562.4	6.3
1500 जात से ऊपर	35	353.3	4.0
1000 जात से ऊपर	70	451.1	5.1
900 जात से ऊपर	18	78.0	0.9
800 जात से ऊपर	30	146.2	1.6
700 जात से ऊपर	52	179.1	2.0
600 जात से ऊपर	25	86.0	0.9
500 जात से ऊपर	101	244.8	2.7

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि 7,555 मनसबदार जो कुल मनसबदारों के 9.4 प्रतिशत थे। साम्राज्य की कुल आकलित मालगुजारी का 25 या अधिक से अधिक 30 प्रतिशत के अधिकारी थे।[148]

औरंगजेब के काल में हिन्दू मुसलिम एकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि हिन्दू अधिकारी की सिफारिश पर मुसलमानों को मनसब दिये गये और मुसलमानों की सिफारिश पर हिन्दुओं को मनसब दिये गये।

[148] ए. जान. कैसर, मध्य कालीन भारत, भाग 1, पूर्वोद्धत, सम्पादक : इरफान हबीब, पृष्ठ सं. 93-97

मुसलिम एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है। बीजापुर के प्रमुख अमीर मुल्ला अहमद नैथा को मिर्जा राजा जयसिंह की सिफारिश पर छः हजारी मनसब दिया गया।

क्रम	सिफारिशकर्ता	मनसब प्राप्त करने वाले का नाम	स्त्रोत
1.	मिर्जा राजा जयसिंह	मुल्ला अहमद नैथा (बीजापुर का अमीर) 6000जात / 6000 सवार	आलमगीरीनामा पृष्ठ 919–20
2.	रूहेल्ला खॉं	सरदार सिंह हाडा 500जात / 200 सवार	अखबारात–2 शहबाल, 25 वर्ष
3.	रूसामदिल खॉं	दनकतराव (अलवर कुण्डा का जमीदार) 500जात / 200 सवार	अश्व, 1 मुहर्रम 45 बारा, वर्ष
4.	अजमेर के नाजिम सैय्यद अब्दुल्ला खॉं	राजसिंह (तोड़ा का फौजदार तथा 400 / 300 का मनसब	अश्व–18 शाबान 43 से 27 वर्ष

प्रमुख बादशाह के काल के हिन्दू एवं मुसलमान मनसबदारों की संख्या

मुगल सम्राट अकबर (1595 ई.)

क्र.	मनसबदार	कुल	हिन्दू	मुसलमान	हिन्दुओं का प्रतिशम
1.	5000 व उसके ऊपर	7	1	6	14.3 %
2.	3000 से 4500 तक	10	1	9	10.0 %
3.	1000 से 2700 तक	17	6	11	35.3 %
4.	500 से 900 तक	64	14	50	21.8 %
	कुल योग	98	22	76	22.5 %

मुगल बादशाह शाहजहाँ (1628–1658 ई.)

1.	5000 व उससे अधिक	49	12	37	24.5 %
2.	3000 से 4500 तक	88	22	66	25.6 %
3.	1000 से 2700 तक	300	64	236	21.3 %
	कुल योग	437	98	339	22.4 %

मुगल बादशाह औरंगजेब प्रथम काल (1658–1678 ई.)

1.	5000 व उसके ऊपर	51	10	41	19.6 %
2.	3000 से 4500 तक	90	18	72	20.0 %
3.	1000 से 2700 तक	345	77	268	22.3 %
	कुल	456	105	381	21.6 %

मुगल बादशाह औरंगजेब का द्वितीय कार्यकाल (1679–1707 ई.)

1.	5000 व उसके ऊपर	79	26	53	32.9 %
2.	3000 से 4500 तक	133	36	97	27.1 %
3.	1000 से 2700 तक	363	120	243	33.1 %
	कुल योग	**575**	**182**	**393**	**31.6 %**

डॉ. अतहर अली की उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह पूर्वत स्पष्ट हो जाता है कि औरंगजेब के पूर्व के प्रमुख मुगल सम्राट अकबर तथा शाहजहाँ की अपेक्षाकृति औरंगजेब के काल में हिन्दू मनसबदारों की संख्या में वृद्धि हुई केवल निम्न मनसब में यह वृद्धि नही हुई बल्कि उच्च मनसब आंशिक वृद्धि हुई। इस प्रकार औरंगजेब पर कतियम इतिहासकारों द्वारा लगाये यह आरोप भी खंडित हो जाते हैं, कि औरंगजेब एक कट्टर मुस्लिम शासक था।

औरंगजेब के 1,000 जात व उससे अधिक के मनसबदारों की सूची

1658-1678 के वे मनसबदार जो 1,000 जात और उससे अधिक के मनसब पर पहुँचे

क्रम	नाम व उपाधि	उक्तकाल में सर्वोच्च मनसब	जन्म भूमि	वर्ग	उपवर्ग (राजपूत, मराठा अफगान जमींदार आदि)	सेवा में पिता या अन्य निकटतम सम्बन्धी	स्रोत
1	2	3	4	5	6	7	8
अ- 5,000 और उससे अधिक के मनसबदार							
1.	मिर्जा राजा जयसिंह कछवाहा	7,000/7,000 (2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	आ. 907, से, डा. औ. 52, मा. उ. III, 568-77
2.	महाराजा जसवन्तसिंह राठौर	7,000/7,000 (5,000x2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	आ. 331-32, मा. उ. III. 599-604.
3.	राणा राजसिंह	6,000/6,000 (1000X2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	आ. 194, मा. उ. II, 206-28
4.	शम्भाजी	6,000/6,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	मा.आ.1429 जामी-अल-इंसा, 76अ।
5.	कजनायक	6,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	दक्खनी जमींदार	---	दिलकुशा 59ब।

1	2	3	4	5	6	7	8
6.	राजा रामसिंह कछवाहा	5,000/5,000 (3,000× 2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	पिता	अख. 19 रबी-उस-सानी, 12वाँ रा.वर्ष, म. उ.II 301-303
7.	मालोजी दक्खनी	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	आ.427; मा.उ. III, 520-24
8.	राजा जयसिंह सिसौदिया	5,000/5,000 (500× 2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	पिता	आ.427; ता.मु. 1083हि.; मा.उ. II, 297-301
9.	बहराम	5,000/1,000	तूरान	तूरानी	-	---	मा. उ. I, 431-44, आ. 114
10.	चम्पत बुन्देल	5,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	---	दिलकुशा 15 ब
3,000 से 4,500 तक के मनसबदार							
11.	रायसिंह राठौर	4,000/4,00	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	पिता	आ. 288, अ. मा. तै. 124 अ. मा. उ. II, 235-36
12.	इन्दरमन धँडेरा	4,000/3,000 (500X2-3 अस्या)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	---	आ. 43, 339, मा. उ. II, 265-66
13.	जादौंराय दक्खनी	4,000/2,500	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा जमींदार	पितामह	आ. 161

14	राव भाव सिंह हाड़ा	4,000/2,500	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपुत जमींदार	पिता	आ. 267, मा. उ. II, 305-307, अ. मा. तै. 123 ब
ब- 1679-1707 के वे मनसबदार जो 1,000 जात और उससे अधिक के मनसब पर पहुँचे							
15.	जमशेद खाँ बीजापुर	7,000/7,000 (1,200X2-3)	हिन्दुस्तान	भारतीय	दक्खनी	---	अख. 20 शाबान, 37 वां रा. वर्ष, ज. आ. 164 ब, कामवर 301, ता. मु. 17
19.	राजा शाहू	7,000/7,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	से. डा. औ. 215, मा. आ. 332, रकायम-ए-करायम 23 ब. अ. मा. तै. 121 ब, कामवार 281 ब. मा. उ. II, 342-58
17.	राणाराज सिंह	6,000/6,000 (2,000 X 2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	ता. मु. 1092 हि., मा. उ. II, 206-208, अ. मा. तै. 122 ब

1	2	3	4	5	6	7	8
18.	कान्हू जी शिरके	6,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	दफ्तर-ए-दावानी, संख्या 2980, मा. आ. 220, 495, कामवार 271 अ. अ. मा. तै. 122 अ।
19.	मानसिंह पुत्र शम्भाजी	6,000/1,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	कामवार 281 ब. से. डा. औ. 216।
20.	रायभान	6,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा जमींदार	---	दिलकुशा 145 ब।
21.	अच्छपट नायर	6,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	दक्खनी	---	दिलकुशा 112 ब।
22.	राणा जयसिंह	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	मा. आ. 212, अ. मा. तै. 122 ब, मा. उ. II, 208।
23.	राणा अमरसिंह द्वितीय	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	वीर विनोद III, 745, 749, 751, मा, आ. 404।
24.	परया नायक, या पिदिया नायक	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	दक्खनी जमींदार	---	दिलकुशा 95 ब, मा. आ. 513, खाफी खां II, 370।

1	2	3	4	5	6	7	8
25.	मालूजी	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	से. डा. औ. 187, 206।
26.	जगन नायक	5,000/5,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	दक्खनी जमींदार	---	से. डा. औ. 205, मामूरी 205 ब।
27.	भाकू बंजारा	5,000/4,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	-	---	मा. आ. 393, अ. मा. तै. 122 ब।
28.	नागोजी माने, या नाकोजी	5,000/4,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	अख. 8 मुहर्रम, 44 वां रा. वर्ष, दिलकुशा 122 अ।
29.	महराम खाँ	5,000/4,000	-	-	-	---	से. डा. औ. 219।
30.	बहराजी पाँधरे	5,000/3,000 (500X2-3 अस्या)	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	अख. 1 जमादि-उस-सानी, 38 वाँ रा. वर्ष।
31.	सुमेशंकर	5,000/3,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा जमींदार	---	ईसरदास 165 ब, मामूरी 206 अ. खाफी खाँ II, 532।
32.	परसराम	5,000/3,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	मामूरी 156 ब।
33.	खेवजी	5,000/2,500	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	वाकिया पेपर्स जयपुर, 17 जिकाद 47 वाँ रा. वर्ष।

1	2	3	4	5	6	7	8
34.	सुजानराव, या शिवभान राव	5,000/2,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	मा. आ. 421, कामवार 291 अ, अ मा. तै. 123 अ।
35.	राजा भीमसिंह	5,000/2,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	ता. मु. 6, से. डा. औ. 170, ज. आ. 166 अ. मा. आ. 212, 369।
36.	राजाजी जनार्दन	5,000/2,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	दफ्तर-ए-दीवानी, संख्या 2978।
37.	नाथूजी दक्खनी	5,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	अ. मा. तै. 123 अ.।
38.	पाम नायक, दिपिया नायक का चाचा	5,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	जमींदार	---	दिलकुशा 95 ब. ब. स. 750, ता. मु. 1099 हि.
3,000 से 4,500 तक के मनसबदार							
39.	यशवन्तराव, या बसन्तराव दक्खनी	4,000/4,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	मा. आ. 219, कामवार 271 अ. अ. मा. तै. 123 ब।
40.	माहदाजी नायक	4,000/4,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	-	पिता	से. डा. औ. 134।

41.	नेकनियत खाँ का भाई	4,000/4,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	-	भाई	अख. 25 जमादि-उस-सानी, 44 वाँ
42.	राव भावसिंह हाड़ा	4,000/2,500	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	आ. 267, अ. मा. तै. 123 ब, गहलोत, राजपूताने का इतिहास 74, कामवार 272 ब।
43.	राजा छत्रसाल बुन्देल	4,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	कामवार 291, दलिकुशा 157 ब, 158 अ. मा. उ. II, 510-12।
44.	बाजी चहान डफले, पुत्र सत्वाजी डफले	4,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा जमींदार	पिता	अखबारात, सरकार द्वारा उद्धरित, हिस्ट्र ऑफ औरंगजेब भाग 5, 209।
45.	सियाज	4,000/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	से. डा. औ. 128, शर्मा, द. रिलीजस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्परर्स 178।

1	2	3	4	5	6	7	8
46.	अनूप सिंह पुत्र रावकरन भरतिया	3,500/2,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	कामवार 277 ब, मा. उ. II, 289-91, अ. मा. तै. 124 ब।
47.	जकिया देशमुख	3,500/2,000	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा जमींदार	---	मामूरी 200 अ. मा. आ. 513, कामवार 302 अ।
48.	इन्दर सिंह पुत्र राय सिंह	3,500/2,000 (300X2-3 अस्पा)	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	पिता	दिलकुशा 76 अ, मा. आ. 175, मा. उ. II, 136, त. उ. (हबीबगंज कलेक्शन) 206 अ।
49.	उदतसिंह बुन्देला, ओरछा का राजा	3,500/1,600	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	---	अख. 25 रबी-उल-अव्वल, 38 वाँ रा. वर्ष, मा. आ. 350 कामवार 282 अ, 297 ब, अ. मा. तै 124 ब।
50.	उदयसिंह बुन्देल	3,500/1,500	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	---	मा. उ. II, 294, मा. आ. 473।
51.	तरसूजी या परसूजी	3,500/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	मराठा	---	अ. माा. तै. 125 ब।

1	2	3	4	5	6	7	8
52.	भरत सिंह शाहपुर का राजा	3,500/-	हिन्दुस्तान	भारतीय	राजपूत जमींदार	---	जे.एस. गहलोत, राजपूताना का इतिहास, 558।
53.	ताकूजी	3,000/3,000	हिन्दुस्तान	भारातीय	मराठा	---	अख. 10 जिकदा, 38वाँ रा. वर्ष (1694 में मुगल नौकरी छोड़ दी)।

पंचम अध्याय

पंचम – अध्याय

औरंगजेब का हिन्दू रियासतों के साथ संघर्ष

मार्च सन् 1657 में शिवाजी के दक्षिण दो मराठा सेनानायकों ने मुगलों ने मुगलों के प्रदेश में लूटमार की और "वे अहमदनगर" के फाटकों तक जा पहुँचा, जो इस समय मुगल अधीनस्थ दक्षिण भाग में बहुत प्रसिद्ध था।" शिवाजी स्वयं चुपके से जुनार नगर में घुस गये वहाँ के पहरेदारों को मार डाला, और तीन लाख हूण तथा 200 घोड़े ले गये। औरंगजेब ने नसीरी खाँ को शिवाजी का पीछा करने के लिए रवाना किया गया तथा मराठों को नष्ट भ्रष्ट करने का आदेश दिया।[1] मराठों ने अहमदनगर से लगे हुए चमरगुण्डा और रेसिन जिलों पर धावा बोल दिया। इस समय शिवाजी जुन्नर पर स्वयं धावा बोलकर तीन लाख हूण लूट ले गये। औरंगजेब ने मराठा आक्रमणकारियों को खदेड़ने के लिए बाध्य किया और उसे दक्षिणी मुगल साम्राज्य की दक्षिणी पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए कदम उठाना पड़ा जब बीजापुर में मुगलों से सन्धि कर ली तब शिवाजी भी झुक गये। किन्तु औरंगजेब ने ह्दय से क्षमा नही किया।[2] फरवरी 1672 ई. में खानदेश और गुजरात की सीमा पर सल्हर में शिवाजी के पेशवा मोरो त्रिमल पिंगले के नेतृत्व में मराठा सैनिकों ने दक्कन के मुगल

---

[1] एस.आर शर्मा, : भारत में मुगल साम्राज्य पूर्वोद्धत पृष्ठ संख्या 358

[2] आर्शीवादलाल श्रीवास्तव, मुगल कालीन भारत, पूर्वोद्धत पृष्ठ संख्या 348

सूबेदार दिलेर खान, गुजरात के सूबेदार बहादुर खान एवं अन्य कई प्रमुख मुगल कमाण्डरों के नेतृत्व में शाही सेनाओं को एक जमी हुई लड़ाई में बहुत बुरी तरह परास्त किया। इस ऐतिहासिक युद्ध में दोनों पक्षों से अनगिनत घोड़े, हाथी एवं ऊँट समेत 10 हजार लोग कत्ल हुए। युद्ध भूमि में खून की नदियां बह गयी। लूट के रूप में छः हजार घोड़े उतने ही ऊँट 125 हाथी और शिविर में पड़े खजाने एवं हीरे जवाहरात समेत मुगलों के सारे साजे–सासमान मराठों के हस्तगत हुए।[3] राजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात मुगल सम्राट औरंगजेब ने जोधपुर राज्य को खालसा में सम्मिलित करके वहाँ मुगल फौजदार नियुक्त कर दिया।[4] अजीत सिंह के साथ राठौरों को यह विश्वास हो चला कि अब सम्भवतः बादशाह उसे मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। अतः वे उसे लेकर दिल्ली पहुँचे।[5] राठौरों की जब इच्छा पूरी नही हो सकी तो उन्होंने अजीत सिंह को दिल्ली से मारवाड़ ले आने की गुप्त योजना बनायी। औरंगजेब के विरोधी प्रयत्नों के बावजूद राठौर सामन्त अपनी योजनाओं के क्रियान्वित करने में सफल हुए और अजीत सिंह को किसी तरह मारवाड ले पहुँचे।[6] मारवाड़ पर मुगलों के अधिकार के कारण जब अजीत सिंह की सुरक्षा राठौर के लिए जटिल समस्या बन गयी तो अन्य कोई उपाय न देखकर उन्होंने

---

[3] जी.एस. देसाई मराठों का नवीन इतिहास, भाग 4, दिल्ली, 1976 पृष्ठ 196-197
[4] मुंशी देवी प्रसाद, औरगजेब नामा, भाग 2, पृष्ठ संख्या 80
[5] कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, संपादक जे.ए. बायले, कैम्ब्रिज, 1937 भाग 4, पृष्ठ संख्या 248
[6] रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, जोधपुर, 1968-69, पृष्ठ संख्या 248-50

अजीत सिंह को संरक्षण देने के लिए मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से प्रार्थना की थी।[7] बहब्बुर खाँ ने राजपूतों को दबाकर अजमेर के सीमावर्ती क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिए दीनदार खाँ, कायम खानी तथा मुगल खाँ के नेतृत्व में 7000 घुड़सवारों को उधार भेजा। मुगल सेना के आगमन के समाचार को पाकर राणा के एक सैन्य दल ने जफर नगर पर आक्रमण कर उनका मुगल सेना से सम्बन्ध तोड़ दिया।[8] गोरिल्ला युद्ध का संचालन करते हुए महाराणा राजसिंह पहाड़ों से निकलकर राजकुमार भीमसिंह के साथ गोगुन्दा से चलकर बदनोर के समीप जा पहुंचे। उन्होंने एक आक्रमण द्वारा शहजाद अकबर को हानि पहुँचाई और पुनः पहाड़ों में लौट गये। महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब की राजपूत विरोधी नीति तथा मारवाड़ और मेवाड़ के पारस्परिक सम्बन्धों को दृष्टिगत रखते हुए अजीत सिंह की सुरक्षा का दायित्व अपने ऊपर ले लिया।[9] अजीत सिंह के पालन पोषण के लिए बाहर गाँवों सहित केलवा ग्राम का पट्टा करके पोषण के लिए स्वीकृत किया गया।[10] महाराणा राजसिंह ने राठौर सामन्तों को आस्वत किया कि मेवाड़ तथा मारवाड़ का शक्ति संगठन हर प्रकार से मुगल संकट का सामना करने में सक्षम रहेगा।[11] राजपूतों के दल ने

---

[7] राज विलास, विलास 9 पद्य, पृष्ठ संख्या 180-89
[8] अखबारात औरंगजेब वर्ष 23, भाग 3, पृष्ठ संख्या 193
[9] वाक्या-ए-राजस्थान पृष्ठ संख्या 290-293, द्वारा पर्सिमन सोर्सेज आफ इण्डियन हिस्ट्री, पूर्वोद्धत, में उद्धत
[10] राज विलास, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 180-206
[11] वीर विनोद, भाग 2, पृष्ठ संख्या 463

मालवा से अकबर की सेना के लिए आ रही रसद सामग्री के 10,000 बैलों का अन्न लूट लिया और कुँवर भीमसिंह के क्रमिक आक्रमणों से कई मुगल थानों को नष्ट कर दिया।[12] मुगल सम्राट ऐसी स्थिति से चिन्तित होकर मांडलगढ़ और गंगरार के किले की उचित व्यवस्था करने के लिए वहाँ और अधिक सैनिक तैनात कर दिये गये।[13] दीर्घ कालीन संघर्ष से कोई लाभ न देखकर महाराणा ने हसन अली खाँ तथा बहब्बुर खाँ को युद्ध बन्द कर शान्ति सन्धि करने हेतु सन्देश भेजा। उक्त दोनों सेनानायकों ने मेवाड़ अभियान के कष्टों को दृष्टिगत रखकर सन्धि करने हेतु सम्राट से स्वीकृति चाहिए। किन्तु मेवाड़ की पूर्ण विजय के अभिलाषी औरंगजेब ने किसी प्रकार की सन्धि न कर अपने सेनापतियों को शीघ्रातिशीघ्र मेवाड़ विजय करने का आदेश दिया।[14] औरंगजेब के दूषित मन्तव्य एवं अजीत सिंह को मेवाड़ में संरक्षण देने के परिणामस्वरूप अपने ऊपर आने वाली भावी संकट को दृष्टिगत रखते हुए महाराणा राजसिंह ने राठौर के साथ एक सैनिक समझौता किया।[15] राठौर और सिसोदिया संगठन के समझौते के अनुसार यह निश्चित किया गया कि मारवाड़ के राणा अजीत सिंह को संरक्षण एवं मान्यता प्रदान कर उसके पैतृक राज्य, मारवाड़ पर अधिकार करने में सहायता देंगे। मेवाड़ पर मुगल आक्रंमण होने पर राठौर सामन्त सैनिक

---

[12] गौरीशंकर हरिश्चन्द्र ओझा, उदयपुर का इतिहास, जयपुर, 1952, पृष्ठ संख्या 563

[13] अरवबरात, औरगजेब वर्ष 23, भाग 3, पृष्ठ संख्या 362-363,369 (सीतामऊ में संग्रहीत)

[14] वही

[15] जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग 2, पृष्ठ संख्या 56-57

सहयोग देगें तथा दोनों राज्य पारस्परिक सहयोग से संकट से निपटने का प्रयास करेंगें।[16] राठौर तथा सिसोदिया संगठन एवं महाराणा राजसिंह द्वारा अजीत सिंह को संरक्षण देने के समाचार को पाकर औरंगजेब बहुत चिन्तित हुआ। उसने महाराणा को फरमान भेजकर अजीत सिंह को तत्काल मुगल सेवा में भेजने का आदेश दिया।[17] महाराणा राजसिंह ने प्रत्युत्ता में मुगल सम्राट औरंगजेब सूचित किया कि अजीत सिंह कुछ काल के लिए मेवाड़ में रहकर वापस लौट गया।[18] राजपूतों की गुरिल्ला युद्ध नीति तथा पहाड़ी युद्धों से भयभीत मुगल सैनिक मेवाड़ की भीतरी भागों में प्रविष्टि होने से मना करने लगे सैनिकों के विरोध से परेशान शहजादा अकबर तथा सेनानायक हसन अली खाँ ने सम्राट से अनुरोध किया कि इतनी मामूली सेना से पहाड़ों में छिपें। औरंगजेब भलीभांति समझता था कि राजपूतों के साथ होने वाले संघर्ष का भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। अतः उसने मेवाड़ के साथ निर्णायक युद्ध का नेतृत्व एवं निर्देश करने का निश्चय किया और 3 सितम्बर 1679 ई. को एक विशाल सेना के साथ दिल्ली की ओर चल पड़ा[19] बादशाह ने शहजादा अकबर को अग्रिम दस्ते की प्रभावी बनाकर अजमेर की तरफ रवाना कर दिया और स्वयं भी जल्दी–जल्दी कूच करता

[16] जोधपुर राज्य की ख्यात भाग 2, पृष्ठ संख्या 56-57
[17] राज विलास : विलास 9, पद्य 6
[18] अखबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 22-36 (सीतामऊ में संग्रहीत)
[19] मुंशी देवी प्रसाद, औरंगजेब नामा भाग 2, पृष्ठ संख्या 87

हुआ 16 सितम्बर 1679 को अजमेर जा पहुँचा।[20] अजमेर को केन्द्र बनाकर मेवाड़ विजय प्राप्त करने की योजना तैयार की तथा मुगल सेना की शक्ति बढ़ाने के लिए शहजादा आजम तथा शहजादा मुअज्जम को भी अपनी–अपनी सेनाओं के साथ अजमेर बुला लिया।[21] मुगल राजपूत युद्ध के लिए निर्णायक संघ के लिए समस्त साधन सुविधाएं जुटाकर औरंगजेब ने मेवाड़ राज्य के सीमावर्ती भागों मुख्यतः माण्डल एवं उसके निकटवंर्ती प्रदेश पर अधिकार करने के लिए 26 अक्टूबर 1679 को तहब्बुर खाँ को अजमेर से रवाना किया।[22] 7000 घुड़सवारों के साथ हसन अली मेवाड़ में मुगल सेना का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आगे बढ़ने का आदेश दिया।[23] औरंगजेब ने हिन्दू सूबों मुगल सूबों की सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए अहमदाबाद के सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ को मेवाड़ और अहमदाबाद की सीमा पर इन्दौर के फौजदार सैयद हुसैन खाँ को मेवाड़ की सैनिक चौकी कनेरी की ओर से सतर्क रहने का आदेश दिया।[24] मुगलों की तैयारियों को देख महाराणा राजसिंह भी शान्त नही बैठा था। वह भी मुगल आक्रान्ताओं का सशक्त मुकाबला करने के लिए आवश्यक तैयारी में व्यस्त था।[25] मुगल सेनाओं का दृढ़तापूर्वक सामना करने तथा युद्धनीति, युद्ध स्थल, युद्ध

[20] डा. रघुवीर सिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, जयपुर,1951 पृष्ठ संख्या 222-237
[21] टॉड, भाग 1, पृष्ठ संख्या 444
[22] मासिर-ए-आलमगिरी (अनु. सरकार), पृष्ठ संख्या 113-116
[23] मुंशी देवी प्रसाद, औरंगजेबनामा भाग 2, पृष्ठ संख्या 89-92
[24] अखबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 128
[25] डा. जीएन शर्मा : मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्पेरर्स, आगरा, 1954 पृष्ठ संख्या 169-170

कार्यक्रम एवं सम्पूर्ण युद्ध योजना के निर्धारण के लिए अपने बन्धु बन्धुओं, सामन्तों, अधिकारियों पुरोहितों गरीबदास तथा मारवाड़ के सामन्त राठौर दुर्गादास व सोनिंग के साथ विचार विमर्श किया।[26] डूगँरपुर के रावल यशकरण और अबु–मलिक अजीत ने भी इस युद्ध मन्त्रणा में भाग लिया। गहन विचार मंथन के पश्चात पुरोहित गरीब दास द्वारा प्रस्तावित 'गुरिल्ला नीति' की योजना सर्वसम्मानित से स्वीकार की गयी और यह निश्चित किया गया कि मुगल सेना का खुला मैदान में सामना न करके पहाड़ों में रहते हुए उपयुक्त अवसर देखकर समय–समय पर मुगल खेमें पर आक्रमण किया जाय और उनकी रसद सामग्री, सैनिक साज–सामान आदि लूटकर उन्हें परेशान किया जाय।[27] शत्रुपक्ष की शान्ति को विभाजित करके संघर्ष करने की दृष्टि से राणा अपनी सेना को चार भागों में विभाजित किया–

1. राजकुमार जयसिंह को 13000 घुड़सवारों के सैन्य बल के साथ गिरवाकर पहाड़ों में नियुक्त किया गया।
2. राजपूतों का द्वितीय भाग राजकुमार भीम सिंह के नेतृत्व में गुजरात की ओर से सुरक्षा एवं रसद सामग्री के निर्बाध आयात हेतु नियत किया गया।

[26] राज विलास, विलास 10, पद्य 54-67
[27] ओझा : उदयपुर पूर्वोद्धत, भाग 2, पृष्ठ संख्या 557-58

3. महाराणा ने अपने दीवान दयालशाह को सेना के तृतीय भाग के साथ मालवा की ओर से सुझाव एवं रसद सामग्री के निर्बाध आयात हेतु नियत किया।

4. सेना के चतुर्थ भाग को दो भागों में विभा जित करके उन्हें राठौर साँवलदास तथा राठौर गोपीनाथ के नेतृत्व में क्रमशः बदनोर तथा देसूरी की नाल की ओर से सुरक्षा हेतु नियुक्त किया गया।

उक्त व्यवस्था के अतिरिक्त मेवाड़ के सभी महत्वपूर्ण पहाड़ी स्थानों पर सैनिक टुकड़ियाँ नियुक्त की गयी। औरंगजेब के आदेशानुसार तहब्बुर खाँ 27 अक्टूबर 1679 ई. को माडल आदि परगनों पर अधिकार करने हेतु अग्रसर हुआ।[28] अजमेर सूबे के सीमावर्ती इलाकों के जिन इलाकों के नागरिकों ने महाराणा के निर्देशानुसार बस्तियाँ खाली नही की थी वे भी शाही सेना के आगमन की सूचना पाकर वहाँ से चले गये।[29] तहब्बुर खाँ ने माँडल पर अधिकार कर लिया। उसने वहाँ पर प्रशासनिक व्यवस्था कायम की तथा मुगल सैनिकों को राजपूतों के किसी भी प्रकार के विरोध को शक्ति के साथ कुचलने का आदेश दिया।[30] महाराणा की सेना के विभिन्न भाग भी इस समय तक सक्रिय हो चुके थे। बदनोर की तरफ

[28] शाहनवाज खांन मसिर-उल-उमरा, (अनु. ब्रजरत्नदास, प्रकाशकः विब. इण्डिका), भाग 4, पृष्ठ संख्या 153-58
[29] वाक्या-ए-रणथम्भौर (दृ.प्र.) पृष्ठ संख्या 375,376, 386-387,409
[30] शाहनवाज खांन मासिर-उल-उमरा (अनु. ब्रजरत्नदास, प्रकाशकः बिब. इण्डिका), भाग 2, पृष्ठ संख्या 152-153

करके पुर मॉडल बदनोर के निकटवर्ती क्षेत्रों में लूटपाट एवं आतंकपूर्ण कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। विजय सिंह, फतह सिंह, अनव सिंह आदि सामन्तों ने माडल परगने के पीथावास ग्राम को लूटकर अस्सी हजार रूपये की सम्पत्ति वसूल की।[31] दयालदास जैन ने एक हजार घुड़सवारों तथा पाँच हजार पैदल सैनिकों के साथ भेजा और रायल पर आक्रमण किया तथा लूटमार एवं आगजनी कर वहाँ के निवासियों को हानि पहुँचाई और उसका मुकाबला करने जब मुगल सेना पहुँची तो वह पहाड़ों की तरफ वापस लौट गया।[32] दयाल ने बूँद के हाडा के राजपूतों की एक सैनिक टुकड़ी तैयार करके अपनी सेना को मजबूत किया और फिर आगे बढ़कर सवार धावल नेनवाओं आदि स्थनों को लेटा तथा बकलाना के शही अधिकारियों की रसद सामग्री छीन ली गयी और वहाँ से पुनः मेवाड़ की ओर लौटते हुए उसने रणथम्मौर सादडी तथा उसके आस–पास के स्थानों पर भी लूट–पाट की। परिणामतः उस ओर चारों तरफ दयाल दास के नाम का आतंक फैल गया।[33] मुगल सम्राट औरंगजेब के निर्देशानुसार शाही सेनाध्यक्ष हसन–अली एवं अब्दुल्ला बेग युद्ध के लिए 7000 घुड़सवारों के

[31] वाक्या-ए-रणथम्मौर (ह.प.) पृष्ठ संख्या 233
[32] वही
[33] वही पृष्ठ संख्या 411-12

सिंह जिनका नाम भूल से आदेश मे नही लिखा गया था वहीं चौकी पर जमा रहा। उसने अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ मुगल सेना का मार्ग अवरूद्ध करने का असफल प्रयास किया वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ अपने सैनिकों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ।[35] औरंगजेब ने मेवाड़ अभियान को विधिवत् संचालित करने तथा मुगलों की अबाध बनाए रखने के लिए 30 नवम्बर 1679 ई. को अजमेर से मेवाड़ की ओर प्रस्थान किया।[36] विशाल यवन सेना के साथ मंथरगति से चलता हुआ औरंगजेब जब मेवाड़ की सीमा में प्रविष्ट हुआ तब 16 दिसम्बर 1679 ई. को माँडल में, शहजादा आजम भी उससे आ मिला।[37] माँछल से उदयपुर की ओर बढ़ते समय बादशाह ने मेवाड़ के समस्त उत्तरी भूभाग को जीतकर माँडल, पुर, लदनोर, चित्तौड़, गढ़, माडलगढ़, बैरक, भैसरोडगढ़, नीमच, जीरज, उठाला, मांरोप पासन, राजनगर, लाखेला, मथुरा नगरी गंगारार बेगूँ वनेडा तथा बिजोलिया आदि स्थानों पर सैनिक चौकिया स्थापित कर दी।[38]

---

[34] अखाबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 2, पृष्ठ संख्या 110 (सीतामऊ में संग्रहीत)
[35] वीरविनोद, भाग 2, पृष्ठ संख्या 470
[36] मसाकी मुस्तैद खान, मासिर-ए-आलमगिरी अनु. जदुनाथ, कलकत्ता, 1947, पृष्ठ संख्या 43
[37] अखबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 779
[38] शाहपुर राज्य की ख्यात (ह.प्र.), पत्र 56

युद्ध के दूसरे मोर्च राजनगर की ओर मेवाड़ के माण्यवस्थ भाग में प्रविष्टि होकर हसन अली खाँ उदयपुर की ओर आगे बढ़ा राह से अनभिा होने के कारण वह श्रृँखलाओं की भूल–भुलैया में फँस गया और भटकते हुए झाड़ोल जा पहुँचा। हसन अली का और आगे बढ़ना नैनवाड़ा में छिपे राणा और उसके परिवार के लिए संकटपूर्ण हो सका था। अतः उसे आगे से बढ़ने से रोकने के लिए रतन सिंह, केशरी सिंह तथा नवल सिंह आदि सामन्तों ने यवन सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि संघर्ष में राजपूतों ने बड़ी वीरता दिखाई किन्तु सैनिकों की अधिकता का लाभ हसनअली को मिला। उसने राजपूत दल को मार भगाया और उनका माल लूटकर उदयपुर की ओर लौट पड़ा।[40] सम्राट औरंगजेब उदयपुर की ओर बढ़ता हुआ 20 दिसम्बर 1679 ई. को खेड़ा नामक स्थान पर जा ठहरा। शीघ्रातिशीघ्र देवारी पर अधिकार करने की दृष्टि से आगे बढ़कर उसने 23 दिसम्बर 1679 ई. को देवारी के दरवाजे पर समीप राजावास नामक गांव में मुकाम किया और युद्ध की तैयारियां पूर्ण करके 4 जनवरी 1680 ई. को देवारी पर आक्रमण कर दिया।[41] देवारी के नाके पर नियुक्त राजपूत

---

[39] अखबारात, औरगजेब वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 182-183

[40] राज विलास : विलास 13 ए पद्य, पृष्ठ संख्या 27-35

[41] अरवबारात, औरगजेब वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 229,240,243

विरोध किया। विशाल यवन सेना के समक्ष संख्या में नगण्य मात्र होने पर भी अद्भुत वीरता और पराक्रम का प्रदर्शन कर उन्होंने अनेक मुगल सैनिकों को मार गिराया। राजपूत योद्धा मुगलों के सामने अधिक देर तक टिक नही सके और एक–एक कर वीरगति को प्राप्त हुए। औरंगजेब ने देवारी पर अधिकार कर लिया और वहाँ बने दरवाजे को तुड़वा कर मुगल चौकी की स्थापना की।[42] देवारी के इस छोटे से संघर्ष में राठौर गोर सिंह, कुपावत, उग्र सिंह तथा उदय सिंह, सांवल दासोत आदि वीरगति को प्राप्त हुए और महासिंह सारंग देवोत बुरी तरह घायल हुआ।[43] औरंगजेब 24 जनवरी 1680 ई. को उस ओर चढ़ चला। वहाँ पहुँचने पर पहाड़ों में छिपे राजपूत सैन्यदल ने उस पर आक्रमण कर दिया। खाफी खाँ के अनुसार उदय सागर पर लगभग 25000 राजपूतों ने मुगलों के साथ युद्ध किया तथा मुगल सेना का बहुत सा सामान लूटकर वापस पहाड़ों की ओर भाग गये। राजपूतों के इस आकस्मिक आक्रमण और उससे हुए नुकसानों ने बादशाह को वापस चित्तौड़ की तरफ लौटने हेतु बाध्य कर दिया।[44] चिन्तित बादशाह को जब शहाबुद्दीन ने हसन अली खाँ के पहाड़ों से निकलकर उदयपुर लौटने का समाचार दिया तो प्रसन्न होकर उसने उसे

---

[42] मासिर-ए-आलमगिरी (अनु. सरकार) पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 114
[43] ओझा, उदयपुर, भाग 2, पूर्वोद्धत पृष्ठ संख्या 559
[44] इलियट और डाउसन, भाग 7, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ संख्या 299

सेवा में उपस्थित होकर राजपूत सेना से लूटी हुई सामग्री 100 घोड़, 500 सैनिक तम्बुओं का सामान और एक तोप उसे भेंट की।[46] रूहेल्ला खाँ तथा इक्काताज खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना के एक अन्य दल ने उदयपुर नगर में प्रवेश किया। उसने वीरान राजधानी के विशाल भवनों को ध्वस्त किया, हरे–भरे खेतों तथा बाग बगीचों में आग लगा दी और आस–पास के क्षेत्रों में छिपे स्त्री पुरूष तथा बालकों को जो भी उसकी पकड़ में आये कत्ल कर दिया। नगर के विशाल जगन्नथ मन्दिर तथा अन्य 173 मन्दिरों को तोड़–फोड़ करने के पश्चात वे दोनों वापस लौट गये।[47] मेवाड़ में मुगल सेना को आशानुकूल सफलता नही मिली, उधर मारवाड़ में भी राठौर सामन्त अवसर पाकर समयान्तर में मुगल चौकियों पर आक्रमण करके हानि पहुँचा रहे थे। अतः मेवाड़ में लड़े जा रहे इस युद्ध के लम्बे समय तक चलने रहने की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखकर सम्राट ने अजमेर में रहकर तो युद्ध के संचालन का निश्चय किया।[48] सम्राट उदयपुर से वापस लौटते हुए 22 फरवरी, 1986 ई. को चित्तौड़ पहुँचा और किले के अन्दर स्थित 66 देवालयों को नष्ट करवा दिया।[49]

---

[45] ईश्वरदास नागर फ़ुतुहात-ए-आलमगिरी (अनु. सरकार), पृष्ठ संख्या 114-116
[46] अरवबारात, औरंगजेब, वर्ष 23, भाग 1, पृष्ठ संख्या 14-15
[47] मासिर-ए-आलमगिरी (अनु. सरकार) पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 114-116
[48] मुंशी देवी प्रसाद, औरगजेवनामा भाग 2, पृष्ठ संख्या 94-95
[49] अरवबारात, औरंगजेब, वर्ष 23 भाग 2, पृष्ठ संख्या 1

सम्राट ने आवागमन की सुविधा तथा रसद–सामग्री के निर्बाधा आयात के लिए मुगल चौकियों की व्यवस्था को सुदृढ़ किया।[50] तदनन्तर महासिंह भदेरियों को चित्तौड़ का गुर्जबरदार नियुक्त कर वह 6 मार्च 1680 ई. को अजमेर की ओर लौट गया।[51] मेवाड़ तथा मारवाड़ के मध्य स्थित आरावली पर्वत–श्रृँखला की उतुंग चोटियों तथा झालोर, सलूम्बर चावण्ड आदि के पहाड़ी क्षेत्रों में छिपी राजपूत सेना को, मुगल सेना कोई विशेष हानि नही पहुँचा सकी। इसके विपरीत राजपूत सैनिक यदा–कदा अवसर पाकर यवन सेना पर आक्रमण कर उसे नुकसान पहुँचाते और वापस पहाड़ों की शरण में चले जाते थे। राजपूतों ने गुरिल्ला युद्धनीति का अवलम्बन करके मुगल सेना को आतंकित कर दिया। फलतः संख्या में अधिक होने पर भी शाही सेना कोई आशातीत सफलता नही अर्जित कर सकी।[52] औरंगजेब के अजमेर लौटने के समाचार को पाकर साँवलदास पुनः बदनोर क्षेत्र में सक्रिय हो गया।[53] उसने अजमेर चित्तौड़ के मध्य सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।[54] साँवलदास खुले संघर्ष को टालने की दृष्टि से पुनः पहाड़ों में लौट आया। मुकर्रम खाँ ने क्षेत्र में शान्ति स्थापित कर रायलाँ के निवासियों को सुरक्षा का पूरा–पूरा आश्वासन दिया और वापस

---

[50] अखबारात, औरंगजेब, वर्ष 23, भाग 2 पृ. 131.135
[51] मुशी देवी प्रसाद, औरंगजेबनामा, भाग 2, पृष्ठ 94-97
[52] जुदनाथ सरकारः औरंगजेब, भाग 3, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 344-347
[53] वाक्या-ए-रणथम्भौर (दृ.प्र.) पृष्ठ 445
[54] टाड, एनल्स, पूर्वोद्धत, पृ. 445

फैलाना आरम्भ कर दिया। बदनोर क्षेत्र में कार्यरत् सांवलदास ने भाजा, रायला, केरडा, बुदला, धौरा, मीरन काकर, लुसी आदि गाँवों में लूटमार करके चारों तरफ आतंक फैला दिया।[57] सम्राट ने पृथ्वी सिंह को बेगूँ तथा बिजोलियाँ, मानसिंह को माण्डल, रघुनाथ सिंह को कन्नाली तथा रायसिंह को माण्डलगढ़ के नाकों पर नियुक्त करके सुरक्षा प्रयत्नों को प्रोत्साहन दिया।[58] औरंगजेब ने रसद आदि के निर्बाध आदि के आगमन के लिए चित्तौड़ और मन्दसौर के मध्य 6 माण्डल तथा चित्तौड़गढ़ के मध्य 7 तथा माण्डल और बदनोर के मध्य पाँच युद्ध चौकियों की स्थापना की।[59] राजपूतों के आतंक को समाप्त करने तथा मेवाड़ युद्ध में सफलता अर्जित करने के लिए शहजादा अकबर के अधीनस्थ कार्य कर रहे तहब्बुर खाँ ने गजसिंह सिसोदिया, मोहकाम सिंह राठौर, मोहकम सिंह सिसोदिया, उदयभाग हरनाथ, सूरत सिंह कछवहा आदि के नेतृत्व में छोटी–छोटी सैन्य टुकडियों का गठन करके मुग़ल अधिकृत परगनों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया।[60]

---

[55] वही, भाग2, पृष्ठ 42
[56] फुतुहात-ए-आलमगीरी, पूर्वोद्धत, पृ. 315
[57] वाक्या-ए-रणथम्भौर(दृ.प्र.), पृष्ठ 440-441
[58] अखबारात, औरंगजेब, वर्ष23,भाग3, पृष्ठ25, भाग2, पृष्ठ 168, भाग3, पृष्ठ 175
[59] वही, भाग3, पृष्ठ 26
[60] वाक्या-ए-रणथम्भौर (ह.पृ.)पृष्ठ425, 442,451,453,454,51

1. महाराणा की छोटी–छोटी सैनिक टुकडियों, जो प्रदेश के चारों तरफ लूटमार करके आतंक फैलाती है। उनका लगातार पीछा किया जाय और आवश्यकतानुसार मेवाड़ के भीतरी भागों में पहुँचकर उसे दण्ड दिया जाय।

2. राजपूत सामन्तों तथा राणा के सहयोगियों को शाही मेहरबानियों तथा मंसब का लालच देकर मुगल पक्ष में सम्मिलित करने का प्रयास किया जाय, जिससे राणा की शक्ति का ह्रास हो।

3. उपद्रवकारियों को दण्ड देने के लिए स्वयं तहब्बुर खाँ विशाल सेना के साथ उदयपुर तथा उसके आस–पास के क्षेत्र में सक्रिय रहेगा तथा आवश्यक कार्यवाही करेगा।

तहब्बुर खाँ ने उपरोक्त योजनानुसार आवश्यक तैयारियाँ पूरी करके उदयपुर की ओर प्रस्थान किया।खान के आगमन के समाचार को पाकर दरीला की खान के पास ठहरा राजपूत दल पहाड़ों में भाग गया। अतः तहब्बुर खाँ वहाँ से राज समुद्र की ओर बढ़ चला जहाँ राजकुमार भीम सिंह आपने सैन्यदल के साथ ठहरा हुआ था। राजपूतों ने यहाँ भी सीधा संघर्ष टालने की दृष्टि से मुगलों का सामना नही किया और पहाड़ों की

दिया। राजपूतों द्वारा लड़े जा रहे गुरिल्ला युद्ध के सुनियोजित संचालन हेतु महाराणा स्वयं भी पहाड़ों से बाहर निकल आये और उन्होने उदयपुर से 18 किलोमीटर दूर 'द्दरोल' में पड़ाव डाला।[62] उचित अवसर पाकर युवराज जयसिंह ने मोहकम सिंह सबलावत् राव, केशरी सिंह उजलावत तथा राव सबल सिंह पुरावत आदि सामन्तों के साथ चित्तौड़ की तलहटी में ठहरी शाहजादा अकबर की सेना पर आक्रमण कर दिया। शाही सेना कड़ा संघर्ष करने पर भी राजपूतों के सामने टिक नही सकी। युवराज जयसिंह ने विजय पायी और मुगल सेना को छिन्न भिन्न कर दिया।[63] साला चन्द्रसेन ने एक अन्य राजपूत दल के साथ माण्डल पर आक्रमण करके मुगलों को अपार क्षति पहुँचायी। इस तरह स्थान–स्थान पर आकस्मिक आक्रमण पर राजपूत सैनिकों ने मुगल सैनिकों को आतंकित कर दिया।[64] मेवाड़ मुगल संघर्ष के लिए महाराणा राजसिंह एक निश्चित नीति के अनुसार राजकुमार भीम सिंह को एक प्रशिक्षित सेना के साथ गुजरात पर आक्रमण करने के लिए रवाना किया। मार्च 1680 ई. में राजकुमार नीम सिंह ने ईडर पर आक्रमण करके वहाँ के मुगल अधिकारी

---

[61] अरवबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 3, पृष्ठ 381।
[62] वाक्या-ए-रणथम्भौर, पूर्वोद्धत, पृ. 416
[63] राज विलास : विलास 18 पद्य 1-5
[64] झाला भूषण, मार्तण्ड, पृष्ठ संख्या 57-59

हुसैन अली खाँ को मार भगाया। इसे पश्चात राजकुमार ने जूनागढ़, सूरत, पारन, बडनगर सिद्धपुरूष आदि गुजरात के अनेक नगरों को लूट करके चारों ओर अशान्ति एवं भय का वातावरण तैयार कर दिया।[65] राजपूत अपने ही देश में लड़ रहे थे। उन्हे पहाड़ी मार्गों की सही जानकारी थी तथा स्थानीय निवासियों का मूल्यवान सहयोग प्राप्त था। इसके विपरीत मेवाड़ के विस्तृत पहाड़ी भूभाग में फैले राजपूतों को कुचलने के लिए शहजादा अकबर के पास पर्याप्त सैन्यबल भी नही था। कभी–कभी तो मुगल सेना नायकों को आवश्यकतानुसार सहायता भेज देने पर उसके पास अल्पमात्रा में सैनिक ही रह जाते थे। अतः शक्तिभर प्रयास करने पर भी शहजादा अकबर राजपूतों के विरूद्ध कोई ठोस सफलता अर्जित नही कर सका।[66] दुर्गादास मुगल सेना को मेवाड़ में व्यस्त देखकर, सोनिंग तथा महाराणा के कर्मचारी दोसी ने जालोर क्षेत्र में आतंक फैलाना आरम्भ कर दिया। उन्होने जालोर में सोजत तक के परगनों को लूटकर जोधपुर पर आक्रमण करने की योजना तैयार की।[67] राजपूत के दल दबाने के लिए तहब्बुर खाँ ने राजा इन्दर सिंह को सेना के साथ उधर रवाना किया। बादशाह ने भी मारवाड़ में सक्रिय हो रही राजपूत शक्ति को कुचलने के लिए मुकर्रम खाँ को सेना सहित इन्दर सिंह की सहायतार्थ भेजा। मुकर्रम

---

[65] अरवबारात, औरंगजेब, वर्ष 23, भाग2, पृष्ठ 118, दिनांक 9 मार्च 1680
[66] ओझा, उदयपुर, भाग 2, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 362
[67] वाक्य-ए-रणथम्भौर (दृ.प्र.), पृष्ठ 485-88

ने खोहरा में ठहरी महाराणा की सेना पर आक्रमण कर दिया। भयानक संघर्ष में दोनों पक्षों को जन और धन की अपार हानि उठानी पड़ी।[68] महाराणा के शक्ति स्तम्भ मेवाड़ के प्रतिष्ठित सामंत उदयभान चौहान, रतन सिंह, चूण्डावत, जसवन्त सिंह, केशरी सिंह आदि अपने छोटे–छोटे सैन्य दलों के साथ बदनोर जा पहुँचे और आस–पास के क्षेत्र में लूटमार करने लगे। मेवाड़ के एक अन्य दल के नेता रावलदास के भतीजी ने शहजादे अकबर के लिए जा रही रसद सामग्री को लूट लिया।[69] हिन्दू धर्म पर जब इस तरह खुले तौर से आक्रमण होने लगे तब यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह दबाये गये हिन्दुओं में तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो। बादशाह की भी हत्या करने के लिए भी उस पर अनेको आक्रमण किये गये, किन्तु ये आक्रमण ऐसी मूर्खतापूर्ण रीतियों से किये गये कि वे असफल ही रहे। 1669 ई. के आरम्भ में मथुरा जिले की हिन्दू जनता का एक भीषण विद्रोह उठ खड़ा हुआ। अब्दुलनवी खाँ अगस्त 1660 ई. से मई 1669 ई. तक मथुरा का फौजदार रहा था। बड़े ही उत्साह के साथ उसने अपने सम्राट की (मूर्ति पूजा का अन्त कर देने की नीति का पालन किया।

---

[68] अरवबारात, औरंगजेब, वर्ष 23, भाग4, पृष्ठ 170-173, 89-90
[69] अरवबारात, औरंगजेब वर्ष 23, भाग 3, पृष्ठ 193

अपने इस पद पर नियुक्त होने के कुछ समय बाद ही उसने हिन्दू मन्दिर के भग्नावभूषों पर मथुरा शहर के बीचों–बीच एक जामा मस्जिद बनवायी (1661–1962 ई.) तत्पश्चात 1666 ई. में उसने केशवराय के मन्दिर को दारा द्वारा उपहार में दिया हुआ नक्कारीदार पत्थर का जंगला वहाँ से हटवा दिया। 1669 ई. में तिलपट के जीमदार गोकला के नेतृत्व में जाट किसानों ने जब विद्रोह किया, तब उन पर आक्रमण करने के लिए अब्दुल नशी बसरा ग्राम की ओर चला। परन्तु 10 मई के लगभग इस युद्ध में वह गोली से मारा गया। गोकला ने सादाबाद का परगना लूट लिया। धीरे–धीरे यह विद्रोह मथुरा के पड़ोसी आगरा में भी फैल गया।

इस पर विद्रोह दबाने के लिए औरंगजेब ने ऊँचे हाकिमों की मातहती में एक बड़ी सेना भेजी। 1669 ई. के पूरे वर्ष भर मथुरा जिले में अशान्ति और उपद्रव की धूम बनी रही। 1670 ई. की जनवरी के आरम्भ में तिलपट से 20 मील दूर स्थान पर भयंकर लड़ाई हुई, जिसमें बहुत मारकाट के बाद हसन अली खाँ ने गोकला को पराजित किया। अपने कुटुम्ब सहित गोकला कैद कर लिया गया। हसन अली के इस प्रयत्नों तथा उसकी सफलताओं से मनोवांछित परिणाम निकला। पूरे जिले में शान्ति स्थापित हो गयी। लेकिन यह सब कुछ समय के लिए रहा। 1686

ई. में पुनः राजाराम के नेतृत्व में दसरा जाट विद्रोह आरम्भ हुआ।[70] वास्तव में सतनामी साधू ही थे, जिन्हे रायदासियों की ही एक शाखा समझना चाहिए। सिर के सारे बाल और भौहों तक को मुड़वा देने के कारण उन्हें लोग मुडिया अथवा घूटे सिर वाले कहते थे। 17वीं शताब्दी में उनका प्रधान केन्द्र दिल्ली से 75 मील दक्षिण पश्चिम में नारनौल में था। ईमानदारी भाईचार और इन्सानियत के लिए खाफी खाँ ने उसके चरित्र की बड़ी प्रशंसा की हैं वह लिखता है कि इसमें से अधिकांश या तो खेती करते थे या थोड़ी–बहुत पूँजी लगाकर व्यापार करते थे। इन्होने कभी बेइमानी या अन्य किसी गैर कानूनी तरीके से पैसा कमाने का प्रयत्न नही किया। सरकारी फौज के साथ इन लोगों की पहला मुठभेड़ एक बहुत ही साधारण सांसारिक मामले में हो गयी थी। 'एक दिन नारनौल के पास सतनामी किसान की एक सैनिक पियादे से कुछ गरमागरम बहस हो गयी। वह सैनिक किसी खेत की रखवाली कर रहा था। उसने एक मोटे डंडे से उस सतनामी का सिर फोड़ दिया। सतनामियों के एक जत्थे ने उस आक्रमणकारी को खूब पीटा, जिससे वह सिपाही मृत प्राय हो गया।'' अब यह साधारण झगड़ा बहुत बढ गया और शीघ्र ही वह युद्ध में परिणत हो गया, जिसमें हिन्दुओं की मुक्ति के लिए स्वयं औरंगजेब पर भी आक्रमण हुआ। भविष्यवाणी करने वाली एक बूढ़ी औरत ने घोषित किया

[70] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पूर्वोद्धत, पृ. सं. 201

कि उसके झण्डे के नीचे आकर लड़ने वाले सारे सतनामियों पर उसके तन्त्र मन्त्र के बल से शत्रुओं के हथियारों का कोई आकार नही होगा और वे अजेय बन जायेंगे। यह समाचार दावानल की लपटों की तरह चारों ओर फैल गया। लगभग 5000 सतनामी शस्त्र लेकर विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए। अपनी प्रारम्भिक विजयों से विद्रोहियों का आत्मविश्वास बढ़ चला और उस बुढ़िया के मन्त्र तन्त्र की अद्भुत शक्तिवाली बात पर लोगों का और भी दृढ़ विश्वास हो गया। उन्होने नार–नौल के फौजदारों को बुरी तरह और उस शहर पर कब्जा कर लिया। विजयी विद्रोहियों ने नारनौल को लूट लिया और वहाँ की मस्जिदों को गिरा दिया। उन्होने इस जिले में अपना शासन कायम किया। किसानों से वे अब कर भी वसूल करने लगे। अब औरंगजेब क्यों कर चुप बैठा? 15 मार्च को उसने रदनदान के मातहत एक बड़ी फौज रवाना की। सतनामियों के जादू टोने के प्रभाव को जीतने के लिए बादशाह ने स्वयं अपने हाथ से प्रर्थनाएं और जादू के अंक लिखे। बादशाह स्वयं बहुत बड़ा सन्त समझा जाता था और 'आलमगीरी जिन्दापीर'' के नाम से प्रसिद्ध था एवं शत्रुओं को दिखाने के लिए ये अंक और प्रार्थनाएं झण्डों पर भी दी गयी। शाही सेना का यह हमला बड़ा ही भयंकर हुआ। बहुत घमासान और कठिन युद्ध के बाद बहुत ही थोड़े सतनामी बचकर भाग सके। प्रान्त के उस भाग से काफिरों को इस प्रकार

साफ कर दिया गया।[71] मारवाड़ एक भूमि है परन्तु मुगलकाल में उसका सैनिक महत्तव एक विशेष कारण से था। मुगल राजधानी से संवृद्धि उद्योग धन्धे वाले शहर अहमदाबाद और खम्भात के काम धन्धों वाले बन्दरगाहों को जाने वाला सबसे सीधा व नजदीक व्यापारिक मार्ग मारवाड़ की सीमा होकर गुजरता था। यदि ऐसा प्रदेश मुगल साम्राज्य में मिलाया जा सके तो उदयपुर के अभिमानी गौरवपूर्ण राणा को उस बाजू से पूरी तरह घेर लिया जायेगा और राजपूतों के ठीक बीचों--बीच में ऐसे लम्बे प्रदेश की स्थापना हो जायेगी, जिस पर मुसलमानों का अधिपत्य होगां। उस समय की उत्तरी भारत की हिन्दू रियासतों में मारवाड़ की अग्रगण्य और महत्त्वपूर्ण था। इस समय वहाँ जसवन्त सिंह राज्य कर रहा था। बलपूर्वक हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करवाने की औरंगजेब की नीति के लिए बहुत ही आवश्यक था कि जसवन्त का यह राज्य बिलकुल ही शक्ति हीन एवं साधारण आश्रित राज्य मात्र बन जावे अथवा साम्राज्य का एक सामान्य सूबा ही रह जाय।

10 दिसम्बर 1679 ई. को जमरूद में ही जसवन्त सिंह की मृत्यु हुई। जसवन्त सिंह की मृत्यु का हाल सुनते ही मारवाड़ राज्य के एकदम मुगल शासन में ले लिया। 9 जनवरी 1679 ई. को स्वयं बादशाह अजमेर के लिए रवाना हुआ। यदि वहाँ कोई विरोध उठ खड़ा हो तो उसको दबाने

[71] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 202

के लिए जोधपुर के पास पहुँच जाना ही उसका एक मात्र उद्देश्य था। जसवन्त की मृत्यु से राठौर जाति बड़ी जी व्याकुल एवं अस्त–व्यस्त हो गयी तथा वहाँ सर्वत्र गड़बड़ी मच गयी। राज्य पर कोई भी शासक नही रह गया था एवं राज्य में बढ़ी–चढ़ी आती हुई सुसंचालित सशक्त मुगल सेना का सामना करने की शक्ति मारवाड़ राज्य में नही रह गयी थी। 26 फरवरी को औरंगजेब ने सुना कि लाहौर में जसवन्त की दो विधवा रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। फिर भी बादशाह मारवाड़ राज्य को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लेने की नीति से विरत होने वाला न था। अजमेर से लौट कर दो अप्रैल को बादशाह दिल्ली पहुंचा। पिछले सौ वर्षो से जो बन्द था वह जजिया कर उस दिन औरंगजेब ने पुनः हिन्दुओं पर लगा दिया और ये हिन्दुओ के प्रति अपने विरोध एवं द्वेष को स्पष्ट रूप से घोषित किया। जसवन्त के भाई का पौत्र इन्द्र सिंह राठौर, इस समय नागौर का शासक था; 26 मई को उसे जोधपुर का राजा बना कर मारवाड़ भेजा। परन्तु मुगल अधिकारी और सेनानायकों को जोधपुर में ही बने रहने का हुक्म मिला। अपने इस राज्य पर अधिकार करने में नये राजा की सहायता करना ही सम्भवतः उसका प्रधान कर्त्तव्य था।[72] *जसवन्त सिंह कभी अफगानिस्तान प्रधान शासक या काबुल शहर का सूबेदार नही बना। यह जमरूद का थानेदार मात्र ही था।* लाहौर पहुँचने पर जसवन्त

---

[72] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 212 (प्रकाशक, हिन्दी रत्नाकर कार्यालय, बम्बई)

की दो विधवा रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया (फरवरी 1679) इसमें से एक कुछ ही सप्ताह के बाद ही मर गया, किन्तु दूसरा, अजीत सिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठने के लिए बचा रहा। जून के अन्त में महाराजा का कुटुम्ब दिल्ली पहुंचा। अजीत के अधिकारों की स्वीकृति के लिए पुनः औरंगजेब से प्रार्थना की गयी, परन्तु उसने यही हुक्म दिया कि बालक अजीत का लालन पालन मुगल राजघराने के जनानखाने में ही किया जावे और यह आश्वासन भी दिया गया कि वयस्क होने पर उसे भी मुगल सरदारों में गिना जावेगा तथा तब उसे राजा की पदवी दी जायेगी। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है कि अजीत के मुसलमान बन जाने पर उसे तत्काल ही जोधपुर की गद्दी देने का प्रलोभन भी कर दिया गया था। औरंगजेब का यह प्रस्ताव सुनकर सारे स्वामिभक्त राठौरों के हृदय में तीव्र व्याकुलता भर गयी। अपने स्वर्गीय स्वामी के नवजात उत्तराधिकारी को बचाने के लिए प्रत्येक राजपूत ने प्राण रहते कट्टरतापूर्वक लड़ते रहने की कठोर प्रतिज्ञा की। जसवन्त के प्रधानमंत्री दुर्गेश के सरदार आसकरण का पुत्र दुर्गादास ही इन वीर राजपूतों का प्रधान नेता एवं उसका एक मात्र प्रेरक था। राठौर वीरों में सर्वश्रेष्ठ इस बांके राजपूत दुर्गादास को मुगलों का सारा प्रयास और उसका कल्पनातीन ऐश्वर्य नही भूला सके और न मुगलों की सैनिक शान्ति तथा साम्राज्य की सत्ता ही उसके दृढ़ प्रतिज्ञ धीर

हृदय को डगमगा सकी। सारे राठौर में इसी एक व्यक्ति में राजपूत योद्धा के अदम्य उत्साह तथा उसकी प्रचण्ड निरपेक्षणीय वीरता के साथ ही साथ मुगलों के राजमन्त्रियों की सी नीति कुशलता, चतुराई एवं संगठन करने की अद्वितीय शक्ति का भी अतुलनीय एवं अनोखा सम्मिश्रण पाया जाता था।

जसवन्त की रानी और अजीत सिंह को पकड़कर उन्हे दिल्ली में ही नूरगढ़ के किले मे कैद कर देने के लिए बादशाह ने 14 जुलाई को दिल्ली के फौजदार और अपने निजी सैनिकों के नायक को एक बड़ी शक्तिशाली सेना के साथ भेजा जहाँ वे ठहरे हुए थे। उस हवेली के एक ओर से जोधपुर के आरी सरदार रघुनाथ ने अपने 100 राजनिष्ठ सैनिकों के साथ मुगलों के इस सैनिक दल पर जोरों के साथ आक्रमण किया। इस भयंकर आक्रमण से ही शाही फौज हड़बड़ा उठी और उनकी इस क्षणिक अस्त–व्यस्तता से लाभ उठा कर दुर्गादास दोनों रानियों, जो इस समय मर्दाना भेष मे थी और अजीत को लेकर उस हवेली से निकल गया। वहाँ से वह सीधा मारवाड़ की ओर चल पड़ा। डेढ़ घंटे तक रघुनाथ ने दिल्ली की गलियों में खून की नदियाँ बहा दी और अन्त में वह भी वही काम आया। मुसलमानी सेना ने अब दुर्गादास का पीछा किया। तब तो रणछोड़ दास जोधा ने शत्रुओं का रास्ता रोका। उसके पास थोड़ी सी सेना

थी। ऐसा तीन बार हुआ। शाम तक मुसलमानों ने पीछा करना छोड़ दिया। 23 जुलाई के दिन अजीत सिंह को कुशलतापूर्वक मारवाड़ पहुँचा दिया गया।[73]

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में पंजाब में बाबा नामक हिन्दू सुधारक का उदय हुआ जिसके प्रति जनता की श्रद्धा बहुत बढ़ी। उन्होने धर्म एक जाति की उपेक्षा करके प्रत्येक धर्म के प्रधान तत्वों और उसमें निहित सत्य की एक़ता पर जोर दिया तथा उसी के आधार पर मानव समाज को मातृत्व के सुदृढ़ बन्धन में संगठित करने का प्रयत्न किया। ईशा की 16 शताब्दी में गुरूनानक से लेकर गुरू अर्जुन तक सिक्खों के पाँच गुरू हुए उन सब का जीवन बहुत सरल एवं तपस्वियों का था, एवं उनके प्रति तत्कालीन मुगल बादशाहों के हृदय में अपार श्रद्धा थी। इस्लाम धर्म तथा मुगल साम्राज्य के साथ इनका कोई झगड़ा नही था। जहाँगीर के शासन काल में पहली बार सिक्खों ने मुगल राज्य का विरोध किया। इस झगड़े का कारण किसी प्रकार धार्मिक नही था। किन्तु एक सांसारिक मामले से ही प्रारम्भ होने वाले इस झगड़े से सिक्खों पर दूसरा प्रभाव पड़ा। अतः इसके फलस्वरूप सिक्खों के गुरूओं का दृष्टिकोण ही बदल गया और उनके जीवन आचरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

---

[73] जदुनाथ सरकार : औरंगजेब, पूर्वोद्धत, पृ. सं. 214-215 (प्रकाशक, हिन्दी रत्नाकर, कार्यालय बम्बई 1951)

जहाँगीर के विरूद्ध अपना झण्डा खड़ा करने वाले खुसरों की विजय के लिए गुरू अर्जुन ने आर्शीवाद दिया था एवं जब खुसरों हार गया तो जहाँगीर ने साम्राज्य के शास्त्र सम्मत शासक के विरूद्ध राजद्रोह के अपराध में गुरू अर्जुन पर दो लाख का जुर्माना किया। गुरू के जुर्माना देने से इन्कार करने पर कैद व अन्य सारी यातनाओं को बड़ी ही धैर्यपूर्वक सहता रहा। लाहौर की कड़ी धूप और गरमी से तपती रेती पर बैठने के लिए बाध्य किया गया। 1606 ई. से 1645 ई. में सिक्खों के सम्प्रदाय में गुरू हरगोविन्द का उदय हुआ। गुरू के 42 शरीर रक्षक सैनिकों की संख्या बढ़ाते–बढ़ाते उन्होने एक छोटी सेना के समान बना लिया। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद ही जब अमृतसर के पास बादशाह शाहजहाँ बाणों से शिकार खेल रहा था, तब गुरू भी शिकार खेलते–खेलते वहाँ आ पहुँचे। एक पक्षी को लेकर उसके एवं शिकार खाने के शाही नौकरों में झगड़ा हो गया। अन्त में सिक्खों ने कई शाही सेना को मार डाला तथा बाकी हार कर भाग खड़े हुए उधर सिक्खों की विशेष हानि नही हुई। लाहौर के पास ही शाही सत्ता का खुलेआम अपमान बादशाह के लिए असहनीय हो उठा। वे अन्त में अमृतसर वाला गुरू का घर और सारा सामान छीन लिया गया और गुरू को बाध्य होकर मुगल सेना की पहुंच से परे कश्मीर की पहाड़ियों में स्थित कीरतपुर में शरण लेनी पड़ी ओर

वहीं 1645 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी। गुरू तेग बहादुर जो कि सिक्ख गुरू हरगोविन्द के सबसे दो पुत्र ने सिक्खों पर अपना अधिपत्य स्थापित किया। आनन्दपुर के अपने ठहराव में गुरू तेगबहादुर ने देखा कि सिक्ख सम्प्रदायों को शक्ति के साथ दबाया जा रहा है। 1657 ई. को मुगलों के साथ शिवाजी का प्रथम युद्ध हुआ। बीजापुर के आदिलशाह की मृत्यु के बाद औरंगजेब के बीजापुर आक्रमण का ध्यान बाँटने के लिए शिवाजी ने मुगलों के दक्षिणी सूबों के दक्षिण पश्चिमी कोने पर आक्रमण करने लगे। लगभग तीन हजार घुड़सवारों के साथ मानाजी भोसले ने भीमा नदी को पार करके मुगल राज्य के चमार गुण्डा तालुका के गांवों को लूटा। काशी नामक सेनानायक भी उसी समय भीमा नदी को पार कर रायसीन तालुका के गाँवों को लूट रहा था। 1657 ई. के समाप्ति पर ये दोनों की मुगल साम्राज्य के दक्षिणी सूबे के प्रधान नगर अहमद नगर की चारदीवारी तक लूटमार कर वहाँ भी उत्पात मचाने और सर्वत्र आतंक फैलाने लगे। मराठों ने अहमदनगर किले के नीचे ही बसे पेठ (नगर) को लूटने का मराठों ने प्रयत्न किया था किन्तु वहाँ मुगल सैनिकों के ठीक समय पर पहुँच जाने से वे सफल नही हो सके। उसी समय शिवाजी उत्तर जुन्नार–तालुका को लूटने में व्यस्त थे। 30 अप्रैल की अंधेरी रात में वे रस्सों की सीढ़ियों द्वारा जुन्नार शहर की चहर–दीवारी को चुपके से फाँदकर अन्दर जा पहुँचे और

वहाँ के पहरेदारों को मारकर तीन लाख हूण, दो सौ घोड़े बहुमूल्य कपड़े व जेवर ले गये। इन उपद्रव को सुनकर औरंगजेब ने और अधिक (अतिरिक्त) सेना भेजा। उत्तरी पूना प्रदेश पर मुगलों का दबाव अत्यधिक बढ़ा होने के कारण शिवाजी अहमदनगर की ओर लूटमार प्रारम्भ कर दिया। सम्राट की हुक्म से 3 हजार घुड़सवार लिये नसीरी खाँ राह में कहीं रूके बिना किसी प्रकार घटना स्थल पर पहुंचकर उसने शिवाजी की सेना पर एकाएक आक्रमण कर घेर लिया। कई मराठे मारे गये, अनेक घायल हुए तथा बाकी बचे भाग खड़े हुए। मराठों के आक्रमण के जबाब में औरंगजेब ने विशेष रूप से यह आदेश दिया था कि वे शिवाजी के प्रदेश पर चारों तरफ से चढ़ाई कर गाँवों को उजाड़ फेंकने वाले लोगों को निर्दयतापूर्वक मार डालने का आदेश दिया था।[74]

सिक्खों के पवित्र तीर्थ–स्थानों को खुले आम भ्रष्ट किया जा रहा था। अतः वह चुप नही रह सके। उसको पकड़कर दिल्ली ले गये और वहाँ इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए उसे बाध्य करने लगे किन्तु वह किसी प्रकार राजी नही हुआ अनेक यातनाएं भी व्यर्थ गयी। अन्त में बादशाह के हुक्म से सन् 1676 ई. में उसका सिर काट डाला। अतः इस्लाम धर्म एवं सिक्खों में खुले आम 'युद्ध ठन' गया शीघ्र ही सिक्खों में एक ऐसा नेता उठ खड़ा हुआ जिसने सिक्खों को इस्लाम धर्म और मुगल

[74] एस.आर. शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 358-59

1708 ई. के मध्य गुरू तेगबहादुर का एक मात्र पुत्र था। जन्म से पहले उसे विषय में भविष्यवाणी की गयी थी कि वह ऐसा मनुष्य होगा, जिसको कि गीदड़ को शेर और चिड़ियों को बाज बनाने की क्षमता होगी। गुरू गोविन्द सिंह अपने अनुचरों को क्रमशः शिक्षित किया और उसके लिए एक विशिष्ट पहनावा नियुक्त किया। नये संस्कारों से अभिसिंचित कर उसने उन्हे नये आदर्शों के लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया। तब कहीं इस्लाम की खुलेआम निन्दा करने की नीति अपनायी।[75]

सतनामियों का विद्रोह औरंगजेब के शासनकाल का दूसरा भीषण विद्रोह नारनौल तथा मेवात के जिलों में हुआ था। सतनामी लोग शान्तिप्रिय धार्मिक थे वे ऐकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे तथा कृषि कार्य करते थे। सतनामी अपना सिर, चेहरा तथा भौवें तक मुड़वाते थे। इसी कारण वे मुण्डिया कहलाते थे। विद्रोह का कारण एक सतनामी किसान और लगान वसूल करने वाले एक स्थानीय मुगल अधिकारी के प्यादे में व्यक्तिगत झगड़े के कारण हुआ था। मुगल सैनिकों के अनुचित व्यवहार के कारण सतनामियों को क्रोध आ गया तथा झगड़े से आगे निकलकर मुगलों के विरोध में धार्मिक युद्ध का स्वरूप बनकर तैयार हो गया। यह

[75] जदुनाथ सरकार : औरंगजेब, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 204,205,206,207,208-211

बात बहुत जल्द फैल गयी उन लोगों में यह आफवाह फैल गयी थी कि एक वृद्ध जादूगरनी ने सतनामियों को गोली के लिए अभेद्य बना दिया है। इस अफवाह से इस क्रिया को अत्यधिक प्रेरणा मिली। स्थानीय सरदारों द्वारा मुगल सेना पर अनेक विजयें प्राप्त कर लेने के कारण उन लोगों का पक्का विश्वास हो गया कि वे गोलियों के लिए अभेद्य हो गये हैं। सतनामी नारनौल शहर तथा जिलों को खूब लूटा और उस पर अधिकार जमा लिया। अतः औरंगजेब विवश होकर रदन्दाज खाँ के नेतृत्व में तोपखाने से सुसज्जित एक सेना भेजनी पड़ी। उसने कागजों पर जादू टोने के मन्त्रों को लिखकर सेना के झंण्डों में बाँध दिया ताकि वे शत्रु के जादू टोने से बच सके। यद्यपि कि सतनामी बहुत साहस से लड़े अन्ततः परास्त हुए जिसमें कम से कम 2000 सतनामी युद्ध भूमि में काम आये तथा शेष आतंकित होकर स्वयं आत्मसमपर्ण कर दिया।[76]

औरंगजेब का सिक्खों के बीच संघर्ष का कारण उनकी धार्मिक उत्पीड़न की नीति से सिक्ख लोग उत्तेजित होकर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और यह विद्रोह आगे चलकर मुगल साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बना।

[76] आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव, मुगल कालीन भारत, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं॰ 315-16

था। यह धर्म पवित्र भाईचारा या जिसके अनुयायी एकेश्वरवाद तथा ईश प्रार्थना, आत्म संयम और सुकर्मों द्वारा निर्वाण प्राप्ति में विश्वास रखते थे। गुरूनानक मूर्तिपूजा का खण्डन किया तथा जाति भेदभाव तथा ब्राह्मण एवं मुल्लओं की श्रेष्ठता को खुलेआम धिक्कारा। उनके प्रति तीन पदाधिकारी उनके पद चिन्हों पर चले किन्तु चौथे गुरू रामदास ने सर्वप्रथम आत्मिक तथा साथ ही साथ सांसारिक प्रभुत्व प्राप्त करने का अपना लक्ष्य बनाया। गद्दी पर बैठे उनके उत्तराधिकारी 1581 ई. में गुरूग्रन्थ साहब का सम्पादन किया तथा स्वर्ण मन्दिर बनवाया और सिक्खों को ठोस सम्प्रदाय के रूप में विकसित किया। गुरू अर्जुनदेव ने मसन्द नाम अधिकारियों को समस्त सिक्खों से दशांश कर तथा भेटें वसूल करने के लिए नियुक्त करके अपने लिए व्यवस्थित आय का प्रबन्ध कर लिया। उन्होने विद्रोही खुसरो को अर्शीवाद दिया था इसी कारण जहाँगीर उन्हे कैद कर लिया था तथा 1606 में गुरू को यातना देकर मार डाला था। हरगोविन्द गुरू अर्जुन के पुत्र थे उन्होने सैनिक शिक्षा प्राप्त की और कुशल योद्धा बन गये। शिकार के शाही स्थल को अपने कब्जे में करने के कारण तथा उस पर मुगल सैनिकों के भेजने पर परास्त कर देने के कारण उसे शाहजहाँ से टक्कर लेनी पड़ी थी । इसी कारण से शाहजहाँ ने अमृतसर में हरगोविन्द के घर

जाकर कीरतपुर में शरण लेना पड़ा था तथा 1645 ई. को स्वर्गवास सिधार गये। हरराय गुरू हरगोविन्द के उत्तराधिकारी बने।[77] जिसकी मृत्यु के बाद हरकृष्ण गुरू बने तथा इसके बाद गुरू तेगबहादुर गुरू का स्थान प्राप्त किया तथा अपना निवास आनन्दपुर बनाया इसी बीच औरंगजेब सम्राट बन गया और उसने धार्मिक उत्पीड़न की नीति बरतनी प्रारम्भ कर दी। सम्राट ने सिक्खों के गुरूद्वारों को नष्ट करने तथा मसन्दों को शहरों से बाहर निकालने की आज्ञा दी। गुरू तेगबहादुर ने औरंगजेब की इसी नीति को खुलकर विरोध किया था जिसके कारण उन्हे कैद कर दिल्ली ले जाया गया था और वहाँ पर उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया था, किन्तु उनके अस्वीकार करने के कारण पाँच दिन की घोर यातना के बाद उन्हे मार (दिसम्बर 1675) डाला गया था।

औरंगजेब की धर्मान्धनीति तथा जनता को मुसलमान होने के लिए बाध्य करने की उनकी नीति के कारण सिक्खों एवं मुसलमानों में विश्वास भंग हो गया। इससे तंग आकर तेगबहादुर के सुपुत्र गोविन्द सिंह को अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का दृढ़ निश्चय करने पर बाध्य होना पड़ा। उन्होने सिक्खों को सैनिक सम्प्रदाय में परिवर्तित करके उसका नाम खालसा रख दिया। खालसा लोगों को साधारण जनता से भिन्न वस्त्र

[77] वही, पृ. 316-17

जाति भेद तथा खानदान के सभी भेद छोड़ने पड़ते थे। खालसा दल में प्रवृष्टि करने के लिए एक नयी विधि निर्दिष्ट की गयी और अनुगामियों को इस बात का विश्वास करा दिया गया कि वे योग्यतम एवं चुने हुए लोग हैं। इस प्रकार गुरू गोविन्द का सिक्ख धर्म यर्थाय में औरंगजेब के इस्लाम धर्म के विरूद्ध विनाशकारक सिद्ध हुआ। गुरूगोविन्द सिंह के नेतृत्व में खालसा लोगों ने धर्मान्धता का जबाब धर्मान्धता से देने की नीति का अनुसरण किया। गुरूगोविन्द सिंह को उन मुसलमान अफसरों तथा हिन्दू नरेशों से लड़ना पड़ा जिन्हे औरंगजेब ने सिक्खों का दमन करने के लिए भेजी गयी शाहीसेना को सहयोग देने का आदेश दिया था। गुरू ने इन लोगों को कई बार हराया। उनके अनुयायी दिन–प्रतिदिन बढ़ते गये। आनन्दपुर में गुरू के घर को पाँच बार घेरा डाला जा चुका था, इस कारण उसने उस स्थान को छोड़कार मैदान में जाकर शरण ली। मुगलों ने अन्ततः उनका पीछा किया। स्थान–स्थान पर उनकी खोज की गयी। अन्त में वह बीकानेर होकर दक्षिण में जा कर पहुँचा। युद्ध में उनके पुत्र काम आये तथा शेष दो को सरहिन्द के फौजदार ने मौत के घाट उतार दिया।[78]

[78] वही, पृ. 317

जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह ने और आमेर के राजा जयसिंह ने मराठों के विरूद्ध मुगल सेना का संचालन किया था। उत्तराधिकार के विरूद्ध लड़ा था और खजुआ में उसको धोखा दिया था। लेकिन अन्त में औरंगजेब ने उसको अपनी ओर मिला लिया था। टाड के अनुसार – "चालाक सम्राट शस्त्र प्रयोग के संदिग्ध परिणाम की अपेक्षा कूटनीति का प्रयोग अधिक करता था। इसलिए उसने जसवन्त सिंह को पत्र लिखकर विश्वास दिलाया कि आपको न केवल माफी दी जाती है बल्कि गुजरात की सूबेदारी प्रदान की जाती है। शर्त यह है कि आप दारा को किसी प्रकार का सहयोग न दें और युद्ध में तटस्थ रहे। इस मामले में मिर्जा राजा जयसिंह ने खजुआ की लड़ाई के बाद और देवरायी के युद्ध (5जनवरी से 13 मार्च 1669 ई) के पहले मध्यस्थता की थी। इन दोनों राजाओं ने औरंगजेब की अच्छी सेवा की किन्तु दोनों का अन्त बहुत बुरा हुआ। औरंगजेब को यह हमेशा संदेह था कि ये दोनों शिवाजी से मिले थे। इसलिए एक को विष देकर तथा दूसरे को मरने के लिए अरक भेजकर वह मुक्त हो गया।" औरंगजेब के बारे में ऐसा कहा जाता है कि जब तक जसवन्त सिंह जीवित था तब तक औरंगजेब आहें भरता रहा। अमर इतिहासकार ताड के अनुसार " जसवन्त सिंह का जीवन राजपूतों में बड़ा अद्भुत है। उसके बयालीस वर्ष के जीवन में घटना पर घटना घटती

रही। उसका पहला संघर्ष औरंगजेब से हुआ था और अन्तिम अफगानों से हुआ था। राठौर राजपूत चालाक औरंगजेब की अपेक्षा स्पष्टवादी दारा को अच्छा समझते थे। परन्तु जसवन्त सिंह समझते थे कि समस्त मुसलमान कौम हिन्दू धर्म तथा महाराणा की स्वाधीनता की शत्रु है और वह कभी एक भाई को कभी दूसरे भाई की मद्‌द देता है।[79] 1678 ई. को जमरूद में जसवन्त सिंह की मृत्यु मानो युद्ध का बिगुल बजा दिया हो। इसी बीच राजपूत को अफगानों के विरूद्ध इसी उद्‌देश्य से भेजा गया था कि वह आपस जीवित नही आयेगा। उनकी अनुपस्थिति में मारवाड़ साम्राज्य उनके पुत्र पृथ्वी सिंह को सुपुर्द था। औरंगजेब ने पृथ्वी सिंह को दरबार में बुलाया और सम्मानार्थ उसको एक सिलअत प्रदान की जो विष से भीगी थी पृथ्वी सिंह उसको पहने और उसी दिन उनके प्राणान्त हो गये। वियोग की यह घुटी और काबुल में दो अन्य दो पुत्रों का प्राणान्त होने से जसवन्त सिंह की मृत्यु और निकट आ गयी। उनकी मृत्यु के तीन सप्ताह के अन्दर ही औरंगजेब ने जोधपुर के विरूद्ध युद्ध करने की योजना बना ली। क्योंकि जसवन्त सिंह की योग्य सेना अफगानिस्तान में होने के कारण मुगलों का रास्ता जोधपुर के लिए साफ हो गया। अतः वहाँ पर फौजदार, किलेदार और अमीनों के स्थान पर वहाँ पर मुसलमानों की नियुक्ति प्रदान की। विरोध को दबाने के लिए भय उत्पन्न किया गया तथा 9 जनवरी

---

[79] श्रीराम शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत, पृ. सं. 333

1689 ई. को औरंगजेब स्वयं अजमेर के लिए रवाना हुआ। 7 फरवरी को बड़े अफसरानों को भेजकर मन्दिरों को नष्ट करने और महाराज की सम्पत्ति पर अधिकार करने का आदेश दिया। 2 अप्रैल को औरंगजेब वापस दिल्ली की सरजमीं पर कदम रखा तथा जजिया लगाने के लिए भारी कदम उठाया। जोधपुर को अपने आत्मसंरक्षण के पश्चात वह भूल गया क्योंकि उत्तर भारत में जोधपुर ही वीर हिन्दुत्व का केन्द्र था। खाने–ए–जहाँ युद्ध में वहाँ की तोड़ी गयी मूर्तियों को वापस राजधानी ले आया जिससे कि वहाँ के मुसलमान उसे पैरों से कुचल सकें। मारवाड़ के दमन का पूरा करने के लिए जोधपुर की शाही गद्दी को 26 लाख रूपये में नागौर के ठाकुर के हाथों में बेंच दिया गया।[80] 25 सितम्बर 1689 ई. को औरंगजेब ने अजमेर में अपने डेरे लगाये। शहजादा अकबर जो अपने भाग्य की परीक्षा करने वाला था, इस युद्ध का प्रधान संचालक तथा तहब्बुर खाँ उपसंचालक नियुक्त हुआं। इस दुखान्त नाटक के प्रथम अंक में मेड़ता एवं राजपूतों का आत्मबलिदान हुआ, जो पुष्कर के पा बाराहावतार के मन्दिर के निकट राजसिंह के नायकत्व, में युद्ध हुआ था। इस युद्ध के बाद प्रत्येक घर दुर्गम दुर्ग बन गया और हर एक राठौर राजपूत सैनिक हो गये। मारवाड़ रक्तपात, लूटमार, और विनाश का अखाड़ा बन गया। इस हिन्दू जेरूस्लम में इस्लाम की विजय घोषित करने

[80] श्रीराम शर्मा : भारत में मुगल साम्राज्य, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 339

के लिए मन्दिरों को तोड़कर कितनी ही मस्जिदे बना दी गयी। यद्यपि चिड़िया उड़ गयी परन्तु घोंसले तोड़े जा रहे थे।[81]

नवम्बर सन् 1665 में औरंगजेब ने गुजरात प्रान्त में घोषणा जारी की कि "अहमदाबाद नगर और गुजरात के परगनों में हिन्दू लोग अन्धविश्वास के साथ दीपावली पर दीपक जलाते हैं और होली पर अश्लील बाते मुँह से बारह निकालते हैं, चकलों एवं बाजारों में वे होली जलाते हैं और चुराकर या बलपूर्वक लोगों की लड़कियां उसमें डाल देते है; इसलिस आदेश दिया जाता है कि दीवाली पर बाजारों में कोई रोशनी न की जाय और किसी की लड़कियाँ चोरी या जबरदस्ती लेकर होली में न डाली जाय और अश्लील भाषा का प्रयोग न किया जाय।" यद्यपि होली के विषय में जो आदेश था वह बहुत अच्छा था, लेकिन साथ ही दीवाली की रोशनी का निषेध करने से हिन्दुओं की भावनाएं उत्तेजित होनी ही थी।[82] चौदहवीं शताब्दी मे फिरोज तुगलक ने हिन्दू यात्राएं बन्द करवा दी थीं। खलीफा कहता है, "कुछ विशेष दिनों पर प्रत्येक जाति के अगणित हिन्दू स्त्री पुरूष अपने मन्दिरों में एकत्र होते हैं और वहाँ लाखों रूपये का क्रय–विक्रय होता है जिससे सूबे के कोष में बड़ी आय होती है। सन् 1671 ई. में यह आदेश हुआ कि खालसे के भूमिकर संग्रहकर्ता सब मुसलमान होने चाहिए।

---

[81] वही, पृष्ठ सं. 339

[82] वही, पृष्ठ सं. 329-330

सूबे के सूबेदारों और तालुकेदारों को आदेश दिया गया कि हिन्दू पेशकार और दीवानी को हटा कर उसके स्थान पर मुसलमानों को नियुक्त किया जाय। सबसे बढ़कर बात यह हुई कि मार्च सन् 1695 ई में आदेश दिया गया कि राजपूतों के सिवाय कोई हिन्दू अच्छी नस्ल के घोड़े हाथी या पालकी पर नही चढ़े और न शस्त्र धारण करे।[83] औरंगजेब की मृत्यु के समय जोधपुर के अतिरिक्त अन्य राजपूत राजाओं से मुगल साम्राज्य के सम्बन्ध सन्तोषजनक न थे। उत्तराधिकार के युद्ध में कुछ ऐसी घटनाएं घटी जिसके कारण मुगल सम्बन्ध कटु हो गये। 1707 ई. में बहादुरशाह के काबुल के प्रस्थान पर उस समय आमेर के शासक जयसिंह का कनिष्ठ भाई विजय सिंह तथा बूंदी का शासक बूध सिंह उसकी सेवा मे थे। आजम ने दक्षिण से उत्तर की ओर प्रस्थान किया तो आमेर का राजा जयसिंह, कोटा का राजा राव रामसिंह हाड़ा, दतिया का शासक राव दम्पति बुन्देला आदि उनके साथ थे। उदयपुर का राजा अमर सिंह तथा जोधपुर के शासक अजीत सिंह उत्तराधिकार के युद्ध में तटस्थ थे।[84] मुगलकाल में औरंगजेब का शासनकाल न केवल जाटों सिक्खों और पठानों से कायम हुई । अपितु राजपूतों और मराठों के साथ भी लम्बे काल तक संघर्ष हुआ। यह मुगल साम्राज्य के बढ़ते संकट के द्योतक है।

---

[83] वही, पृष्ठ सं. 341-42
[84] वही, पृ. 339

साम्राज्य के इस संकट के बारे में विद्वानों का मत एक नही है। क्योंकि इन संघर्षों की पृष्ठभूमि औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुतापूर्ण नीति थीं या संघर्षो की पृथक–पृथक पृष्ठभूमियां थी।

परोक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि ये संघर्ष औरंगजेब की नई धार्मिक नीति के परिणाम थे अथवा उनकी पृष्ठभूमि में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक कारण थे।

औरंगजेब का जाटों के साथ उग्र संघर्ष 1669 में मथुरा के पास के क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। यह विद्रोह तेजी से फैला और उसके परमोंत्कर्ष के समय 20,000 जाट विद्रोहियों ने मुगल सेना का सामना किया। विद्रोही प्रायः जाट किसाने थे, उनका नेतृत्व तिलपट के जमींदार, गोकुल के जाट ने किया। जाटों ने डर कर मुगल सेना का सामना किया और कई बार मुगल फौज के दस्तों के विरूद्ध विजय प्राप्त किया अन्त में बढ़ी फौज लेकर औरंगजेब ने स्वयं उनका सामना किया और जाट पराजित हुए किन्तु प्रायः 8500 मुगल सिपाही हताहात हुए।[85]

जाटों और मुगल साम्राज्यों में छुट–पुट संघर्ष पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। शाहजहाँ के समय में आगरा–मथुरा के पास जाटों का मुगलों से संघर्ष हुआ। जाट हमेशा लूट–पाट के अवसर की तलाश में रहते थे।

---

[85] साकी मुस्तइद खाँ, मआसिर-ए-आलमगीरी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 92-94

मुगलों के अनुसार जाटों का क्षेत्र जोर–तलब था, अर्थात वहाँ के लोग जोर अर्थात लड़ाई झगड़े के बिना आसानी से मालगुजारी नही देते थे। इसके परोक्ष में स्थानीय हकीमों को आतंकवादी नीति अपनाने का आसान बहाना मिल गया था। लेकिन धार्मिक असहिष्णुता के बारे में 1661–1662 ई. औरंगजेब के आदेशानुसार आगरा में एक मन्दिर तोड़ा गया। किन्तु बुन्देला वीरसिंह देव द्वारा निर्मित मथुरा का विख्यात विश्वनाथ का मन्दिर जाट–विद्रोह से पहले नही उसके बाद खण्डित किया गया।[86] जाट विद्रोह का नेतृत्व प्रारम्भ में जमींदारों के हाथों में रहा। 1686 ई. में यमुना पार के क्षेत्र के जाटों में दुबारा विद्रोह किया। इस विद्रोह का नेता सिनसिनी का जमींदार राजाराम था उसने जगह–जगह बीहड़ जंगल में गढ़ियां बना ली थी। जिसे घेरा डालना आसान नही था। जाटों के विद्रोह को दबाने की जिम्मेदारी और नरेश राजा विशन सिंह कछवाहा को दी गयी। विशन सिंह को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया गया और जाट क्षेत्र की जमींदारी भी उसे प्रदान की गयी। इस प्रकार जाटों का संघर्ष साम्राज्य के विरूद्ध नही रहा। इस प्रकार जाटों का संघर्ष साम्राज्य के विरूद्ध नही रहा। जाट किसान व जमींदार राजपूतों को अपना स्वामी मानने के लिए तैयार नही थे। इस प्रकार संघर्ष का रूप बदल गया। मुगल सेना के सहयोग से कछवा नरेश ने राजाराम और उसके उत्तराधिकारी चूड़ामन को 1691 ई. में

---

[86] यदुनाथ सरकार, औरंगजेब तृतीय, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 291

सिर झुकाने के लिए बाध्य किया और जाटों के विरूद्ध अभियान चलता रहा।''[87] मुगलों एवं सिक्खों का संघर्ष भी औरंगजेब के पूर्व प्रारम्भ हो चुका था। जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में गुरू के साथ झड़पें हुई थी। इनसे प्रतीत होता है कि सिक्खों की ओर से मुगल बादशाह आश्वस्त नही थे। सिक्ख गुरूओं को धर्म अैर संसार दोनों का संरक्षक समझा जाना, गुरूओं का भौतिक आडम्बर बढ़ना तथा गुरू और उनके अनुयायियों का शस्त्र धारण करना, मातृत्व और समानता की भावना पर जोर देना जिनके कारण सिक्ख धर्म निम्न वर्ग–जाट, किसानों, कारीगारों इत्यादि में प्रिय होता जा रहा था।[88] सिक्खों के साथ औरंगजेब का ही संघर्ष पहला नही था बल्कि इससे पहले ही प्रारम्भ हो गया था। जहाँगीर एवं शाहजहाँ के शासनकाल में गुरूओं के साथ झड़पें हुई थी। इससे प्रतीत होता है कि सिक्खों के साथ मुगल बादशाह पूर्णतः आश्वस्त नही थे। 1675 ई. में औरंगजेब द्वारा गुरू तेग बहादुर का वध केवल अन्यायपूर्ण ही नही उसके संकीर्ण दृष्टिकोण ही नही, उसके संकीर्ण दृष्टिकोण और अनुदार नीति का द्योतक था। कुछ समसामयिक लेखकों द्वारा कि गुरू के वंश के कुछ व्यक्तियों का गुरू के विरूद्ध षडयन्त्र का भी उल्लेख किया जाता है।[89] एक महत्वपूर्ण सम्प्रदाय के नेता की इस प्रकार निर्मम हत्या कराना न

---

[87] डा. सतीश चन्द्र : उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास मेरठ, 1974, पृष्ठ सं. 10
[88] वही, पृष्ठ सं. 10-11
[89] वही, पृष्ठ सं. 11

न्याय संगत था न ही नीतिपूर्ण।गुरू तेग बहादुर का वध सिक्खों के स्वरूप को बदलने का सबसे बड़ा कारण कहा जाता है किन्तु सिक्खों और मुगलों के संघर्ष का केवल यही एक कारण नही था। अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए गुरू गोविन्द ने 1699 ई. में खालसा की स्थापना की थी। और आनन्दपुर को सिक्खों का केन्द्र बनाया। 1675 ई से 1702 ई. तक सिक्खों तथा मुगलों में कोई सघर्ष नही हुआ न ही मुगलों ने सिक्ख गतिविधियों में हस्तक्षेप किया। इसके पूर्व हिन्दू पहाड़ी राजाओं के मुगलों के विरूद्ध विद्रोह में गुरू ने कोई भाग नही लिया।[90] सतनामी हिन्दुओं का एक धार्मिक सम्प्रदाय था जो कि दिल्ली के पास नारनौल और मेवात के इलाके में रहते थे। बीजेसर के एक योगी वीर भान ने सन् 1553 ई. में नारनौल के पास इसकी स्थाना किया था। वे कृषि एवं व्यापार करके अपने परिवार का भरण पोषण किया करते थे और अपनी रोजी रोटी चलाते थे। सतनामी अपना सिर तथा भौहें समेत चेहरा मुण्डवा लेते थे। इस कारण से ही उनका नाम मुडिया साधु रखा गया। वर्ष 1672 ई. क्री एक घटना सतनामियों जिन्हे मुडिया के नाम से भी जाना जाता था के नाम से ज्ञात हिन्दू भक्तों के क्रोध का विस्फोट थी। उसकी संख्या चार–पांच हजार होगी जा नारनौल और मेवाती परगनों के गृहस्थ थे। ये लोग भक्तों की तरह पोशाक पहनते थे यद्यपि उनका उन्होने स्वयं को

[90] जे.एस. ग्रेवाल व एस.एस. बाल - गुरू गोबिन्द सिंह, चण्डीगढ़, 1950, पृष्ठ सं. 65-142

अच्छा नाम (सत–नाम) की उपाधि से मर्यादित किया हैं वे केवल वैध तरीके से ही धन एकत्र कर सकते हैं। उन सतनामियों में से बहुत से लोग हथियार एवं अस्त्र रखते थे।[91] मुगलों से सिक्ख गुरू गुरूगोविन्द सिंह का संघर्ष राजनीतिक कारणों से हुआ था क्योंकि इनकी बढ़ती हुई शक्ति और राजनैतिक महत्वाकांक्षा के कारण ही राजा विलासपुर और स्थानीय पहाड़ी हिन्दू राजाओं के साथ सिक्खों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। सिक्खों ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध में भाग लिया लेकिन 1705 ई. के अन्त तक उनके विद्रोह को कुचल दिया गया। यद्यपि सिक्ख राज्य की स्थापना अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में हुई जबकि मुगल साम्राज्य जीर्ण हो चुका था तथा इस नवीन राज्य की पृष्ठ–भूमि में यह भावना निहित थी कि वह मातृभाव व न्याय के ऊपर आधारित होगा। राज्य की सत्ता जमींदारों के हाथ में निहित थी अतः संघर्ष का स्वरूप बदलता रहा, और आर्थिक सामाजिक राजनीतिक तथा धर्मिक सभी तत्वों का समावेश रहा। गुरू के दो पुत्रों की हत्या का दोष औरंगजेब पर नही बल्कि स्थानीय अधिकारियों के सिर पर है।[92] जाट या सिक्ख संघर्ष को हम केवल साम्प्रदायिक संघर्ष नही कह सकते क्योकि इस संघर्ष का आर्थिक पक्ष था– किसानों का मुगल साम्राज्य के प्रति असन्तोष किन्तु स्पष्ट रूप से किसान अन्दोलन भी

---

[91] खाफी खाँ, मुन्तखब उल लुबाव, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 294
[92] अहकामें आलमगिरी, पृष्ठ सं. 74-75 (एम. अतहर अली द्वारा उद्धत)

नही कहा जा सकता क्योंकि जाटों और राजपूतों के बीच का संघर्ष राज्य और जमीदारी अधिकारों, दोनों के बारे में था। यद्यपि कि गुरूगोविन्द सिह भी एक स्वतन्त्र सिक्ख राज्य की नीव रखी किन्तु उनकी इच्दा पूर्ण होने में काफी वक्त लगा था।[93] औरंगजेब को जाटों और सिक्खों के संघर्ष के साथ पठानों की स्वतन्त्रता स्थापित करने की भावना से भी जूझना पड़ा। काबुल और सिन्धु नदी के बीच पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले स्वन्तत्रता प्रेमी वीर योद्धाओं से अकबर और जहाँगीर दोनों को लोहा लेना पड़ा था। औरंगजेब के समय से पठानों को संगठित करके एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का प्रयास किया था। 1667 ई. में युसुफजई कबीलों के नेता भानू ने मुहम्मद शाह नाम के व्यक्ति को बादशाह बनाया और अपने को उसका वजीर घोषित किया। 10000 चुनीदा (चुने हुए) सिपाहियों के साथ मुहम्मद अमीन खाँ ने राजा मानसिंह भदोरिया इत्यादि को साथ लेकर भानू पर हमला किया।[94] 1672 ई. मे पठानों का विद्रोह पुनः प्रारम्भ हुआ। अफ्रीदी नेता अकाल खां ने अपने को बादशाह घोषित किया और सिक्का व खुतवा अपने नाम पर चालू कर दिया। पुनः मुहम्मद अमीन खां को उसके विरूद्ध भेजा गया, किन्तु पठानों ने खैरब दर्रे में मुगल फौज को घेर लिया। मुहम्मद अमीन खां जान बचाकर किसी तरह पेशावर लौट गया किन्तु

---

[93] डा. सतीश चन्द्रा, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृष्ठ सं. 12
[94] वही, पृष्ठ सं. 12

उसके समस्त सिपाही मारे गये और उसका सारा सामान लूट लिया गया। अतः इस हार के कारण सारे कबायली क्षेत्र में विद्रोह की आग भड़क उठी। 1674 ई. में एक दूसरे मुगल मनसबदार शुजाअत खां खैरब दर्रे में बुरी तरह हार खानी पड़ी।[95] पठानों को कुचलने और काबुल का रास्ता खोलने के लिए औरंगजेब को स्वयं पेशावर जाना पड़ा। पठान कबायलियों में फूट डालकर महाराज जसवन्त सिंह के नेतृत्व में राजपूतों की खैबर के क्षेत्रों में नियुक्त करके तथा काबुल सूबेदार अमीर खां के कुशल शासन के कारण 1678 तक धीरे–धीरे औरंगजेब पठान विद्रोह को काबू में ला सका।[96] राजपूत और मराठों के संघर्ष की पृष्ठभूमि जाट, सिक्खों और पठानों के सघर्ष से बहुत भिन्न थी। राजपूतों के साथ मुगलों के सम्बन्ध बहुत पुराने थे और मुगल साम्राज्य के विकास और दृढ़ीकरण दोनों में राजपूतों का काफी योगदान था। राठ़ौर और सिसौदिया राजपूतों के साथ औरंगजेब का संघर्ष एक नयी नीति के फलस्वरूप होता है अथवा राजपूतों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की पुरानी नीति के अन्तर्गत किन्ही व्यक्तिगत या तात्कालिक कारणों से होता है। सर यदुनाथ सरकार के मत में संघर्ष का मूल कारण औरंगजेब की यह नीति थी कि वह प्राचीन हिन्दू राज्यों का अपना अधिकार जमा कर भारत में एक सच्चे इस्लामी राज्य की

[95] वही, पृष्ठ सं. 13
[96] जदुनाथ सरकार : औरंगजेब, तृतीय, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 216-47

रचना करना चाहता था जिसके फलस्वरूप हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जा सके।[97]

औरंगजेब का सिंहासनारोहण के समय राजपूत राजाओं के साथ सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण थे। आमेर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह उसका बड़ा विश्वास पात्र था। उसने हर कठिनाई में औरंगजेब का साथ दिया था। उस कारण से ही मारवाड़ नरेश महाराजा जसवन्त सिंह ने खजवा के युद्ध के पूर्व दारा का साथ छोड़ दिया था। औरंगजेब ने राजसिंह को भी शाहजहाँ के समय में जब्त किये गये परगने पुर, माण्डल, माण्डलगढ़, बिदनूर वापिस देकर अपनी तरफ मिला लिया था। किन्तु धीरे–धीरे औरंगजेब की दृष्टि में राजपूत महत्व कम हो गया। 1667 ई. में राजा मिर्जा जयसिंह के मरने के बाद औरंगजेब को दूसरा कोई योग्य राजपूत नही मिल सका।[98] औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता (मिर्जा राजा जयसिंह के मरने के बाद) धीरे–धीरे बढ़ती चली गयी। उसने दरबार में गायन को बन्द करा दिया, सोने चाँदी के बर्तन को गैर शरई होने के कारण त्याग दिया और बहुत सी पुरानी हिन्दू प्रथाओं को बन्द कर दिया। महाराजा जसवन्त सिंह की 1679 ई. में जमरूत में मृत्यु हो गयी। अतः उनकी मृत्यु के बाद किसी पुत्र के जीवित न रहने पर ऐसी स्थिति में मारवाड़ की गद्दी के दो

97 जरनल ऑफ दि इकोनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ दी ओरिएण्ट, XII/XXI, पृष्ठ सं. 322-340
98 राजस्थानी पत्र सं. 46-47

मुख्य दावेदार थे। राजा जसवन्त सिंह के बड़े भाई अमर सिंह का पोता इन्दर सिंह जो नागौर का जमींदार था और दूसरा अमर सिंह का नाती अनूप सिंह उत्तराधिकार के प्रश्न पर निबटारा होने तक के लिए पुरानी मुगल प्रथा के अनुसार मारवाड़ को औरंगजेब ने खालसा कर दिया। जसवन्त सिंह की रानियों और सेवकों के खर्च के लिए सोजत एवं जैतारज के परगने उन्हे प्रदान कर दिये।[99] औरंगजेब द्वारा जोधपुर पर शाही अधिकार जमाने के बाद जसवन्त सिंह का सामान जब्त कर लिया गया क्योंकि महाराज जसवन्त सिंह के ऊपर करीब 2.50 लाख रूपये जो उन्हे खर्च के लिए दिये गये थे बकाया थे।[100] मुगलकाल में किसी भी राज्य में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर यदि कोई विवाद होता था तो उसका निर्धारण मुगल बादशाह को ही माना जाता था। शाहजहाँ ने स्वयं महाराजा गजसिंह की मृत्यु के बाद उनके बड़े बेटे अमर सिंह के स्थान पर जसवन्त सिंह को टीका दिया था। इन्द्र सिंह ने शाहजहाँ के इस पुराने अन्याय को पूरा करने की दुहाई की यह बात औरंगजेब को प्रिय लगी क्योंकि वह जसवन्त सिंह को कृतघन समझता था।[101] औरंगजेब ने महाराजा जसवन्त सिंह की रानियो के पहुचने से पूर्व की मारवाड़ का टीका इन्दर सिंह को दे दिया। यदि औरंगजेब मारवाड़ का वास्तविक रूप

[99] वाक्या -ए-सरकार रणथम्भौर (अलीगढ़ मु.यु.), पृष्ठ सं.118
[100] मीराते अहमदी, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 277
[101] वाक्ए सरकार रणथम्भौर, पृष्ठ सं. 118, 124

को टीका न देकर उसने भूल की। अधिकतर राजपूत पिता के बाद उसके पुत्र को ही उसका वारिस मानते थे। बड़े भाई के स्थान पर छोटे भाई को गद्दी देना एक बात थी, किन्तु उसके स्थान पर चचेरे भाई या किसी दूसरे वंशज को गद्दी स्वीकार करना दूसरी बात थी। राणा राजसिंह ने भी टीका अजीत सिंह को देने का अनुरोध किया था। प्रमुख अमीर जैसे खानेजहाँ और अजमेर के सूबेदार शुजात खां भी अजती सिंह को सिंहासन देने के पक्ष में थे।[102] अजीत सिंह को सिंहासन देने के लिए औरंगजेब ने किसी की बात नही सुनी और इसी समय हिन्दुओं पर जजिया कर लगाकर और मारवाड़ में कतिपय मन्दिर को तुड़वाकर औरंगजेब ने राजपूतों की भावनाओं को और भी ठेस पहुचाई।[103] राजपूतों के युद्ध का अन्त उत्तराधिकार के प्रश्न का युद्ध रहा। राजपूतों की मुख्य मांग अजीत सिंह को टीका देने की थी। औरंगजेब की धार्मिक या अन्य नीतियों के विरूद्ध उन्होने आवाज उठायी हो। इसका कोई सबूत हमारे पास नही है। 1681 ई. में राणा अमर सिंह (द्वितीय) के साथ की गयी सन्धि के अनुसार राणा को जजिया देने के बदले चार परगने पुर, माण्डल, माण्डलगढ़ और बिदनूर मुगलों को सौंप देने के लिए बाध्य किया गया। इसके साथ

---

[102] वाक्या -ए-सरकार रणथम्भोर (अलीगढ़ मु.यु.), पृष्ठ सं. 80-81
[103] वही, पृष्ठ सं. 170-204

औरंगजेब ने अजीत सिंह को बालिग होने पर मंसल और राज्य प्रदान करने का वायदा किया।[104] शाहजहाँ ने 1636 ई. में बीजापुर सुलतान के साथ एक सन्धि की थी जिसके अन्तर्गत अहमद नगर का एक तिहाई हिस्सा बीजापुर को दे दिया था और यह शर्त लगायी थी कि यदि वह शाहजी को अपनी सेवा में ले ले तो उसे मुगल राज्य की सीमा से दूर नियुक्त करें। औरंगजेब शिवाजी के विरूद्ध बीजापुर का सहयोग चाहता था किन्तु साथ ही यह भी चाहता था कि 1636 में शाहजहाँ द्वारा बीजापुर राज्य को दिया हुआ अहमदनगर राज्य का भाग भी मुगलों को वापस कर दिया जाये। ऐसी परिस्थिति में दक्षिण रियासतों का शिवाजी के विरूद्ध सहयोग प्राप्त करना असम्भव था। दक्षिण रियासतों और मराठों का सहयोग और साथ ही मराठा शक्ति और राज्य का विस्तार औरंगजेब के सामने सबसे बड़ी राजनीतिक समस्या थी, जिसका कोई हल वह अपने शासन के अन्त तक नही कर पाया। औरंगजेब की दक्षिण की नीति को प्रथम चरण में वह दक्षिण रियासतों के सहयोग द्वारा मराठों की शक्ति को सीमित करने या कुचलने का प्रथम चरण में वह दक्षिण रियासतों के सहयोग द्वारा मराठों की शक्ति को सीमित करने का प्रयास करता है तथा दूसरे चरण में वह दक्षिण रियासतों को हस्तगत करने के बाद मराठों पर अधिपत्य जमाने और उनकी शक्ति को नियंति करने का प्रयास करता हैं

[104] जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग V, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 269

अभियानों के बाद मिर्जा राजा जयसिंह ने एक नई नीति प्रतिपादित की। वह बड़ा ही कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। उसने पूरी नाकेबन्दी करके शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेर लिया और उसे सन्धि याचना के लिए बाध्य किया।[105] 17वीं शताब्दी में मराठों की शक्ति निरन्तर बढ़ रही थी। अकबर के दक्षिण की ओर अभियान के बाद दक्षिण रियासतों के शासक और मुगल सम्राट दोनों के लिए मराठों सरदारों की मैत्री और उनके फौजी दोस्तों का अनुप्रयोग महत्त्वपूर्ण हो गया। मलिक अम्बर की मराठा सरदारों के साथ मैत्रीय स्थापित करने की नीति सभी जगह मिलती है। मुगल सम्राट भी मराठा सरदारों के स्थानीय प्रभाव व मराठों की रण कुशलता को जानते थे। जहाँगीर के शासनकाल में उदती राय, तुलजी जादव इत्यादि कई प्रमुख मराठा सरदारों को शाही मन्सब प्रदान की गयी। 1629 ई. में जब शाहजहाँ ने अहमद नगर को समाप्त करने का अभियान प्रारम्भ किया उस समय मुगलों के साथ (पांच) पंच हजारी मराठा सरदार थे जबकि राजपूतों में केवल तीन को ही पंच हजारी मनसबे प्राप्त थी।[106] औरंगजेब के सिंहासन पर बैठने के फलस्वरूप शिवाजी में बीजापुर राज्य के बहुत से किले और इलाके हस्तगत करके शाहूजी की पूना जागीर का पर्याप्त रूप

[105] डा. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पृष्ठ सं. 174
[106] अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाह नामा, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 294, 322, 507

थी कि 'मुल्क की हिफाजत' करो। शिवा को जिसने मुल्क के कई किले पर कब्जा कर लिया था। उसे निकाल देने के लिये कहा। यदि तुम उनकी सेवाएं चाहते हो तो उसे मुगल सल्तनत से दूर कर्नाटक में जागीर दो ताकि वह (शिवा) शाही मुल्क में लूट मार न कर सके।[107] शिवाजी मुगल साम्राज्य की सीमा पर एक ऐसी शक्ति की स्थापना नही चाहते थे जो विस्तार वादी हो और जिससे साम्राज्य में शान्ति भंग होने का भय हो जाय। शाह जी की तरह शिवाजी भी कर्नाटक में एक बड़ी जागीर प्राप्त कर ले इस पर औरंगजेब को कोई आपत्ति नही थी।[108] औरंगजेब की हठधार्मिता कि अजीत सिंह को बालिग होने पर राज्य एवं मनसब प्रदान करने का वायदा स्पष्ट था। उन्होने देख लिया था कि राठौर इन्दरसिंह का साथ देने के लिए तैयार नही था। अतः विद्रोह प्रारम्भ होने के बाद उन्होने इन्दर सिंह को गद्दी से हटा दिया था। यह समझौते का आधार हो सकता था क्योंकि विद्रोह के पूर्व जसवन्त सिंह की बड़ी रानी, रानी हाडी से अनुरोध किया था कि इन्दर सिंह को टीका देने के बजाय कुछ दिन और मारवाड़ खालसा रहे।[109] 1681 ई. की सन्धि में अजीत सिंह का

---

107 यदुनाथ सरकार, हाउस आफ शिवाजी, कलकत्ता, 1919, चौथे, पृष्ठ सं. 95
108 डा. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 17
109 वाकया ए रणथम्भौर, पृष्ठ सं. 277-78

दावा एक प्रकार से मान लेने के बाद भी इस प्रश्न को टालने का कोई विशेष लाभ नही था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तराधिकार के प्रश्न की आड़ में औरंगजेब राजपूतों को दबाना और मुगलों की शान्ति का प्रदर्शन करना चाहता था। इसी नीति के कारण राठौर और सिसौदिया राजपूतों के साथ औरंगजेब का समझौता नही हो सका। राजा राजसिंह जजिया के बदले जब्त किये गये परगनों को वापिस प्राप्त करना चाहते थे। निरन्तर संघर्ष के बाद 1698 में औरंगजेब ने अजीत सिंह को टीका तो दे दिया किन्तु जोधपुर शहर को अपने अधीन रखा जिसके कारण राठौरों का संघप्र समाप्त नही हुआ।[110] राठौर और सिसोदिया राजपूतों के साथ इतने लम्बे संघर्ष से न केवल मुगल राज्य में जान एवं माल की हानि हुई मुगल साम्राज्य पर इसका प्रभाव अन्य रूप से भी पड़ा। राजपूतों का संघर्ष एक प्रकार से हिन्दू मुसलमानों का संघर्ष समझा जाने लगा। उसके कारण मराठों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होते तो शायद मराठों के साथ समझौते में भी आसानी होती। बीकानेर के राठौर व कोटा बूंदी के हाड़ा राजपूतों ने मुगलों को सहयोग दिया, किन्तु उनकी अपनी महत्ता औरंगजेब के दरबार मे प्रभावपूर्ण नही थी।[111] 1665 ई. में जयसिंह ने शिवाजी के साथ पुरन्दर की सन्धि की। उस समय शिवाजी का राजस्व 10 लाख हूण (50 लाख

---

[110] डा. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पृष्ठ सं. 16
[111] वही, पृष्ठ सं. 18

रूपया) का था। जिसमें से आधा पुराने निजाम शाही राज्य के उस भाग में जो 1636 की सन्धि में बीजापुर को दे दिया गया था। सन्धि के अनुसार निजाम शाही राज्य में बीजापुर को दे दिया गया था। सन्धि के अनुसार निजाम शाही राज्य में स्थित 35 किलों में से 23 किले जिनकी आय 4 लाख हूण की थी, मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गये और बाकी 12 किले जिनकी आय 1 लाख हूण थी। शिवाजी को प्रदान कर दी गयी। बीजापुर रियासत में से शिवाजी द्वारा विजित पांच लाख हूण की आय वाले क्षेत्र के ऊपर शाही फरमान द्वारा शिवाजी को मान्यता प्रदान कर दी गयी और यह गुप्त समझौता किया कि उसके ऊपर करना दिलाने के लिए मुगल फैज व शिवाजी मिलकर बीजपुर के ऊपर अभियान करेगें।[112] राजा जयसिंह की राज्य नीति पूर्णतः साम्राज्यवादी थी। वह एक बार में दो निशाने लगाना चाहता था। मुगल साम्राज्य की सीमा से शिवाजी को दूर हटाना और दक्षिण रियासतों के साथ मराठों के मैत्रीय सम्बन्ध तोड़कर मराठों का मुगलों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना उनकी धारणा थी कि यह दोनों उद्देश्य दक्षिण में एक अग्रसरवादी नीति अपनाने के सदर्भ मे ही पूरे किये जा सकते है। बीजापुर की विजय कर्नाटक और सारे दक्षिण की विजय का प्रथम चरण था क्योंकि राजा जयसिंह को पता था कि दक्षिण की विजय बिना मराठा मुगल मैत्रीय सम्बन्ध और स्वयं शिवाजी

[112] यदुनाथ सरकार, औरंगजेव, भाग 4, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 95

के मैत्रीय सम्बन्ध के बगैर असम्भव है।[113] पुरन्दर की सन्धि को औरंगजेब ने स्वीकृति प्रदान तो कर दिया किन्तु जयसिंह के द्वारा लागू नीतियों को पूर्णतः अंगीकृत नही किया। बीजापुर की विजय के लिए जितने साधनों की आवश्यकता थी उतना औरंगजेब ने जयसिंह को देने उचित नही समझा। 1665–66 ई. में बीजापुर का अभियान असफल होने पर जयसिंह को अपनी सारी दक्षिणी व मराठा नीति विफल होते दिखाई दी। बीजापुर अभियान पर इतना अधिक धन व्यय करने के बाद भी मुगलों को न तो भूमि मिली और न ही मुद्रा। इस बात पर औरंगजेब ने जयसिंह की भर्तसना की। जयसिंह ने किया कि औरंगजेब इसे ऊँची पदवी से गौरवान्वित करेगें तथा इस प्रकार मुगलों व मराठों के बीच मैत्रीय दृढ़ हो जायेगी और पुनः दक्षिण अभियान की योजना में सहायक होगीं लेकिन यह कार्य सिद्ध न हो सका। औरंगजेब ने शिवाजी को 5000 मनसब दे कर उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाई तथा पुरन्दर की सन्धि के अनुसार शिवाजी ने निजाम शाही क्षेत्र में स्थिति 23 किलों पर मुगल अधिकार बना रहे, किन्तु 4 लाख बीजापुर को दिलवाने का वायदा किया गया था उसे मुगल सहयोग के बिना स्वयं जो शिवाजी जीते। इस आधार पर शिवाजी का मुगलों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना असम्भव था।[114] मराठा

[113] डा. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं. 18
[114] इरफान हवीव, मध्यकालीन भारत भाग 1, पूर्वोद्धत, पृष्ठ सं. 148-149

आन्दोलन के स्वरूप और उसके साथ मैत्रीय सम्बन्ध स्थापित करने के महत्व को औरंगजेब कभी भी पूरी तरह नही समझा पाया। वह कई बार तैयार तो हुआ किन्तु जो रियासतें वह देना चाहता था। वह शिवाजी की आकांक्षा से कही कम थी। 1674 ई. में शिवाजी ने धूमधाम से अपना राज्यभिषेक किया। इसका तात्पर्य यह था कि उन्हे मुगल साम्राज्य के अधीन न रह कर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना अत्याधिक लाभप्रद था।[115]

[115] डा. सतीश चन्द्रा, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, पूर्वाद्धत, पृष्ठ सं. 20

षष्ठम् अध्याय

औरंगजेब का इतिहास प्रायः भारत का 50 वर्ष का इतिहास है। उसके शासनकाल में मुगल साम्राज्य का अधिकतम विस्तार हुआ। इतिहास के प्रारम्भ काल में ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण तक भारतवर्ष में इतना विस्तृत और एकत्र राज्य पहले किसी का नही था। औरंगजेब का जीवन वास्तव में महान विफलता थी, परन्तु उसकी विफलताओं में भी महानता थी। यह कहना कठिन है कि दोपहर के बाद सूर्य कितनी देर तक तेजी के साथ चमका रहता है, परन्तु यह सबका अनुभव है कि दोपहर की चमक काफी अर्से तक बनी रहती है, और फिर पता लगने लगता है कि तीसरा पहर आ गया है और संध्या होने वाली है। ऐसा ही हाल शाहजहाँ शासन के अन्त में मुगल साम्राज्य का हुआ था। अभी स्वर्णायुग का अन्त तो नही हुआ था, लेकिन औरंगजेब (1657 से 1707 ई.) के लम्बे क्राउन में यह दिखाई देने लगता है कि उस पर जंग लग गई है। औरंगजेब की मृत्यु पर अन्दर का लोहा दिखाई देने लगा। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि सुनहारी कब्र के अन्दर कीड़े भरे हुए थे, ऊपर चमक–दमक अवश्य थी, पर यह सोने की चमक नही थी। एक लेखक के अनुसार, औरंगजेब के 50 साल के शाही शासन में मालूम होने लगा कि स्थिति करवट ले रही है। राजकुमार के रूप में औरंगजेब बड़ा होनहार

प्रबन्धक और सेनानायक प्रतीत होता था। वह अपने प्रपितामह अकबर की भांति बहुत लम्बे समय तक सिंहासन पर रहा। इन दोनों में औरंगजेब का शासन का प्रारम्भ अधिक अच्छी स्थिति में हुआ था। जब अकबर को उत्तराधिकार मिला तब वह बालक था और उसकी स्थिति डांवाडोल थी, उसके साधन स्वल्प थे और विपत्तियां महान थीं। औरंगजेब के विषय में ऐसा नही था। उत्तराधिकार के समय उनकी उम्र 40 वर्ष की थी। उसका राज्य निश्चित था, सम्पत्ति विपुल तथा सेना विशाल व सुसज्जित थी। साम्राज्य में शान्ति थी और शासन–तन्त्र तीन पीढ़ी से चल रहा था, फिर भी औरंगजेब को सफलता नही प्राप्त हुई। इस असफलता का कारण उसका चरित्र था। यह एक ध्रुव सत्य है। कि साम्राज्य का भाग सम्राट के व्यक्तित्व की कीली पर घूम रहा था। हिन्दू व मुसलमानों में पारस्परिक सम्बन्धों के कारण नवीन जातियां व उपजातियां बन गयी। अन्तर्जातीय विवाह, स्थानीय रीति–रिवाजों तथा अन्य कारणों से भी नवीन जातियां व उपजातियां बनती रही। विशिष्ट एवं विशेष अधिकारों से युक्त जातियों के नीचे जन समुदाय का एक विशाल वर्ग जिसमें करोड़ो अछूत आते थे उनमें भी धीरे–धीरे नवीन जातियां व उपजातियां व्यवसाय के आधार पर उत्तपन्न हुई। इस प्रकार वे भी जाति के आधार पर विभाजित हो गये। इस्लाम उनके लिए भ्रातृत्व, समानता व एकता का सन्देश लेकर आया कि

सभी मानव समान है और उनमें किसी प्रकार का भेद भाव नही। धर्म व समाज में सभी बराबर हैं। इसमें आकर्षित होकर अधिकार विहीन निम्न वर्ग के हजारों लाखों हिन्दुओं ने अपना समाज छोड़ दिया और उनहोंने इस्लाम धर्म को ग्रहण कर भारतीय मुसलमान के रूप में नया जीवन प्रारम्भ किया। कुछ भारतीय मुसलमानों को उन्नति करते देखकर अन्य को प्रेरणा मिली और उन्होंने भी इस्लाम को स्वीकार करना श्रेयस्कर समझा। हालांकि बाद में उन्हें निराशा हुई होगी। धर्म परिवर्तन की इस हीन प्रक्रिया ने हिन्दू समाज को चुनौती दी। कुछ समय तक तो हिन्दू समाज के पास अपने ही समाज के निम्न वर्गों को देने के लिए कुछ भी नही था। किन्तु शीघ्र ही भक्ति आन्दोलन ने धर्म परिवर्तन की इस प्रक्रिया को रोक दिया। एकेश्वरवाद व निर्गुण ब्रह्म की उपासना, बाह्य आडम्बरों व मूर्ति पूजा पर प्रहार, संस्कृति के स्थान पर प्रादेशिक या जन–भाषाओं में सन्तों की वाणियों ने जाति–पांति के बन्धनों को ढ़ीला तो कर दिया वरन् समाज के दूसरे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ब्राह्मण वर्ग के महत्व एवं प्रभाव को पहले से अधिक कम कर दिया। अनेक ब्राह्मणों ने अपने पूर्वजों का व्यवसाय छोड़ दिया। जो ज्ञानी थे उन्होंने ज्योतिषशास्त्र व आर्युवेद अथवा अध्ययन व अध्यापन का व्यवसाय अपना लिया तथा शेष ने कृषि, बा ढांचा मे कोई परिवर्तन नही आया किन्तु आन्तरिक ढ़ांचा आन्तरिक एवं बाह्य

दबाव के कारण निरन्तर बदलता रहा। पंजाब से बिल्कुल भिन्न स्थिति उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों की थी। पंजाब में स्वायत्त राज्यों के संस्थापक मुख्यतः राज्य परिवारों के सदस्य थे किन्तु अन्य प्रदेशों में प्रवासित जातियों के सदस्यों ने ही स्वायत्त राज्यों की स्थापना की। औरंगजेब के शासनकाल से पूर्व हिन्दू समाज ज्यों का त्यों जातियों व उपजाजियों मे विभाजित था। मुसलमानों के आगमन के पश्चात से ही इस समाज के आन्तरिक ढांचे में कुछ परिवर्तन होने लगे। मुसलमानों का प्रभुत्व बढ़ता गया व क्षत्रियों की पराजय व अनेक राज्य समाप्त होने लगे थे। हिन्दू समाज की पुरानी मान्यताएं व वर्ण व्यवस्था जो समाज का मुख्य आधार थी। क्षत्रिय जो हिन्दुस्तान के शासक थे और नौकरशाही व शासक वर्ग में उनका प्रमुख सथान था। उनके पतन के उपरान्त ब्राह्मणों की स्थिति उनके सामाजिक एवं वैधानिक अधिकारों एवं उनके सामाजिक प्रभाव में गहन परिवर्तन हुआ। हिन्दू समाज के कुछ वर्गों में उसका प्रभाव पहले की उपेक्षा अत्यधिक बढ़ गया और उन्होंने जाति नियमों तथा खान पान पर प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें जटिल बना दिया तथा ऐसे विधि विधान व कर्म काण्ड की सूची की जिससे अशिक्षित हिन्दू समाज का विशाल वर्ग उस भव सागर को पार करने के लिए और परलोक में सुख से बैठने के लिए आश्रित हो जाय। इस समाज ने छुआ छूत को अत्यधिक जटिल बना

दिया ताकि हिन्दू समाज के बाह्य ढॉचे में कोई विशेष परिवर्तन न आ सके। इस बारे में चर्चा करना अत्यधिक कठिन है कि इस काल में कितनी जातियाँ व उपजातियाँ ब्राह्मणों व क्षत्रियों वैश्वों तथा शूद्रों के अतिरिक्त अन्य नवीन जातियों में थी। क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने स्रोत से बाहर खान पान व विवाह नही करना चाहता था। निकोलो कोन्टी के अनुसार पूर्वमध्यकाल में 84 जातियाँ थी। अन्य स्रोतों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य व्यवसायिक वर्गों के अतिरिक्त इस काल में 36 जातियाँ थी। व्यवसायिक वर्गों में मदिरा बनाने वाले कल्लल, स्वर्णकार जुलाहे पान बेचने वाले, लोहार गड़रिये, दूध बेचने वाले, बढ़ई धातुकार भाट, अहीर, कुम्हार, काछी, माली, तेली, नाई, नट, गायक, विवरण, नर्टक, रंगरेज, छपाई करने वाले तथा विभिन्न व्यवसायों में लगे लोग थे। जिनकी गणना करना सुलभ नही है। हिन्दू व मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों के कारण नवीन जातियों व उपजातियाँ बन गयी। अर्न्तजातीय विवाह, स्थानीय रीति रिवाजों तथा अन्य कारणों से भी नवीन जातियां व उपजातियां बनती रही। विशिष्ट एवं विशेष अधिकारों से युक्त उत्तम जातियों के नीचे जन समुदाय का एक विशेष वर्ग जिसमें करोड़ो अछूत आते थे। उसमें भी धीरे–धीरे नवीन जातियों व उपजातियां व्यवसाय के आधार पर उत्पन्न हुई। इस प्रकार के भी जाति के आधार पर विभाजित हो गये थे। इस्लाम उनके

लिए मातृत्व समानता व एकता का संदेश लेकर आया कि सभी मानव समान हैं और उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नही है। धर्म व समाज में सभी बराबर हैं। इससे आकर्षित होकर अधिकार विहीन निम्नवर्ग के हजारों लाखों हिन्दुओं ने अपना समाज छोड़ दिया और इस्लाम ग्रहण करके भारतीय मुसलमान के रूप में नया जीवन प्रारम्भ किया। हिन्दू धर्म परिवर्तन की इस नयी प्रक्रिया ने हिन्दू समाज को चुनौती दी। कुछ समय तक तो हिन्दू समाज के पास अपने समाज के निम्न वर्ग को छोड़ देने के लिए शेष कुछ भी न था। परन्तु शीघ्र ही भक्ति आन्दोलन ने धर्म परिवर्तन की इस प्रक्रिया को रोक दिया। एकेश्वरवाद व निर्गुण ब्रह्मा की उपासना बाह्य आडम्बरों व मूर्ति पूजा पर प्रहार संस्कृत के स्थान पर प्रादेशिक जन भाषाओं में संतों की वाणियों ने जात पात के बन्धनों को ढ़ीला तो कर दिया तथा साथ ही समाज के दूसरे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ब्राह्मणों ने अपने पूर्वजों का व्यवसाय छोड़ दिया। योग्य ब्राह्मणों ने ज्योतिष शास्त्र व आयुर्वेद का अध्ययन व व्यवसाय अपना लिया। अन्य अतिरिक्त वाणिज्य व व्यापार को अपना व्यवसाय बना लिया। अतः हिन्दू के बाह्य ढ़ांचे में कोई परिवर्तन नही आया। हिन्दू समाज की मुख्य विशेषता थी जाति और उपजाति जैसी कि वह आज भी है। हिन्दुस्तान की रूढ़िवादी और लोक प्रिय परम्परा में ऐसी 36 जातियां बतायी गयी हैं जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों

और वैश्यों को उपजातियों के अतिरिक्त अन्य अलग–अलग व्यवसायी जातियां जैसे– शराब बनाने वाले, स्वर्णकार, जुलाहे, कसेरे, गड़रिया, ग्वाले, बढ़ई, लुहार, भाट, अहीर, कायस्थ, रंगरेज, माली, कपड़ा, चित्रित करने वाले, नाई तेली, बाजीगर, बहुरूपिये, संगीतकार और अन्य भी सम्मिलित थे। भारतीय समाज में हिंन्दू धर्म की अपेक्षाकृत ऊँची श्रेणी में रखी जा सकने योग्य इन सब जातियों के नीचे लाखों अछूतों आते हैं। जो स्वतः अपनी जातियों में विभाजित हैं। यद्यपि स्पष्टयता की भावना उत्तर में दक्षिण के समान उत्कृट नही थी, उसके अस्तित्व और अछूतों के प्रति उच्च वर्ग की बहिष्कार पूर्ण भावना के प्रति सन्देह नही किया जा सकता। सामाजिक और आर्थिक तत्व जाति प्रथा की कठोरता कम करने के लिए हिन्दू धर्म की पुरानी ऊँची जातियों की स्थिति और सुविधाओं में परिवर्तन करने हेतु कार्यरत थे। इन तत्वों में एक था इस्लाम का पदापर्ण। इस्लाम में धर्म परिर्वतन का मुख्य स्थान होने के कारण और उनके अनुयायिओं में सामाजिक समानता और भाई चारे का आश्वासन के कारण हिन्दू समाज के निम्न वर्ग के स्वागत हेतु इस्लाम के द्वार खुल गये। यह आमन्त्रण उनके द्वारा समाज में दिया गया जो कि स्वयं भारत का भाग्य विधाता था। इस्लाम के घेरे में उनके हिन्दुओं के चले जाने के कारण हिन्दू धर्म को हानि उठानी पड़ी। उच्च वर्ग को इस धर्म में रोकने के लिए कुछ

रियायतें देकर इस धर्म के उफनाते ज्वार को रोकने का प्रयत्न किया। हिन्दू समाज में निम्न वर्ग को आधार प्रदान करने के लिए उसके पास कुछ नही था, जिससे वे अपने लिए एक नवीन जीवन दर्शन का निर्माण करने लगे। एक लोकप्रिय उदार और सहिष्णु धर्म हिन्दुस्तान में फैलने लगा। जिससे विदेशी मूल के अधिक प्रजा तांत्रिंक धर्म विश्वासों से प्रेरणा मिली। 'कर्म' और 'ज्ञान' के प्राचीन विश्वास के विरूद्ध इस नवीन धर्म का आधार (भक्ति) आश्रम से घिरे जीवन की अवधारणा को नष्ट कर दिया। हिन्दू जाति एवं व्यवसाय पर आधारित था। वर्ण व्यवस्था के अनुसार हिन्दू समाज चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में मिला–जुला था। वर्णों का यह विभाजन व्यवसाय पर आधारित था। इस काल में कर्म या व्यवसाय के सिद्धान्त का अनुकरण चार वर्गों में से किसी ने पूर्णतः नही किया। बदलती हुई परिस्थितियों में जब कि देश भर में शासकों व समान्तों के मध्य संघर्ष शासकों के मध्य युद्ध तथा बाह्य आक्रमण हो रहे थे और सभी प्रकार की अवधारणों का परिवर्तन होना नितान्त आवश्यक हो गया था जिसके कारण वर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए। हिन्दू समाज में चिर काल से ब्राह्मण का स्थापन सर्वोपरि था। उसका मुख्य व्यवसाय धार्मिक ग्रन्थों व धर्म शास्त्रों का अध्ययन करना, व्रत उपवास, उपासना, साधना योग करना तथा हिन्दू धर्म शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट कर्मकाण्ड को लागू करना

विद्या अर्जन करना, हिन्दू संस्कारों का पालन करना व करवाना तथा विद्या व ज्ञान का प्रचार करना था। इस काल में ब्राह्मणों ने धर्म शास्त्र की पुरानी पाण्डलिपियों का पुनः विश्लेषण कर मानव जीवन से सम्बन्धित संस्कारों की व्याख्या करके अपनी अपनी शक्ति को बनाये रखा। उन्होंने जो टीकायें एवं विधि शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि वे अब भी हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित विद् थे। भारतीय समाज में ब्राह्मण का प्रमुख कर्म वेद व वेदान्त तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं का अध्ययन करना था। दर्शन व धर्म में उनकी रूचि और उनके विचारों की श्रेष्ठता को समाज के वर्गों ने स्वीकार कर लिया था। एक आदर्श ब्राह्मण दानदाता को वेद के अध्ययन में लगे रहना चाहिए। धार्मिक नियमों का पूर्ण पालन करना चाहिए। भारतीय समाज में ब्राह्मण उच्च जाति के थे प्राचीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उनका जन्म ब्रह्म में ब्राह्मण्ड से हुआ था। चूँकि का अर्थ प्रकृति से है और सिर ही शरीर का सबसे मुख्य भाग है अतएव हिन्दू उन्हें समस्त जीव जगत का सर्वोत्तम प्राणी मानते हैं। धर्म पर उनका अत्यधिक एवं अधिकार था। वे न केवल लोगों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे वरन् मानव व ईश्वर के मध्य की कड़ी थे। इसमें कोई सन्देह नही है कि मुगल सरकार के सभी कार्यकर्ता विदेशी थे। अकबर के शासनकाल में भी 70 प्रतिशत बड़े–बड़े अफसर

फारसी तुर्की, उपबेग और अफगानिस्तान थे और केवल 30 प्रतिशत ही भारतीय मुसलमान और हिन्दू थे। यद्यपि अकबर ने हिन्दुओं के लिए सरकारी नौकरियों का द्वार खोल रखा था, किन्तु वास्तव में बहुत कम हिन्दू सरकारी नौकरियों में नियुक्त किये गये थे। अकबर ने 40 वर्ष में 500 और उसके ऊपर के मनसबों पर केवल 21 हिन्दू नियुक्त किये, जिसमें 17 तो आमेर, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर और बुन्देलखण्ड के राजपूत थे। यद्यपि अकबर के शासनकाल के बाद मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ प्रारम्भ हो चुका था, तथा सभी मुगल सम्राटों की शाही नौकरियों में हिन्दुओं की संख्या बहुत कम हो गयी थी। नवम्बर 1665 में औरंगजेब ने गुजरात प्रान्त में घोषणा जारी की कि अहमदाबाद नगर और गुजरात के परगनों में हिन्दू लोग अन्ध विश्वास के साथ दीपावली पर दीपक जलाते हैं, और होली पर अश्लील बातें मुख से निकालते हैं। चकलों और बाजारों में होली जवाते है और चुराकर या बलपूर्वक लोगों की लकड़ियां उसमें डाल देते हैं, इसलिए आदेश दिया जाता है कि दीवाली पर बाजारों में कोई रोशनी नही की जाय, और किसी की लकड़ियां को चोरी या जबरजस्ती लेकर होली में न डाली जाय एवं अश्लील भाषा का प्रयोग नही किया जाय।'' यद्यपि होली के सन्दर्भ में जो आदेश था अच्छा था लेकिन साथ ही दीवाली की रोशनी का निषेध करने से हिन्दुओं की

भावनाएं उत्तेजित होनी ही थी। औरंगजेब ने धार्मिक शिक्षकों को दण्डित करने का आदेश भी जारी कर दिया, जिसका अपराध केवल अपने पास आये शिक्षार्थियों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करना था। जहाँ तक हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्धों एवं उनकी धार्मिक नीति के बारे में यदि देखा जाय तो अकबर को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों ने हिन्दू धर्म को लताड़ा है, जबकि औरंगजेब सम्पूर्ण जयपुर के मन्दिरों को नष्ट करने के लिए अस्वुतरिण नामक एक प्रतिनिध को भेजा, उसने कुशलतापूर्वक सब मन्दिरों को तोड़ दिया केवल एक मन्दिर में विरोध हुआ क्योंकि वह फौजदार के सैनिको का मन्दिर था। और उसे तब तक न तोड़ सके जब तक कि सभी राजपूत मृत्यु के ग्रास नही बन गये। औरंगजेब के अधिकार पत्र में उसने घोषित किया कि उसका धर्म नये मन्दिर बनाने की आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरों को न्ष्ट करने की आज्ञा नही देता है। सन् 1644 ई. में जब वह गुजरात का सूबेदार था, तो उसने अहमदाबाद में तत्काल बने हुए चिन्तामण के हिन्दू मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया। उसी समय उसने गुजरात के और भी हिन्दू मन्दिर को गिरवाया था। अपने शासन काल के प्रारम्भ में ही औरंगजेब ने एक हुक्म निकाला था कि कटर से लेकर मेदिनीपुर तक उड़ीसा के प्रत्येक गाँव और शहर के प्रत्येक हाकिमों को सारे मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी थी । औरंगजेब के

शासकीय वर्षों की गिनती करने के लिए सूर्य सम्बन्धी इलाही सम्वत् का प्रयोग बन्द कर दिया गया। किन्तु हिजरा के चन्द्र सम्वत् के प्रयोग से प्रशासन के कार्यो में अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होने लगी। अतः यह निर्णय किया कि प्रत्येक शासकीय वर्ष का प्रारम्भ रमजान मास की प्रथम तिथि से किया जाय। आलमगिरी में इलाही सम्वत का प्रयोग मिलता है। अब उनकी विनाशकारी कुदाल शोमनाथ के दूसरे मन्दिर बनारस में विश्वनाथ जी के मन्दिर और मथुरा में केशवराय जी के मन्दिर के समान बड़े मन्दिर पर भी पड़ी। जिन्हें सारे भारत में हिन्दू जनता बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। मुसलमानों की धर्मान्धपूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष रूप से आघात होते रहे हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले मार्ग पर स्थित होने के कारण मथुरा की ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँ के हिन्दुओं को दबाने के लिए औरंगजेब ने अब्दुलनवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। कई वर्ष पहले दारा ने उपहार स्वरूप मथुरा के केशवराय मन्दिर में पत्थर का जगमोहक जंगल जगवा दिया था, लेकिन यह बात 14 अक्टूबर 1666 ई. को औरंगजेब को ज्ञात हुआ उसने तत्काल ही हुक्म दिया कि उस जंगलों को वहाँ से हटा दिया जाय। साम्राज्य के सारे सूबों परगनों शहरों और महत्वपूर्ण स्थानों में जनता के

सदाचार की देखरेख करने के लिए मुहतासिब नियुक्त किये गये। ब्राह्मणों की त्रुटियों के कारण समस्त हिन्दू धर्मानुयायियों के पूजा स्थलों का विध्वंश करना घोर अनाचार था। इस कारण इसे अकबर की भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करने की योजना धमिल हो गयी इसी नीति ने मुस्लिम शासकों को भारत में पुनः इस्लाम के खंड़गधारी ने विजेता बना दिया। औरंगजेब नेक हिन्दू धर्म के विरूद्ध जिन दमनकारी नीति को आरम्भ किया वह निशचित रूप से भारत अन्य स्थानों के पूर्वकालीन मुस्लिम शासकों की परम्पराओं के विपरीत थी। अतः वे भागकर जोधपुर राज्य मे पहूँचे। महाराज जसवन्त सिंह उस समय शाही अभियान पर राज्य से बाहर गये हुए थे और उनकी अनुपस्थिति में राज्य के अधीनस्थ अधिकारियों ने अपने को इस योग्य नही समझा कि वे उस प्रभु को आश्रय दे सकें तो जो तत्काल ही मुगल सम्राट को क्रुद्धकर चुका था। मन्दिर के पुजारी दामोदर लाल ने गोपीनाथ को महाराज जयसिंह के पास यह प्रार्थना करने के लिए भेजा कि प्रभु को इतना स्थान दिया जाय, जिससे वे शान्तिपूर्वक अपने धर्म की सेवा कर सके। सिसोदिया राजकुमार ने दामोदर लाल को आमंत्रित किया और 5 दिसम्बर 1671 ई. को यह दल चप्पा सेनी से विदा हो गया। महाराज राजसिंह ने राज्य की सीमा पर राजकीय ढ़ंग से इस दल का स्वागत किया और भगवान को सिहर नामक स्थान पर

धार्मिक समारोह के साथ स्थापित करने का निश्चय किया गया। दिसम्बर 10 मार्च 1672 ई. का केन्द्र बना हुआ है। सितर का लघुगांव द्वारनाथ के नाम से एक महत्वपूर्ण नगर में पारित हो गया। इसमें सन्देह नही कि यदा–कदा साधारण सद्बुद्धि की तर्क पर गैर राजनैति की धर्म पर विजय हो जाती थी। कई बार सम्भाव कि दुर्बलता के कारण हर एक सम्राट या हाकिम के लिए यह असम्भव हो जाता था कि वह इस भयंकर सहिष्णुतापूर्ण नीति का सर्वत्र एवं सदैव शक्ति से पालन करवा सके। इसी कारण मुसलमानी शासनकाल में कई बार ऐसे भी समय आये जब हिन्दुओं के साथ सहिष्णुता की नीति बरती गयी और उनके जानमाल की पूरी–पूरी रक्षा की गयी। यदा–कदा कई बुद्धिमान और उदार विचार वाले बादशाहों ने हिन्दुओं को प्रोत्साहन भी दिया, साहित्य एवं कला की उन्नति करने के लिए उनको प्रेरित किया, धन एवं ऊँचे पद प्रदान किये और वे उनका राज्य अधिक शक्तिशाली और समृद्धिपूर्ण हो गया। परन्तु इस प्रकार अपने धर्म के प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद स्परूप यदा–कदा ही देख में आता था। इस प्रकार की सारी कार्यवाही मुस्लिम संसार की दृष्टि से इस्लाम के सच्चे सिद्धान्तों के विरूद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासन के प्रधान कर्तव्यों की अक्षम्य दृष्टापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी। मुसलमान शासक की सारी सत्ता मुसलमानी तलवारों पर

ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार विचार वाले सुलतानों को ये मुसलमान सैनिक ऐसा धर्म द्रोही शासक समझते थे। जो किसी भी तरह उन पर शासन करने के योग्य नही था। इसलिए गैर मुसलमानों की वृद्धि एवं उन्नति एवं निरन्तर उनका अस्तित्व बना रहता है मुसलमानी राज्य का आधारभूत तत्व था। ऐसे समय हिन्दुओं से यह आशा रखना कि भरसक प्रत्यन कर वे उत्पादन को पूरा–पूरा बढ़ा देंगे व्यर्थ ही था। अपने शासकों के यहाँ पानी भरना या लकड़ी चीरना ही भाग्य में था। पैसा कमा कमाकर राज्य को सौंप देना ही उनका प्रधान कर्तव्य था। अपनी गाढ़ी कमाईयों से जो कुछ भी बचाया जा सके उसे बचाने के लिए वे निकृष्ट कोटि की चालाकी और चापलूसी को अपनाने में हिचकिचाते न थे। इस प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में किसी मानव का शारीरिक और मानसिक विकास होने तथा उनका उच्चतम योग्यता प्राप्त करना एक असम्भव बात थी। मानवीय आत्मा भी अपनी चरम सीमा तक विकास नही हो सकता था। मुसलमानी ज्ञान और चिन्ता के क्षेत्र में हिन्दू कुछ भी नही कर पाये एवं उच्च जातीय हिन्दुओं में अवांक्षछनीय कुत्सित नीच प्रवृत्तियाँ आ गयी। ये दो बाते ही उनके शासन की निन्दा के लिए प्रर्याप्त है। जो फल पका उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारत में मुसलमानी राजनैतिक वृक्ष सर्वथा निरर्थक ही साबित हुआ। एक आधुनिक महापण्डित जर्मन तत्वेन्ता का

कथन है कि "इस्लाम धर्म के अनुसार" ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण आत्मा और उसके सामने पूरी–पूरी दीनता स्वीकार करना आवश्यक होता है, परन्तु उनका इस्लाम अपने अनुयायियों के सच्चे हितों की उन्नति में भी सहायक नही हो सका। इस्लाम की इस राजनैतिक के अनुसार इस धर्म पर "विश्वास करने वाले" सारे अनुयायी एक ऐसी संस्था के अंग समझे जाते थे जिसका एक मात्र आदर्श और कार्य युद्ध ही होता था। जब तक जीतने के लिए नए–नए स्थान और लूटने के लिए नित्य नये धनवान काफिर मिलते थे, तभी तक इस राज्य में सब खैरियत रहती थी। उस समय तक ही एक विशेष प्रकार की चित्रकला, साहित्य उद्योग धन्धों तथा अन्य कलाओं को आश्रय मिलता था, परन्तु जब मुसलमानी राज्य विस्तार की चरम सीमा तक फैलकर असम और चढ़गाँव की पहाडियों पर जा टकराया तथा महाराष्ट्र की शुष्क चट्टानों को राह ये हटाने का विफल प्रयास होने लगा तब तो एक बारगी पतन से बचाने का साधन ही नही रह गया। राज्य का कोई भी स्थायी आर्थिक आधार नही था और शान्ति के समय अपने अस्तित्व को बनाये रखने में वह असमर्थ ही रहा। इन विजेताओं में वह योग्यता बिल्कुल ही नही थी, कि वे शान्ति युग में उद्योग धन्धों में पूरी तरह से लोग जावें और तब भी निरंन्तर चलने वाले इस अनिवार्य जीवन संग्राम में सफलतापूर्वक टिक सके। उनके लिए शान्ति का अर्थ होता था।

बेकारी दुष्परिणाम, कुकर्म एवं घोर पतन। इस्लाम के निश्चित सिद्धान्तों का अन्तिम और एक मात्र परिणाम यही होता था, कि मुसलमान धर्मावलम्बियों को विशेष अधिकार प्राप्त जाति का स्थान मिल जाता था। दारा ने कई वर्ष पूर्व उपहार स्वरूप मथुरा के केशवराम के मन्दिर के पत्थर का जगमोहक जंगला लगवा दिया। औरंगजेब को इसका पता 14 अक्टूबर 1666 ई. को चला तो उसने तत्काल आदेश देकर उस जंगले को वहाँ से हटवा दिया था। जनवरी 1670 को इस मन्दिर को बिल्कुल ही विध्वंस कर देने की आज्ञा दी। हिन्दुओं तीर्थों और मन्दिरों का विध्वंस कर उसे तहस–नहस करने के लिए साम्राज्य के सभी सूबों एवं परगनों, शहरों तथा महत्वपूर्ण स्थानों पर मुहतसिब की नियुक्त की गयी। जून 1680 ई. में राज्य के स्वामिभक्त राजा की राजधानी के सारे मन्दिर तुड़वा डाले गये। गुजरात में धर्मार्थ के रूप में दी गयी राशि जमीन 1674 ई. में जब्द कर ली गयी। औरंगजेब ने राजा जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त औरंगजेब ने दिल्ली के निकट ललित मन्दिर को गिरवा दिया था। देवगढ के जमीदार के एक भाई ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और और उसे इस्लाम न्यार का नाम कर दिया गया। वर्तमान प्रमुख हटाकर उसको वहाँ का जमींदार बना दिया गया। इस जागीर ने तत्कालीन मुसलमानों की संख्या बढ़ाने में एक उत्साहवर्धक उदाहरण का कार्य किया। ओरार सिंह एवं श्याम सिंह ने

शासनकाल के सोलाहवें वर्ष के 15 रमजान को इस्लाम स्वीकार करने पर चौकागढ़ का संयुक्त प्रमुख बना दिया गया। रामगढ़ के अमीन और फौजदार लाजपत को राज्य का कुछ ऋण चुकाना था, और वह उसकी अदायगी की व्यवस्था नही कर सका अतः उसे बन्दी बना लिया गया। बन्दी खाने में उसे सत्यधर्म (इस्लाम) का ज्ञान उदय हो गया तो उसने इस्लाम स्वीकार करने को तत्पर था, अतः उसे मुक्त कर दिया गया। 15 जनवरी 1704 ई. में उसे दरबार में उपस्थित किया गया तथा सम्राट स्वयं उसे सत्यधर्म अर्थात इस्लाम धर्म में शामिल किया। उसके सारे अपराध समाप्त करके उसे मनसब 250 से बढ़ाकर 400 कर दिया गया।हिन्दू सौदागरों से पुराने नियम से कर लिया जाता था। इससे राज्य की वास्तव में अत्यधिक हानि की सम्भावना और भी बढ़ गयी, क्योंकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानों को प्रलोभन देकर अपने माल को उनका कहकर निकलवा देने की चालाकी को प्रेरित करने लगे थे। चन्दा नामक एक व्यक्ति 26 जनवरी 1670 ई. को एक आवेदन किया कि वह बुद्ध प्रकाश का सगोत्र (बन्धु) है, और यदि उसे जमीदारी प्रदान कर दी जाय तो वह मुसलमान बनने के लिए तैयार है। औरंगजेब ने इस धर्म त्यागी को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो गया किन्तु उसके मंत्री असद उल्ला खाँ एक निर्दोष जमींदार को अन्यायपूर्वक पदच्युक्त करने का विरोध किया।

औरंगजेब के पत्र से एक और घटना का ज्ञान प्राप्त हुआ, कि राजा इस्लाम खाँ हिन्दू छोड़कर मुसलमान बना हुआ था। और इस पद पर नियुक्ति की शर्त बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है। हिन्दुओं का राजस्व एवं लेखा विभाग के निम्न पदों पर एकाधिकार था जबकि मुसलमान उस निम्न पद को प्राप्त नही कर सकते थे। साम्राज्य में सरकारी नौकरियों के लिए वे सेना में भर्ती होना अच्छा समझते थे । अन्य अतिरिक्त विभागों के निजी सहायक प्रायः हिन्दू थे। औरंगजेब के शासनकाल में कुल 148 हिन्दू मनसबदार की तुलना में शाहजहाँ के काल में 51 हिन्दू मनसबदार कम नही कहे जा सकते क्योंकि शासन के तीस वर्ष के अन्त में अब हिन्दू मनसबदार जीवित थे। महाराजा जसवन्त सिंह और राजा जयसिंह के जीवित रहने पर औरंगजेब हिन्दुओं के दशहरे के समारोह में भाग लेता रहा। सरकारी इतिहास–कार इसे हिन्दुओं की ईद की संज्ञा दी थी। इस समारोह में औरंगजेब दरबार में उपस्थित हिन्दू राजाओं को उपहार प्रदान करता था। हिन्दू राजाओं के पदासीन होने पर जब नया राजा दरबार में उपस्थित होता था तो सम्राट मस्तक पर टीका लगाता था। शाहजहाँ के कार्यकाल में यह कार्य प्रधानमंत्री को सौंपा गया था परन्तु 1679 ई. में इस प्रथा पर औरंगजेब पूर्णतः रोक लगा दिया था। औरंगजेब ने अपने शासन के 12 वें वर्ष गृहशास्त्रियों तथा ज्योतिषियों को

विद्वानों के मार्ग दर्शन से वंचित हो रहे थे। ज्योतिषियों से कि ये वेतन सम्बन्धी सारणी तैयार करना तथा विभिन्न विभागों को ठीक परिणाम से वेतन वितरण में सहायता करते थे। दूसरा कि वे अन्य कार्यों के शुभ दिन का मुहूर्त करते थे। लेकिन हिन्दू ज्योतिषी हिन्दू रीति से ही कार्य करते थे। अतः उन्हे पदच्युत करके उनके स्थान पर मुगल ज्योतिषी की नियुक्ति की गयी, किन्तु इस पदच्युत का पूर्ण पालन नही हुआ। क्योंकि 5 नवम्बर 1671 ई. को औरंगजेब ने ज्योतिषियों से अपने–अपने दिल्ली प्रवेश का शुभ दिन पूछा तो उन्होंने 26 नवम्बर निश्चित किया तथा इस तिथि को स्वीकार कर लिया गया। 1702–1703 ई. को पंचांग बनाना भी निषिद्ध कर दिया गया था। हिन्दू एवं मुसिलम मेले पर पशु, पक्षियों, स्त्रियों की मिट्टी की मूर्तियां बच्चों के मनोरंजन के लिए बनायी जाती थी। जीवित प्राणियों का इस प्रकार का प्रतिनिधित्व इस्लामिक ढ़ंग से अवैध समझा जाता था। अतः 1665 ई. से इस प्रथा पर रोक लगा दिया गया। बृहस्पतिवार को सन्तजनों के मकबरे पर दीप जलाया जाता था। औरंगजेब ने इस प्रथा पर रोक लगा दिया था। उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि औरंगजेब ने अपने शासनकाल में हिन्दुओं को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया था।

शासनकाल से पूर्व जकात, जजिया खराज, खुम्स इत्यादि करों को वसूल किया जाता था। जकात कई अर्थों में उपयुक्त होता था, जैसे पशुकर निर्यातकर अर्थात व्यापारिक वस्तुओं को चूँगी सोने चाँदी के कर एवं भूमिकर के रूप में जकात की वसूली बल पूर्वक करना धर्म विरूद्ध था। सम्पत्ति के विषय में दो शर्तों पर जकात देना पड़ता था। एक सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति का पूरे एक वर्ष उपभोग करने पर ही वर्ष के स्रोत में उसे जकात देना होता था। दूसरा प्रमुख कर खराज था। जो गैर मुसलमानों से वसूल किया जाने वाला भू–राजस्व था खराज देने वाली भूमि को यदि मुसलमान जोतता था तो उससे खराज लिया जाता था। भूमिकर प्रायः उपज का 1/3 से और 1/2 से अधिक नही लिया जाता था। तीसरा प्रमुख कर खुम्स था वस्तुतः वह लूट का धन का जो युद्ध में शत्रु राज्य की जनता से लूटा जाता था। लूट का 4/5 भाग सैनिकों में बाँट दिया जाता था और 1/5 भाग राजकोष में जमा होता था। किन्तु अलाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद तुगलक ने 4/5 भाग राजकोष में दिया और शेष 1/5 भाग सैनिकों में बाँटने का विवरण प्राप्त होता है। चौथा प्रमुख कर जजिया का था जिसकी वसूली गैर मुसलमानों से की जाती थी। जजिया को औरंगजेब ने अपने शासनकाल में दुबारा लागू कर दिया

कर था। 712 ई. में मुहम्मद बिन–कासिम ने सिंध पर अधिकार करने के बाद वहाँ जजिया लागू कर दिया। जजिया न अदा करने वाले हिन्दुओं को जिम्मी का दर्जा दिया जाता था या इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया जाता था। जजिया मुहम्मद गजनवी एवं मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय ज़जिया वसूल किया जाता था, या नही इसका कोई उल्लेख नही मिलता है। सल्तन काल में प्रत्येक हिन्दुओं को जजिया देना अनिवार्य था। इस कर को लगाने के लिए हिन्दुओं को तीन वर्गों में उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार बाँटा गया था। प्रथम दो वर्ग के हिन्दू 48 दिरहम, द्वितीय वर्ग के हिन्दू 24 दिरहम और तृतीय वर्ग के हिन्दू 12 दिरहम अदा करते थे। साधु संन्यासियों, बच्चों स्त्रियों को जजिया से मुक्त किया गया था। लेकिन फिरोज शाह तुगलक का मत था कि ब्राह्मण ही कुफ्र या हिन्दू धर्म के संरक्षक थे। अतः उसने उन पर जजिया लगा दिया था। सन् 1679 में औरंगजेब द्वारा जजिया को दुबारा लगाया जाना भारत में मुगल साम्राज्य के इतिहास में एक मोड़ का घोतक है। जिसने औरंगजेब के सामने एक सुस्पष्ट मुस्लिम राज्य की ओर प्रत्यावर्तन द्वारा मुसलमानों की निष्ठा का आवाह्न करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नही

शत्रुता तथा विशेषाधिकार की भावना के विकास को जजिया पुनः लगाने का मुख्य कारण माना जाता है। फिर भी इस कार्रवाई को समझने के लिए साम्राज्य के राजनैतिक और आर्थिक विकास क्रम दरबार की धार्मिक प्रवृत्ति और विशेषरूप से राज्य के स्वरूप से सम्बन्धित विवाद को ध्यान में रखना आवश्यक है जो भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के समय से ही रूप और दृष्टि के कुछ परिवर्तनों के साथ चला आ रहा था। पहले औरंगजेब द्वारा जजिया के पुनरावरोपण पर कुछ समकालीन और समकालीनों के बाद के प्रेक्षकों की व्यवस्था की जाँच कर ली जाय। मुहम्मद खाफी मुस्तैद खांन जिनका लेखन अधिकारित दस्तावेजों पर आधारित है और जो एक प्रकार से औरंगजेब के शासन का अधिकारित इतिहासकार माना जा सकता है क्योंकि धार्मिक बादशाह का उद्देश्य इस्लामी कानून का प्रचार कई प्रकार के वक्तत्प अधिकारित दृष्टिकोण के प्रस्तुत करते हुए माने जा सकते हैं। राजकीय घोषणाओं में जजिया के पुनः लगाने का कारण स्वाभाविक रूप से सच्चे विश्वास के लिए बादशाह की श्रद्धा और धर्मतत्वज्ञों और विद्यानों आदि की राय के प्रति उसके सम्मान को बताया गया होगा। मगर यह इस बात की व्याख्या नही करता कि बादशाह को जो स्वयं शरियत में दक्ष था, राज्यारोहण के बाद जजिया

के सम्बन्ध में इस कट्टर स्थिति तक पहुँचने में बाइस वर्ष लगे जो प्रमाणिक उलमा द्वारा बार–बार प्रतिपादित की गयी थी जिसमें पर्याप्त स्पष्टता थी। समकालीन यूरोपीय यात्री और भारत में नियुक्त व्यापारी कम्पनियों के प्रतिनिधि इस कार्रवाई की थोड़ी भिन्न व्याख्या देते है। सूरत में अंग्रेजी कारखानों के खजाने को भरने के लिए ही नही बल्कि आबादी के गरीब हिस्सों को मुसलमान हो जाने के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से भी जजिया बड़ी सख्ती से वसूल किया जाता था। पच्चीस वर्ष बाद मैनक्सी ने इसी कारणों पर जो देते हुए कहा :– जसवंत सिंह की मृत्यु से औरंगजेब के सामने हिन्दुओं पर और अधिक अत्याचार करने का रास्ता खुल गया क्योंकि अब उनकी रक्षा के लिए कोई शाहसी और शक्तिशाली राजा नही रहा था। उसने हिन्दुओं पर कर– (मथौट) लगा दिया जिसे देने के लिए हर कोई बाध्य था। कम या अधिक कम या अधिक....। औरंगजेब नें ऐसा दो कारणों से किया। 1. क्योंकि अभियानों के व्यय के कारण 2. खजाना खाली होता जा रहा था, दूसरा हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर बाध्य करने के लिए। हो सकता है कि औरंगजेब के बहुत से समकालीन इस तर्क पर सचमुच विश्वास करते रहे हो कि जजिया लगाकर वह गैर मुसलमानों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहता है लेकिन ऐतिहासिक जाँच के प्रकाश में यह युक्ति–युक्त नही ठहरता है।

मुस्लिम शासन होते हुए भी हिन्दू हठ धर्मिता से अपने विश्वास से चिपके हुए थे। इस अवधि के अधिकांश समय में उन्हे जजिया देना पड़ा था। औरंगजेब इतना आशावादी नही हो सकता था कि जजिया को पुनः थोपकर इससे भिन्न परिणाम की आशा करता। यद्यपि यह एक प्रतिगामी कर था और अमीरों की तुलना में गरीबों पर अधिक लगता था, लेकिन उसके शासनकाल में इस कार्यवाही द्वारा बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन का कोई प्रमाण नही मिलता। यदि ऐसा कुछ हुआ होता तो बादशाह के प्रशंसकों द्वारा उल्लास के साथ उसकी नीति की विजय के रूप में इस भूमिका एवं राज्य के स्वरूप से सम्बन्धित तत्कालीन राजनीतिक और वैचारिक विवाद हिन्दुओं की स्थिति तथा उलेमा द्वारा राज्य की आधारभूत नीतियों के निर्धारण की सीमा को ध्यान में रखे बिना इस कार्यवाही को नही समझा जा सका। वृत्तिधारियों की फौज मध्यकालीन सुल्तानों के लिए हमेशा एक समस्या रही जिसमें धर्मतत्वज्ञ, संन्यासी विधवांए और अनाथ विद्धमंडली का एक हिस्सा बड़ी संख्या में अल्लम गल्लम परोपजीवी शामिल थे। यह इस्लाम के प्रारम्भिक काल के अस्पष्ट समतावादी और मानवतावादी उत्तराधिकारी का एक पक्ष था कि राज्य का शारीरिक रूप से सक्षम सब मुसलमानों के लिए कुछ ज्ञान था। बलवन के समय से ही इन

उत्तरदायित्व से किसी भी शासन ने इनकार नही किया जो राज्य द्वारा कल्याण कार्य के पालन का महत्वपूर्ण ढ़ंग था। अकबर ने जमीदारों को दिये जाने वाले अनुदान के लिए गांव अलग रखते हुए इसे एक नये आधार पर संगठित करने का प्रयत्न किया। लेकिन समय के बीतने के साथ–साथ इस समस्या ने फिर गम्भीर रूप धारण कर लिया और औरंगजेब को नये सिरे से उससे जूझना पड़ा। वृत्तिधारियों में एक बड़ा समूह धर्मतत्वज्ञों का था। शिक्षा पर उनका परोक्ष रूप से एकाधिकार था। जिहाद छोड़ने उन्हें अप्रतिष्ठित एवं अपमान करने और उन्हें मूर्तिपूजक गतिविधियों के खुले प्रदर्शन की आज्ञा न देने की आशा भी करते थे। अधिकांश धर्मतत्वज्ञ जजिया का भुगतान इसलिए आवश्यक समझते थे कि यह हिन्दुओं को अपमानित करता था। कुछ उलेमा जजिया इकट्ठा करने वालों द्वारा हिन्दुओं को अपमान की वकालत में मूर्खतापूर्ण हद तक आगे बढ़ गये थे। इस प्रकार धर्मतत्वज्ञों के लिए जजिया का पुनः लगाया जाना हिन्दुओं की निम्न एवं पराधीनता की स्थिति का परिचायक और शासन वर्ग के मुस्लिमों की स्थिति और उसके द्वारा राज्य में सच्चे विश्वास के वाहक उलेमा की उच्च स्थिति को अक्षुण्य बनाये रखने का साधन था।

अनावश्यक राजनीतिक समस्याऐं उत्पन्न कर सकने वाली नीतियां लागू करने को तैयार नही थे। उलेमा और राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले हिस्सों के हितों में यह भेद मध्यकालीन भारत के मुस्लिम समाज का विशिष्ट लक्षण समझा जाना चाहिए। जैसी अपेक्षा की जा सकती है, न तो उलेमा और न ही राजनैतिक तत्व पूरी तरह संगठित थे। कट्टर एवं उदारपंथी इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच विवाद 18वीं शताब्दी तक देश के वौद्धिक एवं राजनीतिक जीवन का लक्षण रहा। पहली प्रवृत्ति हिन्दुओं को स्थाई शत्रु समझने, उन्हें अपमानित करने और राजनीतिक शक्ति में हिस्सेदारी अलग कर देने की नीति की वकालत करती थी। दूसरी एक बार झुकने के बाद हिन्दुओं से उदारता की नीति की पक्षधर थी। कट्टर प्रवृत्ति को भारत में विद्यमान स्थिति का ध्यान रखकर प्रवृत्ति कानून के शब्दों का सख्ती से पालन करते हुए शक्तिशाली कठमुल्लावासी शक्तियों का कानून प्राप्त था। उदारवादी प्रवृत्ति राजनीतिक स्वार्थ को आकर्षित करती थी। बहादत–अतवजूद और बहादत अल शहूद के समर्थकों के बीच और उनके बीच के सैद्धान्तिक मतभेद भी उन्हें एक दूसरे से दूर करते थे। दिल्ली सुल्तान के विघटन और उनके प्रान्तीय राज्य व्यवस्थाओं के पैदा होने के परिणाम स्वरूप मुस्लिम शासकों और उन क्षेत्रों के स्थानीय हिन्दू

ग्रामीण क्षेत्रों में बसने को भी यही प्रभाव पड़ा विभिन्न स्तरों पर राज्य की सेवा में नियुक्ति हिन्दू जमींदारों के संसर्ग की ओर झुकाव को लोदी और सूर शासकों द्वारा बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। जिसे आगे चलकर अकबर ने एक नीति के रूप में अपनाया। घटनाचक्र के इस परिवर्तन में सल्तनत काल के दौरान परिश्रम पूर्वक विकसित किये गये राज्य सिद्धान्त परोक्ष रूप से निहित थी। रूढिवादी दृष्टिकोण की एक पर्याप्त शक्तिशाली प्रवृत्ति के अस्तित्व पर अधिक संदेह है। अमीर वर्ग का एक गुट राजतन्त्र को एक जातिवादी और धार्मिक संस्था के रूप में देखता था। अतः उस वर्ग ने राज्य में अपनी शक्ति का एकाधिकार भंग होने पर अप्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए देशी शासक वर्गों के व्यापक समूहों को अमीर वर्ग में लाने की अकबर के नीति विषयक तर्क पर अप्रसन्नता दिखाई। शाहजहाँ के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में ही 5000 के ऊपर पदों पर आसीन मराठों की संख्या राजपूतों से अधिक हो चुकी थी। इस नीति के विस्तार से अमीर वर्ग के पुराने समूहों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना आवश्यक रूढ़वादी उलेमा द्वारा अकबर की राज्य की परिकल्पना का विरोध इससे कम निष्ठुर नही था। मुगल बादशाहों के सामने मूलभूत राजनीतिक समस्या राजपूतों और दूसरे देशी शासक वर्गों के साथ मित्रता

आवश्यकता थी। जहाँगीर रूढिवादी तत्वों पर खुली चोट करने से बचता रहा, लेकिन कुल मिलाकर स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नही आया। शाहजहाँ ने स्वयं को औपचारिक रूप से ईनाम का रक्षक घोषित करके यह दर्शाने का प्रयास किया कि उसके राज्य का मूल चरित्र इस्लामी है। उसने नवनिर्मित मन्दिरों को नष्ट करने का आदेश दिया और भिवंर में हिन्दुओं और मुस्लिमों के मिश्रित विवाह जैसे विद्यर्मि क्रिया कलाप बन्द करवा दिया। साथ ही उसने नीति निर्धारण में उलेमा की बात मानने से बिल्कुल इन्कार कर दिया और बजूदियों तथा शहूदियों सहित उलेमा के सब हिस्सों को राज्य का संरक्षण और प्रदान किया। शाहजहाँ की परिकल्पना अबुल–फजल द्वारा प्रतिपादित अकबर की राज्य विषयक परिकल्पना की प्रगतिगामी लेकिन मुस्लिम रूढ़िवादी की संस्थापित शक्ति को ध्यान में रखकर हुए सत्रहवीं शताब्दी के भारत में केवल यही समझौता सम्भव था। अन्य सभी समझौतों की भाँति यह समझौता भी राजनीतिक स्वार्थ के अतिरिक्त किसी अन्य स्पष्ट सिद्धान्त पर आधारित नही था, अतः इसलिए अस्थायी था। एक बार आधारभूत रूप से राज्य का इस्लामी चरित्र सिद्धान्त रूप में जब मान लिया गया तब इसे शरियत पर आधारित करने

लौट जा सकता है। इन विचारात्मक तर्कों को बल मिला। यद्यपि औरंगजेब ने समूहगढ़ की लड़ाई से शक्ति के साथ दक्खिन की ओर फैलाने का निर्णय लिया। इस प्रकार उसने सीमित अनाधिकार हस्तक्षेप की उस नीति का परित्याग कर दिया। जिसका पालन अकबर के समय से मुगल करते आ रहे थे। और जो 1636 ई. के समझौते में शाहजहाँ की नीति थी और उत्तराधिकारी बनने के समय से औरंगजेब की भी अपनी नीति रही थी। इस प्रकार राजनीतिक रूप से 1676 ई. तक औरंगजेब ने शाहजहाँ की नीतियों पर चलना लगभग छोड़ दिया था। लम्बे युद्धों और कठिन प्रयासों का एक नया युग जन्म ले रहा था। 1676 से 1678 तक दक्खिन में जोरदार फौजी कार्यवाईयाँ हुई। मुगलों का न्यूनतम लक्ष्य बीजापुर एवं गोलकुण्डा में अपने लिए एक ऐसी स्थिति बनाना था जिससे इन राज्यों के मराठा अधिकार में जाने से बचाव के लिए उन्हें मराठों के साथ सन्धि करने से रोका जा सके और मुगलों द्वारा इन राज्यों के स्रोतों और सीमा क्षेत्रों का उपयोग मराठों के विरूद्ध किया जा सके। इसके बावजूद 1678 में मुगल इन सीमित उद्देश्यों को भी प्राप्त करने में असफल रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन परिस्थितियों में औरंगजेब के एक ऐसी प्रभावशाली

मूल रूप से कट्टरपंथी औरंगजेब वे जजिया के भुगतान से मुक्त थे, फिर औरंगजेब द्वारा जजिया के भुगतान से छूट पर कड़ी आपत्ति उठाने के बावजूद ऐसा लगता है कि ऐसी छूटे नियमित रूप से दी जाती रही है। 1704 में अकाल और युद्ध से उत्पन्न संकट के कारण पूरे दशक में जजिया माफ कर दिया गया था। राजनीतिक रूप से जजिया पर सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि यह हिन्दुओं के सबसे प्रभावशाली हिस्सों को परेशान और विमुख करता है, जैसी शहरी जनता, विशेष रूप से द्रुतगति से बढ़ता हुआ, व्यापारी दुकानदार और साहूकार वर्ग, जिसका देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन में उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा महत्त्वपूर्ण स्थान था। जजिया इकट्ठा करने वालों द्वारा ये लोग बुरी तरह परेशान और उत्पीड़ित किये जाते थें और बदले में अनेक अवसरों पर हड़ताल एवं आम प्रदर्शनों की शरण लेते थे। अन्त में साम्राज्य के राजनीतिक विरोधियों के लिए हिन्दुओं की भावनाओं को इसके विरूद्ध संगठित करने के लिए जजिया एक सुविधाजनक नारा सिद्ध है। व्यापारियों के पास साधन नही है, किसान दबे कुचले है और हिन्दु फिरके पर दो विपत्तियाँ टूट पड़ी हैं,

(पहली) शहरों में जजिया का अपहरण और (दूसरी) देश में शत्रु (अर्थात मराठों) का उत्पीड़न। जब लोगों पर सब ओर से कष्ट ही कष्ट आ पड़े हो तो वे शासकों को धन्यवाद कैसे दें और कैसे उसके लिए प्रार्थना करें। जजिया को लेकर किये गये औरंगजेब के प्रयोग ने यदि यह कुछ सही दर्शा सकता है, तो भारत में राज्य को औपचारिक रूप से भी शरीयत आधारित करने की और इस आधार पर हिन्दुओं और मुस्लिमों में भेद बनाये रखने की व्यावहारिक असम्भाव्यता बाध्यता को दर्शाता। अन्त में अकबर का व्यापक आधार वाला धर्म निरपेक्ष राज्य और सल्तनत काल का संकीर्ण आधार वाला राज्य चल नही पाया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान मुस्लिम शासकों के अधीन जो साधारणः चल पाया वह शाहजहाँ का विभिन्न दर्शनग्राही समझौता था। मुसलमानी राज्य में रहने की इजाजत के लिए हर काफिर को जजिया नामक कर देना पड़ता था। जजिया का अर्थ है बदले में दिया गया धन अथवा जीवनयापन की सुविधा का मूल्य। यह कर सर्वप्रथम मुहम्मद ने ही लगाया था। उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि जजिया के पीछे आर्थिक समस्या के समाधान का पक्ष अधिक महत्वपूर्ण था। यह धार्मिक कर नही था, अपितु प्रशासनिक, राजनैतिक, आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप लगाये जाने वाला कर था। मनसबदारों को तीन भागों में बांटा गया था,

मनसबदार, अमीर, अमरा–ए–आजम। एक विशेष पद अथवा कोटि निम्न अधिकारों को मनसबदार कहा जाता था। अकबर ने सुल्तानों की परम्परा का पालन करते हुए 200 अश्वारोहियों (निम्नतम) से ऊपर के अधिकारियों को अमीरों की श्रेणी में रखा। शीघ्र ही इसे बढ़ा कर 500 कर दिया। निजामुद्दीन का कहना है कि 500 जात से कम के अधिकारी को अमीर की संज्ञा नही दी जाती थी। औरंगजेब के आरम्भिक वर्षो तक सही व्यवस्था चलती रही बाद में उसने सीमा को बढ़ाकर 1000 कर दिया, अतः स्पष्ट है कि 1000 जात से ऊपर वाले अमीर पुकारे जाते थे। जबकि अकबर के समय 500 या इससे अधिक जात वाले ही अमीर कहे जाते थे। इसको पुनः अमीर व अमीर–ए–आजम में विभाजित किया था। इरविन के अनुसार 500 से 3000 के बीच अमीर व 3000 अथवा उसके ऊपर को 'अमीर–ए–आजम कहते थे। अब्दुल अजीज इसकी पुष्टि करते हैं, परन्तु समस्त मुगलकाल का सर्वेक्षण करने के लिए ऐसा अनुभव होता है कि सीमा लगातार बढ़ती रही है। जहाँगीर के समय 3000 या उससे अधिक जात वालों को अमीर–ए–आजम कहा जाता था। शाहजहाँ ने भी इसी को अपनाया परन्तु औरंगजेब ने 1672 ई. में इसको घटाकर 2000 जात कर दिया। पुनः 1682 ई. में इस संख्या को घटाकर 1500 अथवा इससे ऊपर वाले जात वालों को अमीर–ए–आजम कहा जाता था। सम्राट ने

मनसबदारों को मनसब दहवासी (10 के नाएक) से 10 हाजरी (10,000 का सेनापति) तक निर्धारित कर दिये लेकिन 5000 से ऊपर के मनसब अपने श्रेष्ठ पुत्रों के लिए सीमित कर दिये। सम्राट कुछ लोगों को एक ही नजर में पहचान लेता है और उन्हें ऊँचा मनसब प्रदान कर देता है। कभी–कभी वह किसी कर्मचारी के मनसब बढ़ा देता हैं, लेकिन उसके सवार कम कर देता है। भार वाहक पशुओं की संख्या भी वही निर्धारित करता है। 1579 ई. में सर्वोच्च मनसब को बढ़ाकर 10,000 कर दिया, परन्तु 6000 से ऊपर मनसब शहजादों के लिए सुरक्षित रखे। 1585 ई. में वह बढ़ा कर 12000 कर दिया और अमीरों को 7000 तक के मनसब दिये जाने लगे। 1605 ई. में मानसिंह को 7000 जात व 6000 सवार का मनसब दिया गया था। मनसबदार सम्राट द्वारा नियुक्त किये जाते थे। 1576 ई. में शिहाबुद्दीन अहमद खां को 5000 का मनसब देकर मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। सम्राट शुभ अवसरों पर अथवा सैनिक अभियान के आरम्भ या अन्त में मनसबदारों के मनसब में वृद्धि करता था। परन्तु यह कोई आवश्यक शर्त नही थी क्योंकि 1505 ई. में टोड़रमल द्वारा बंगाल के सफल अभियान से लौटने पर यद्यपि अकबर ने उसे कई तरह से सम्मानित किया परन्तु उसे कोई मनसब प्रदान नही किया। मनसबदारों की नियुक्ति प्रतिदिन ही होती थी। मुश्किल से कोई दिन जाता हो जिस दिन योग्य एवं ईमानदार

व्यक्तियों को मनसब न प्रदान किये ज़ाते हो अथवा उसके पद में वृद्धि न की जाती हो। अकबर के समय में सवार मनसब के प्रचलन के प्रत्येक मनसबदार से अपने मनसब के अनुरूप सैनिकों को रखने की आशा की जाती थी। सौ के मनसबदार को सौ घुड़सवार रखने पड़ते थे। सैद्धान्तिक रूप से यह व्यवस्था थी परन्तु व्यवहारिक रूप में मनसबदार अपने मनसब के अनुरूप अश्वारोही सैनिकों को रखे बगैर ही वेतन व जागीर का प्रयोग करते थे। इस व्यवस्था को दूर करने के लिए अकबर ने 1594–95 ई. में सवार पद प्रारम्भ किया। अतः इसके बाद ही मनसबदारों के मनसब में जात और सवार पद का उल्लेख किया जाने लगा। जबकि इसके पहले मनसब में केवल जात शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इसका अर्थ है कि जात और सवार दो अलग–अलग अर्थ में प्रयोग किये जाते थे। जात सैनिकों की संख्या का बोधक था जिसके रखने की आशा मनसबदार से की जाती थी और सवार मनसब वह सैनिक संख्या बताया था जो वास्तव में मनसबदार रखते थे। मनसबदार का बेतन का भुगतान जात संख्या के आधार पर किया जाता था। इरविन के अनुसार सवार पद एक अतिरिक्त सम्मान था और प्राप्तकर्ता को जात की संख्या के अतिरिक्त सवार पद एक में निश्चित सैनिकों को रखना पड़ता था। अब्दुल अजीज का मत है कि जात मनसब के अन्तर्गत मनसबदार एक निश्चित संख्या में हाथी,

घोड़ो की संख्या के आधार पर अतिरिक्त धन दिया जाता था। डॉ. कुरैशी के अनुसार सवार मनसब सम्मान सूचक था और इसके बदले मनसबदार को बगैर घुड़सवार रखे हुए ही अधिक मिलता था। सी.एम.के. राव के अनुसार कि जात और सवार मनसब घुड़सवारों की संख्या को बताता था। क्योंकि अकबर के शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में केवल जात मनसब ही था। जात मनसब को पैदल सैनिक ही मान लिया जाय तो अकबर के शासन के अन्त में इनकी संख्या 10 लाख से अधिक हो जायेगी। इस मात को स्वीकार करना सम्भव नही है। जात और सवार सम्बन्धी इन विरोधी विचारों के आधार पर इसका सही अर्थ निकालना कठिन है। अतः बदायूनी के विवरण के आधार पर कि बीस के मनसबदार को बीस सवारों के साथ ही एक निश्चित संख्या में घोड़े, हाथी, ऊँट और बैल गाड़ियां रखनी पड़ती थी। बीस का मनसबदार अपने बीस सवारों के घोड़े दागने के लिए ले जाता था तब उसे सौ अथवा अधिक का नाएक बना दिया जाता था। इसी तरह उन्हें उसी नियम के अनुसार अपने मनसब के अनुपात से हाथी, घोड़े और ऊँट रखने पड़ते थे। जब वे सैनिक परेड के अवसर पर अपने सैन्यदलों का पूरा प्रस्तुत कर देते थे तो उन्हे उनकी योग्यता और

के पहले प्रत्येक मनसबदार को अपने मनसब के अनुसार घोड़े, हाथी, ऊँट और बैलगाड़ियां रखनी पड़ती थीं। साथ ही जितने का वह मनसबदार होता था उतने सवार भी उसके लिए रखना अनिवार्य था। समस्त मनसबदारों को अपने खर्चे से मनसबदार के अनुसार सवार रखने पड़ते थे। यह जात मनसब 1595 ई. तक चलता रहा क्योंकि 1595 ई. से 1595 ई. के बीच किसी भी समकालीन इतिहासकार ने सवार मनसब का उल्लेख नही किया है। 1595 ई. में सवार मनसब का उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ हुआ कि 1595 ई. के पहले मनसबदार जात मनसब के अनुसार निश्चित संख्या में अपने पास सवार नही थे। इस सम्बन्ध में उससे कई बार पूछा गया परन्तु कालान्तर में यह शर्त अपने आप ही समाप्त हो गयी। बदायूँनी ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि आम स्थिति ऐसी ही थी। इसी से विवश होकर अकबर को सवार के मनसब को अलग से व्यवस्था करनी पड़ी थी। साधारणतयः जात की संख्या सवार से अधिक होती थी। अब्दुल अजीज ने पाँच ऐसे उदाहरण दिये है जहां सवार का मनसब जात से अधिक है परन्तु वे इसे प्रतिलिपि तैयार करने वालों की भूल मानते है। अतहर अली ने औरंगजेब के समय के 62 ऐसे मनसबदारों की सूची दी है

जिसका सवार मनसब जात मनसब से अधिक था। उसके अनुसार अनुभवी व्यक्तियों की कमी तथा मीतव्यता को ध्यान में रखते हुए ही यह किया गया था। परन्तु अधिकतर नियम यही था कि जात मनसब सवार मनसब से अधिक ही होता था। औरंगजेब अपने पुत्रों को उच्च मनसब दिये शहजादा मुज्जम को 40000 जात व 40000 सवार कामबक्स को 40000 जात व 40000 सवार मु0 सुल्तान को 20000 जात व 10000 सवार, मु. आजम को 20000 जात, 9000 सवार तथा अकबर को 10000 जात व 20000 सवार मनसब दिया। इस प्रकार पौत्र बीदार को 15000 जात व 12000 सवार मु. मुईजुद्दीन को 12000 जात व 10,000 सवार मु. आजम को 10000 जात 20 सवार रफी अलकदार को 8000 जात 7000 सवार का मनसब दिया। पुत्रों और पौत्रों के मनसब से स्पष्ट है कि इसके मनसब उच्च से उच्च अमीर से कम नही थे। मुगलकाल में मनसबदारों को उच्च वेतन दिये जाते थे। वेतनों का भुगतान जागीर अथवा नगद में हुआ करता था। 1690 ई. में 11,456 मनसबदारों में से 7,999 को नकद तथा 3457 को जागीर के रूप में वेतन का भुगतान किया जाता था। अकबर के समय में मनसबदारों को अपने वेतन से ही राज्य के लिए घोड़े हाथी भारवाहक पशु व गाड़ियाँ रखनी पड़ती थी। अबुल फजल के 1695 ई. तक की जो सूची दी गयी है (जब केवल जात मनसब ही था) उसमें उसने विभिन्न

श्रेणियों के मनसबदारों द्वारा रखे जाने वाले घोड़े हाथी व भारवाहक पशु व गाड़ियों की संख्या के साथ ही मासिक वेतन रूपये में बताये गये हैं क्योंकि वह तालिका केवल जाति की ही है इसलिए स्वाभाविक रूप से सवार मनसब के लिए प्रत्येक मनसबदार को अतिरिक्त वेतन दिया जाता था। जात–पद कि मनसबदार का अपने द्वारा रखे जाने वाले पशुओं आदि के खर्चे को निकालकर बाकी बचा हुआ धन व्यक्तिगत वेतन के रूप में होता था। सवार पद आरम्भ होने पर जात पद व्यक्तिगत हो गया था। सवार पद सैनिक टुकड़ियों के आकार को निर्धारित करता था जो अमीरों को रखनी पड़ती थी। अतः जात पद का वेतन मनसबदार के व्यक्तिगत वेतन के रूप में व सवार पद का वेंतन उसकी सैनिक टुकड़ियों के लिए होता था, इनको सासह (व्यक्तिगत) ताबीनान (सैनिक टुकड़ी का खर्च) कहा जाता था। मोरलैण्ड के रेंक (मनसब) इन द मुगल सर्विस निबन्ध ने कई तरह से मनसब व्यवस्था के सभी हाल के अध्ययनों को प्रारम्भ किया है। क्योंकि इसमें सर्व प्रथम इस संस्था की कुछ अनेक मूलप्रति विशेषताओं की लगभग निर्णयात्मक व्याख्या की गयी है। संस्था द्वारा जात और सेवाए श्रेणियों के उन सिद्धान्तों जिन पर अनेक भुगतानों की गड़ना होती थी, तथा वे किये जाते थे, और सवार श्रेणी के आधार पर दायित्व निर्वहन के स्वरूप विशेषकर रखी जाने वाली सैनिक टुकड़ी के आकार तथा संरचना

की स्पष्ट व्याख्या का समर्थन हुआ है, और अनुसंधानों द्वारा प्रर्याप्त रूप से पुष्टि हुई है। मोरलैण्ड का विश्लेषण खास तौर से शाहजहाँ के शासनकाल में मनसब व्यवस्था के कार्यान्वयन के विविध पक्षों द्वारा दृष्टि से प्रर्याप्त रूप से प्रमाणिक है। मनसबदारी के मामले में जयपुर में सूरक्षित मनसबदारों के वेतनमानों की संतुष्टि से सम्बन्धित शाही फरमानों की एक श्रृंखला का उपयोग कर सका था। मुगल तथा मध्य एशियाई राज्यों के सैनिक अहदों के समस्त इतिहास की व्याख्या करने के लिए एक संक्षिप्त तथा सरल सूत्र बनाया। उनका विश्वास था कि प्रारम्भ में प्रत्येक राज्य में ओहदों एक सेनानायक द्वारा रखी जाने वाली घुड़सवार सेना का प्रतिनिधित्व करता था, पर दूसरी अवस्था में जब प्रशासनिक ह्रास शुरू हो गया तो हादसों की संस्थाओं का आहदों द्वारा सेवा में रखी जाने वाली वास्तविक संख्या के निकट सम्बन्ध समाप्त हो गया। आगे जब किसी ने भी सैनिक एवं प्रशासनिक क्षमता स्थापित करने के लिए पूर्वसंगठन का प्रयास किया गया तो उसे समझौता करना पड़ा। यद्यपि ओहदों की संख्या और रखे जाने वाले आदमियों की वास्तविक संख्या में सम्बन्ध सथापित करना था। मुगल भारत के सम्बन्ध में मोरलैण्ड का विचार था कि अकबर द्वारा श्रृजित की दो श्रेणियां जात व सवार तीसरी अवस्था में किये गये इस प्रकार के समझौते का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी शर्तों के अनतर्गत

सैनिको की रखी जाने वाली वास्तविक संख्या के लिए थी। जहाँगीर के शासन के अन्तर्गत मनसबदारी व्यवस्था हाल भी पुरानी जैसा ही हुआ, और अब सवार श्रेणी की भी प्रवृत्ति नाममात्र की हो गयी। उसका उत्तराधिकारी शाहजहाँ का प्रशासन अत्यधिक कठोर तथा अधिक सक्षम सेना के उद्देश्य के होते हुए भी अकबर की व्याख्या को फिर से स्थापित करने की आशा नही कर सकता था, तथा वह समझौते के पथ पर चलने के लिए बाध्य हुआ। शाहजहाँ ने श्रेणियों को वैसे ही रहने दिया, तथा श्रेणियों पर मिलने वाले कुछ वेतन को घटा दिया जैसे जात श्रेणी के वेतन को अधिक तथा सवार श्रेणी के वेतन को कम अनुपात में घटा दिया। उसने मनसबों पर वेतन घटा दिया था और श्रेणियों की संख्या के अनुपात दायित्वों का अत्यन्त कठिनाई से पालन करने का आग्रह रोक लगाने वाले राजनीतिक प्रभाव विद्यमान थे। मोरलैण्ड की व्याख्या अपने सरल एवं युक्तियुक्त तर्क के कारण निश्चित तौर से आकर्षक है। जात श्रेंणी अकबर से पूर्व थी तथा केवल सवार ही उसका नव प्रवतर्क था। दोनों ही की अकाट्य आलोचना हो चुकी है। शाहजहाँ के काल से पहले मनसब व्यवस्था के साधारण तथ्यों के बारे में जो प्रस्तुत करता है कम है।

प्रारम्भ की गयी थी। यद्यपि यह अकेला स्वीकार करना आसान नही है। कि जहाँगीर का शासनकाल ही यह काल है जिसे अकबर के जमाने में पहुंची हुई सम्भवित ऊँचाइयों से गर्त में जाने को उत्तरदायी माना जा सकता है। यहाँ तक कि वह प्रमाण का भार उसी पर छोड़ देता है जो यह कहे कि अकबर की कोई भी संख्या अपने समग्र रूप में अपने जहांगीर के काल में विद्यमान रहीं तथा अपने पाठाकों को यह विश्वास दिलाता है कि यह इस विषय के लिए किसी भी साक्ष्य की वास्तविकता की आवश्यकता नही थी। सवार श्रेणी की संख्या के साथ सैन्यदल के आकार के सम्बन्ध में और आंशिक श्रृंखला के वेतन एवं उत्तरदायित्व दोनों ही शामिल थे। 1605 ई. के बाद के लिए हमें शाहजहाँ के शासनकाल से पहले बेतन सूचियां नही मिलती है। पर हमें ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है। जिससे पता चलता है कि 1618 ई. तक हर हालत में 1605 ई. में लिपिबद्ध किये गये वेतनमान ही प्रचलित थे। 1616 ई. में सर टांमस--रो ने 5000 की श्रेणी वाले एक मुगल मनसबदार से वार्तालाप लिपिबद्ध किया तथा घुड़सवार सेना को रखने के खर्चे के अतिरिक्त वह 1000/- रू. प्रतिदिन की पेंशन भी पाता था।

500	द्वितीय वर्ग	2440	2500
400	द्वितीय वर्ग	1440	1500
60	तृतीय वर्ग	275	300

यह निष्कर्ष तर्क संगत होगा कि जात श्रेणियों के बेतनों में भारी कमी 1618 से 1630 ई. के बीच लगभग तेरह वर्षों में हुई। यह अनुमान का विषय मात्र ही हो सकती है। कि इसके लिए जहाँगीर अथवा शाहजहाँ उत्तरदायी था अथवा परिवर्तन केवल एक कार्यवाही के परिणाम स्वरूप न होकर इन दोनों बादशाहों द्वारा की गयी कार्यवाइयों के युग्म अथवा श्रृंखलाओं के कारण हुआ। सवार श्रेणियों के वेतन कि यह जात वेतनों की अपेक्षा अधिक जटिल है, क्योंकि वह व्यवस्था जिसके आधार पर अकबर के शासनकाल में तथा कुछ समय के लिए जहाँगीर के शासनकाल के अन्तर्गत सवार श्रेणी को भुगतान किये जाने थे, किन्तु शाहजहाँ के काल में ऐसा नही प्रतीत होता है। 1595 ई. से ही सवार श्रेणी के भुगतान मानक दर से किये जाते रहे और अगर कोई परिवर्तन हुआ तो केवल यह

बात में हमें केवल इस आधार पर संदेह हो सकता है कि ऐसा होता तो अबुल फजल निश्चित ही उसे उसी प्रकार उद्दत करता जिस तरह बाद की सूचियों में हुआ जबकि ऐसा दर वास्तव में लागू थी। अकबर बादशाह के शासन के गृह विभाग के अधिकारी बायाजीद बयात का एक अनुच्छेद उद्घृत है जिसमें अकबर के भुगतान का स्वरूप जिसे 1595 ई. (हि 999) में अपने संस्मरण अबुल फजल के महान ग्रन्थ के विषय में महान जानकारी के स्रोत के रूप में लिखे थे। बायजीद के अनुसार कि हि. 992 में उसे अपनी स्वयं की श्रेणी के लिए 100 व्यक्ति (जफर) बारावर्दी, और 100 (व्यक्ति) दागी (दाग चिन्ह हाजिरी) उसके बेटों की श्रेणियों के लिए दिये गये। वह यह शिकायत करता है कि उसे देय एक हिस्सा अब भी बाकी है। और न ही उसे 100 बारावर्दी के दाग के लिए दिये जाने वाले भत्ता (पफताते–दाग–ए–सद–नफर–ए–बारावर्दी) की अनुमत गयी थी। जब एक बार सवार श्रेणी दे दी जाती थी तो भुगतान की अनुमति उन सवारों के आधार पर दी जाती थी जो अभी तक बहियों पर थे और उस प्रकार जब मनुष्य और घोड़ वास्तव में हाजिरी और दाग के लिए लाये जाते थे और देय भुगतान की गणना फिर से की जाती थी। आईन के

और इस संख्या के लिए वह इक्ता (जागीर) दाग की शर्त के बिना प्रदान करता है। तूरानियों और इरानियों को 25 रूपये (प्रतिमाह) दिये जाते थे, भारतीयों को 20 रूपया तथा खालसा के लगान उगाहने वालो को 15 रू.। यह किस्म बारावर्दी कहलाती है। मनसबदारी व्यवस्था में तूरानी एवं ईरानी मनसबदारों के लिए 19000 दाम (25 12 40), तथा भारतीयों के लिए 9600 दाम प्रतिवर्ष के बराबर था। भुगतान हाजिरी तथा दाग के लिए प्रस्तुत किये गये आदमियों और घोड़ों की वास्तविक संख्या एवं किस्म के आधार पर समायोजन करके किया जाता था। सेनानायक (आगा) संख्या और किस्म की व्यवस्था करता है और बक्सी उनका निरीक्षण कराता है। ऊँटों बैलों की गणना यक–अस्या (एक घोड़े वाले सैनिक) की तरह की जाती थी। उनके लिए मान्य दरें कभी उच्च श्रेणी के सैनिकों के दरों से (आधी) 1/2 और कभी 2/5 होती थी। प्रत्येक यक–अस्या की निर्धारित दर घोड़ों की नस्ल के मुताबिक 25 से 12 रूपये (प्रतिमाह) के सीमा के अन्तर्गत थी। पर खालसा के कर उगाहने वालों को केवल 15 रू. मिलता था। दो अस्या और सिंह अस्या (अर्थात 2 और 3 घोड़ो वाले सैनिक) के लिए मान्य दरें नही दी गयी, पर यह कहा गया है कि दहबासी (अर्थात

10 के मनसबदार) को 3 सिंह अस्या, 4 दो–अस्या और 3 यक–अस्या हाजिर करना चाहिए। सवार श्रेणी की प्रति इकाई कुल दर वृद्धि हाजिरी के समय यह संयोजन बनाये रखा जाता था, यक–अस्या के लिए स्वीकृत बहुत अधिक हो सकती थी, जो यहाँ भी बारावर्दी के लिए स्वीकृति दरों के लगभग बराबर थी। 11वीं मिहर को यह आदेश दिया गया कि मुगलों अफगानों और भारतीयों को सिंह–अस्या पर 1000 दाम, दो–अस्या पर 800 और यक अस्या पर 600 दाम दिये जायेंगे। राजपूतों को प्रथम (अर्थात सिंह–अस्या) पर 800 और द्वितीय पर 600 मिलेंगे। मोरलैण्ड के आंकड़ों के अनुसार प्रतिसवार श्रेणी पर सैनिक टुकड़ी की संरचना के रसकारी सूत्र के आधार पर तीनों श्रेणियों में इकाइयों की संख्या की 3:4:3 के अनुपात से गणना कर 9600 दाम का औसत निकाला है। बादशाह किसी कमाण्डर को दो–अस्या या सिंह अस्या के लिए दाग से पूर्ण वेतन की अनुमति देता है तो उसे जिस दर पर भुगतान होने चाहिए वही पूर यहां भी लागू होगी उससे अधिक कुछ भी नही। ऐसी स्थिति में बारावर्दी दर वास्तव में 25 से केवल 15 ही रह जाती। पर यह भी सम्भावना है कि इस अनुच्छेद में टकों अथवा दोगुने दामों के स्थान पर दाम गलत रख दिया गया हो। प्रथम दो वर्गों के लिए दरे बिल्कुल वे ही है जो, अकबरनामा में है। जबकि यक–अस्या की दर भिन्न है। 400 टका प्रतिमाह

परिवर्तन देखने को मिलता है जिसमें सवार श्रेणी का भुगतान एक जैसा था, और समय में निर्धारित हो जाता था। जिसमें मनसबदारों को एक निश्चित संख्या और संरचना की सैन्य टुकड़ी हाजिर करनी पड़ती थी पर वह बेतन में किसी अन्य वृद्धि का अधिकार नही था। विलियम हाकिन्स के अनुसार (1608–12) से मिलता है। जो यह कहता है कि कमाण्डरों को महीनों वार प्रति घोड़ों का बीस रूपया मिलता है, और दो रूपये प्रतिमाह प्रति अश्व उनके भोजन के प्रबन्ध के लिए है। विलियम हाकिन्स जात एवं सवार श्रेणियों के वेतन का उल्लेख किया है। उसका तात्पर्य एक समान दर से है जो 9600 दाम प्रतिवर्ष के बराबर है। चूँकि जात श्रेणी वेतन का सम्बन्धी स्पष्टीकर गलत है, सवार श्रेणी के सम्बन्ध में उसके शब्द महत्वहीन रहे। जबकि जहाँगीर द्वारा कुँवरकरन को 5000 जात तथा 5000 सवार के मनसब पर नियुक्ति किया गया था। 1616 ई. में एक मुगल अमीर ने बताया था कि प्रत्येक (समान श्रेणी के घुड़सवार) का वेतन वर्ष में 200 रूपया था। 1620 ई. में जहाँगीर किश्तवार के विषय में लिखता है कि उसका राजस्व मुद्रा के रूप में 74670,000 दाम है। जबकि नियमों जाबिता–ए–हाल के अन्तर्गत 8500 सवार का हो जाता है। जिसका प्रकाश वास्तव में 8800 दाम प्रति सवार दर का स्पष्टीकरण है। 16 (26)

मार्च सन् 1657 में शिवाजी के दक्षिण दो मराठा सेनानायकों ने मुगलों के प्रदेश में लूटमार की और "वे अहमदनगर" के फाटकों तक जा पहुँचा, जो इस समय मुगल अधीनस्थ दक्षिण भाग में बहुत प्रसिद्ध था।" शिवाजी स्वयं चुपके से जुनार नगर में घुस गये वहाँ के पहरेदारों को मार डाला, और तीन लाख हूण तथा 200 घोड़े लगे। औरंगजेब ने नसीरी खाँ को शिवाजी का पीछा करने के लिए रवाना किया गया और पीछा करे मराठों को नष्ट भ्रष्ट करने का आदेश दिया। मराठों ने अहमदनगर से लगे हुए चमरगुण्डा और रेसिन जिलों पर धावा बोल दिया। इस समय शिवाजी जुन्नर पर स्वयं धावा बोलकर तीन लाख हूण लूट ले गये। औरंगजेब ने मराठा आक्रमण–कारियों को खदेड़ने के लिए बाध्य हुआ और उसे दक्षिणी मुगल साम्राज्य की दक्षिणी पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए कदम उठाना पड़ा जब बीजापुर ने मुगलों से सन्धि कर ली तब शिवाजी भी झुक गये। किन्तु औरंगजेब ने हृदय से क्षमा नही किया। फरवरी 1672 ई. में खानदेश और गुजरात की सीमा पर सल्हर में शिवाजी के पेशवा मोरो त्रिमल पिंगले के नेतृत्व में मराठा सैनिकों ने दक्कन के मुगल सूबेदार दिलेर खान, गुजरात के सूबेदार बहादुर खान एवं अन्य कई प्रमुख मुगल कमाण्डरों के नेतृत्व में

इस ऐतिहासिक युद्ध में दोनों पक्षों से अनगिनत घोड़े, हाथी एवं ऊँट समेत 10 हजार लोग कत्ल हुए। युद्ध भूमि में खून की नदियां बह गयी। लूट के रूप में छः हजार घोड़े उतने ही ऊँट 125 हाथी और शिविर में पड़े खजाने एवं हीरे जवाहरात समेत मुगलों के सारे सजे–सान्समान मराठों के हस्तगत हुए। राजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात मुगल सम्राट औरंगजेब ने जोधपुर राज्य को खालसा में सम्मिलित करके वहाँ मुगल फौजदार नियुक्त कर दिया। अजीत सिंह के साथ राठौरों को यह विश्वास हो चला कि अब सम्भवतः बादशाह उसे मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया। अतः वे उसे लेकर दिल्ली पहुँचे। राठौरों की जब इच्छा पूरी नही हो सकी तो उन्होंने अजीत सिंह को दिल्ली से मारवाड़ ले आने की गुप्त योजना बनायी। औरंगजेब के विराधी प्रयत्नों के बावजूद राठौर सामन्त अपनी योजनाओं के क्रियान्वित करने में सफल हुए और अजीत सिंह को किसी तरह मारवाड़ ले पहुँचे। मारवाड़ पर मुगलों के अधिकार के कारण जब अजीत सिंह की सुरक्षा राठौर के लिए जटिल समस्या बन गयी।

विशाल यवन सेना के समक्ष संख्या में नगण्य मात्र होने पर भी अद्‌भुत वीरता और पराक्रम का प्रदर्शन कर उन्होंने अनेक मुगल सैनिकों को मार गिराया। राजपूत योद्धा मुगलों के सामने अधिक देर तक टिक नही सके

अधिकार कर लिया और वहां बने दरवाजे को तुड़वा कर मुगल चौकी की स्थापना की दी। देवारी के इस छोटे से संघर्ष में राठौर गोर सिंह, कुपावत, उग्र सिंह तथा उदय सिंह, सांवल दासोत आदि वीरगति को प्राप्त हुए और महासिंह सारंग देवोत बुरी तरह घायल हुआ। औरंगजेब 24 जनवरी 1680 ई. को उस ओर चढ़ चला। पहाँ पहुँचने पर पहाड़ों में छिपे राजपूत सैन्यदल ने उस पर आक्रमण कर दिया। खाफी खाँ के अनुसार उदय सागर पर लगभग 25000 राजपूतों ने मुगलों के साथ युद्ध किया तथा मुगल सेना का बहुत सा सामान लूटकर वापस पहाड़ों की ओर भाग गये। राजपूतों के इस आकस्मिक आक्रमण और उससे हुए नुकसानों ने बादशाह को वापस चित्तौड़ की तरफ लौटने हेतु बाध्य कर दिया। चिन्तित बादशाह को जब शहाबुद्दीन ने हसन अली खाँ के पहाड़ों से निकलकर उदयपुर लौटने का समाचार दिया तो प्रसन्न होकर उसने उसे पुरस्कृत किया। 30 जनवरी 1680 को हसन अली खाँ ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर राजपूत सेना से लूटी हुई सामग्री 100 घोड़े, 500 सैनिक तम्बुओं का सामान और एक तोप उसे भेंट की। रूहेल्ला खाँ तथा इक्काताज खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना के एक अन्य दल ने उदयपुर नगर में प्रवेश किया। उसने वीरान राजधानी के विशाल भवनों को ध्वस्त किया,

कर दिया। नगर के विशाल जगन्नथ मन्दिर तथा अन्य 173 मन्दिरो को तोड़–फोड़ करने के पश्चात वे दोनों वापस लौट गये। मेवाड़ में मुगल सेना को आशानुकूल सफलता नही मिली, उधर मारवाड़ में भी राठौर सामन्त अवसर पाकर समयान्तर में मुगल चौकियों पर आक्रमण करके हानि पहुँचा रहे थे। अतः मेवाड़ में लड़े जा रहे इस युद्ध के लम्बे समय तक चलने रहने की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखकर सम्राट ने अजमेर में रहकर तो युद्ध के संचालन का निश्चय किया। सम्राट उदयपुर से वापस लौटते हुए 22 फरवरी, 1986 ई. को चित्तौड़ पहुँचा और किले के अन्दर स्थित 66 देवालयों को नष्ट करवा दिया। यदि ऐसा प्रदेश मुगल साम्राज्य में मिलाया जा सके तो उदयपुर के अभिमानी गौरवपूर्ण राणा को उस बाजू से पूरी तरह घेर लिया जावेगा और राजपूतों के ठीक बीचों–बीच में ऐसे लम्बे प्रदेश की स्थापना हो जायेगी, जिस पर मुसलमानों का अधिपत्य होगां उस समय की उत्तरी भारत की हिन्दू रियासतों में मारवाड़ की अग्रगण्य और महत्त्वपूर्ण था। इस समय वहाँ जसवन्त सिंह राज्य कर रहा था। बलपूर्वक हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करवाने की औरंगजेब की नीति के लिए बहुत ही आवश्यक था कि जसवन्त का यह राज्य बिलकुल ही

जसवन्त सिंह की मृत्यु हुई। जसवन्त सिंह की मृत्यु का हाल सुनते ही मारवाड़ राज्य की एकदम मुगल शासन में ले लिया। 9 जनवरी 1679 ई. को स्वयं बादशाह अजमेर के लिए रवाना हुआ। यदि वहाँ कोई विरोध उठ खड़ा हो तो उसको दबाने के लिए जोधपुर के पास पहुँच जान ही उसका एक मात्र उद्देश्य था। जसवन्त की मृत्यु से राठौर जाति बड़ी जी व्याकुल एवं अस्त–व्यस्त हो गयी तथा वहाँ सर्वत्र गड़बड़ी मच गयी। राज्य पर कोई भी शासक नही रह गया था, एवं राज्य में बढ़ी–चढ़ी आती हुई सुसंचालित सशक्त मुगल सेना का सामना करने की शक्ति मारवाड़ राज्य में नहीरह गयी थी। 26 फरवरी को औरंगजेब ने सुना कि लाहौर में जसवन्त की दो विधवा रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। फिर भी बादशाह मारवाड़ राज्य को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लेने की नीति से विरत होने वाला न था। अजमेर से लौट कर दो अप्रैल को बादशाह दिल्ली पहुंचा। पिछले सौ वर्षों से जो बन्द था वह जजिया कर उस दिन औरंगजेब ने पुनः हिन्दुओं पर लगा दिया और यो हिन्दुओ के प्रति अपने विरोध एवं द्वेष को स्पष्ट रूप से घोषित किया। जसवन्त के भाई का पौत्र इन्द्र सिंह राठौर, इस समय नागौर का शासक था; 26 मई को उसे

जोधपुर का राजा बना कर मारवाड़ भेजा। परन्तु मुगल अधिकारी और सेनानायकों को जोधपुर में ही बने रहने का हुक्म मिला। अपने इस राज्य पर अधिकार करने में नये राजा की सहायता करना ही सम्भवतः उसका प्रधान कर्त्तव्य था। *'जसवन्त सिंह कभी अफगानिस्तान प्रधान शासक या काबुल शहर का सूबेदार नही बना। यह जमरूप का थानेदार मात्र ही था।* मुगलों का दबाव अत्यधिक बढ़ा होने के कारण शिवाजी अहमदनगर की ओर लूटमार प्रारम्भ कर दिया। सम्राट की हुक्म से 3 हजार घुड़सवार लिये नसीरी खाँ राह में कहीं रूके बिना किसी प्रकार घटना स्थल पर पहुंचकर उसने शिवाजी की सेना पर एकाएक आक्रमण कर घेर लिया। कई मराठे मारे गये, अनेक घायल हुए तथा बाकी बचे भाग खड़े हुए। मराठों के आक्रमण के जबाब में औरंगजेब ने विशेष रूप से यह ओदंश दिया था कि वे शिवजाी के प्रदेश पर चारों तरफ से चढ़ाई कर गाँवों को उजाड़ फेंकने, लोगों को निर्दयतापूर्वक मार डालने का आदेश दिया था। एवं सिक्खों के पवित्र तीर्थ–स्थानों को खुले आम भ्रष्ट किया जा रहा था। अतः वह चुप नही रह सका। उसको पकड़कर दिल्ली ले गये और वहाँ इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए उसे बाध्य करने लगे किन्तु वह किसी प्रकार राजी नही हुआ अनेक यातनाएं भी व्यर्थ गयी। अन्त में बादशाह के हुक्म से सन् 1676 ई. में उसका सिर काट डाला। अन्त में इस्लाम धर्म

नेता उठ खड़ा हुआ जिसने सिक्खों को इस्लाम धर्म और मुगल साम्राज्य से टक्कर ले सकने योग्य एक बहुत ही कट्टर शत्रु बना दिया। सिक्खों का यह दसवां एवं अन्तिम गरू गुरूगोविन्द सिंह था। 1676 ई. से 1708 ई. के मध्य गुरू तेगबहादुर का एक मात्र पुत्र था। जन्म से पहले उसे विषय में भविष्य वाणी की गयी थी कि वह ऐसा मनुष्य होगा, जिसको कि गीदड़ को शेर और चिड़ियों को बाज बनाने की क्षमता होगी। गुरू गोविन्द सिंह अपने अनुचरों को क्रमशः शिक्षित किया और उसके लिए एक विशिष्ट पहनावा नियुक्त किया। नये संस्कारों से अभिसिंचित कर उसने उन्हे नये आदर्शों के लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया। तब कहीं इस्लाम की खुलेआम निन्दा करने की नीति अपनायी। सतनामियों का विद्रोह औरंगजेब के शासनकाल का दूसरा भीषण विद्रोह नारनौल तथा मेवात के जिलों में हुआ था। सतनामी लोग शान्ति प्रिय धार्मिक थे वे ऐकेश्वरबाद में विश्वास रखते थे तथा कृषि कार्य करते थे। सतनामी अपना सिर, चेहरा तथा भौवें तक मुड़वाते थे। इसी कारण वे मुण्डिया कहलाते थे। विद्रोह का कारण एक सतनामी किसान और लगान वसूल करने वाले एक स्थानीय मुगल अधिकारी के प्यादे में व्यक्तिगत झगड़े के कारण हुआ था। मुगल सैनिकों के अनुचित व्यवहार के कारण सतनामियों को क्रोध आ गया तथा झगड़े

तैयार हो गया। यह बात बहुत जल्द फैल गया उन लोगों में यह अफवाह फैल गयी थी कि एक वृद्ध जादूगरनी ने सतनामियों को गोली के लिए अभेद्य बना दिया है। इस अफवाह से इस क्रिया को अत्यधिक प्रेरणा मिली। स्थानीय सरदारों द्वारा मुगल सेना पर अनेक विजयें प्राप्त कर लेने के कारण उन लोगों का पक्का विश्वास हो गया कि वे गोलियों के लिए अभेद्य हो गये हैं। सतनामी नारनौल शहर तथा जिलों को खूब लूटा और उस पर अधिकार जमा लिया। अतः औरंगजेब विवश होकर रदन्दाज खाँ के नेतृत्व में तोपखाने से सुसज्जित एक सेना भेजनी पड़ी। उसने कागजों पर जादू टोने के मन्त्रों को लिखकर सेना के झंण्डों में बाँध दिया ताकि वे शत्रु के जादू टोने से बच सके। यद्यपि कि सतनामी बहुत साहस से लड़े अन्ततः परास्त हुए जिसमें कम से कम 2000 सतनामी युद्ध भूमि में काम आये तथा शेष आतंकित होकर स्वयं आत्मसमपर्ण कर दिया। औरंगजेब का सिक्खों के बीच संघर्ष का कारण उनकी धार्मिक उत्पीड़न नीति से सिक्ख लोग उत्तेजित होकर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और यह विद्रोह ओग चलकार मुगल साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बना। ने सिक्खों के गुरूद्वारों को नष्ट करने तथा मसन्दों को शहरों से बाहर निकालने की आज्ञा दी। गुरू तेगबहादुर ने औरंगजेब की इसी नीति को

किन्तु उनके अस्वीकार करने के कारण पाँच दिन की घोर यातना के बाद उन्हे मार (दिसम्बर 1675) डाला गया था। औरंगजेब की धर्मान्धनीति तथा जनता को मुसलमान होने के लिए बाध्य करने की उनकी नीति के कारण सिक्खों एवं मुसलमानों में एक असंधेय विश्वास भंग हो गया। इससे तंग आकर तेगबहादु के सुपुत्र गोविन्द सिंह को अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का दृढ़ निश्चय करने पर बाध्य होना पड़ा। उन्होने सिक्खों को सैनिक सम्प्रदाय में परिवर्तित करके उसका नाम खालसा रख दिया। खालसा लोगों को साधारण जनता से भिन्न वस्त्र धारण करने पड़ते थे और उसके साथ 'क' से शुरू होने वाली पांच चीजें– केश, कृपाण, कच्छ, कड़ा और कंघी रखनी पड़ी थी। इसके अलावा उन्हे जाति भेद तथा खानदान के सभी भेद छोड़ने पड़ते थे। खालसा दल में प्रवृष्टि करने के लिए एक नयी विधि निर्दिष्ट की गयी और अनुगामियों को इस बात का विश्वास करा दिया गया कि वे योग्यतम एवं चुने हुए लोग हैं। राणा राजसिंह ने भी टीका अजीत सिंह को देने का अनुरोध किया था। प्रमुख अमीर जैसे खानेजहाँ और अजमेर के सूबेदार शुजात खां भी अजती सिंह को सिंहासन देने के पक्ष में थे। अजीत सिंह को सिंहासन देने के लिए

जजिया कर लगाकर और मारवाड़ में कतिपय मन्दिर को तुड़वाकर औरंगजेब ने राजपूतों की भावनाओं को और भी ठेस पहुचाई। राजपूतों के युद्ध का अन्त उत्तराधिकार के प्रश्न का युद्ध रहा। राजपूतों की मुख्य मांग अजीत सिंह को टीका देने की थी। औरंगजेब की धार्मिक या अन्य नीतियों के विरूद्ध उन्होने आवाज उठायी हो। इसका कोई सबूत हमारे पास नही है। 1681 ई. में राणा अमर सिंह (द्वितीय) के साथ की गयी सन्धि के अनुसार राणा को जजिया देने के बदले चार परगने पुर, माण्डल, माण्डलगढ़ और बिदनूर मुगलों को सौंप देने के लिए बाध्य किया गया। इसके साथ औरंगजेब ने अजीत सिंह को बालिग होने पर मंसल और राज्य प्रदान करने का वायदा किया। शाहजहाँ ने 1636 ई. में बीजापुर सुलतान के साथ एक सन्धि की थी जिसके अन्तर्गत अहमद नगर का एक तिहाई हिस्सा बीजापुर को दे दिया था और यह शर्त लगायी थी कि यदि वह शाहजी को अपनी सेवा में ले ले तो उसे मुगल राज्य की सीमा से दूर नियुक्त करें। औरंगजेब शिवाजी के विरूद्ध बीजापुर का सहयोग चाहता था किन्तु साथ ही यह भी चाहता था कि 1636 में शाहजहाँ द्वारा बीजापुर राज्य को दिया हुआ अहमदनगर राज्य का भाग भी मुगलों को वापस कर दिया जाये। ऐसी परिस्थिति में दक्षिण रियासतों का शिवाजी के विरूद्ध

सहयोग प्राप्त करना असम्भव था। दक्षिण रियासतों और मराठों का सहयोग और साथ ही मराठा शक्ति और राज्य का विस्तार औरंगजेब के सामने सबसे बड़ी राजनीतिक समस्या थी, जिसका कोई हल वह अपने शासन के अन्त तक नही कर पाया। औरंगजेब की दक्षिण की नीति को प्रथम चरण में वह दक्षिण रियासतों के सहयोग द्वारा मराठों की शक्ति को सीमित करने या कुचलने का प्रथम चरण में वह दक्षिण रियासतों के सहयोग द्वारा मराठों की शक्ति को सीमित करने का प्रयास करता है तथा दूसरे चरण में वह दक्षिण रियासतों को हस्तगत करने के बाद मराठों पर अधिपत्य जमाने और उनकी शक्ति को नियंति करने का प्रयास करता हैं शायस्ता खां और जसवन्त सिं द्वारा शिवाजी को कुचलने के असफल अभियानों के बाद मिर्जा राजा जयसिंह ने एक नई नीति प्रतिपादित की। वह बड़ा ही कुटनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। उसने पूरी नाके बन्दी करके शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेर लिया और उसे सन्धि याचना के लिए बाध्य किया। 17वीं शताब्दी में मराठों की शक्ति निरन्तर बढ़ रही थी। अकबर के दक्षिण की ओर अभियान के बाद दक्षिण रियासतों के शासक और मुगल सम्राट दोनों के लिए मराठों सरदारों की मैती और उनके फैजी दोस्तों का अनुप्रयोग महत्त्वपूर्ण हो गया। मलिक अम्बर की मराठा सरदारों के साथ मैत्रीय स्थापित करने की नीति सभी जगह मिलती है। मुगल

सम्राट भी मराठा सरदारों के स्थानीय प्रभाव व मराठों की रण कुशलता को जानते थे। जहाँगी के शासनकाल में उदती राय, तुलजी जादव इत्यादि कई प्रमुख मराठा सरदारों को शाही मन्सल प्रदान की गयी। 1629 ई. में जब शाहजहाँ ने अहमद नगर को समाप्त करने का अभियान प्रारम्भ किया उस समय मुगलों के साथ कोई विशेष लाभ नही था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तराधिकार के प्रश्न की आड़ में औरंगजेब राजपूतों को दबाना और मुगलों की शान्ति का प्रदर्शन करना चाहता था। इसी नीति के कारण राठौर और सिसौदिया राजपूतों के साथ औरंगजेब का समझौता नही हो सका। राजा राजसिंह जजिया के बदले जब्त किये गये परगनों को वापिस प्राप्त करना चाहते थे। निरन्तर संघर्ष के बाद 1698 में औरंगजेब ने अजीत सिंह को टीका तो दे दिया किन्तु जोधपुर शहर को अपने अधीन रखा जिसके कारण राठौरों का संघप्र समाप्त नही हुआ। राठौर और सिसोदिया राजपूतों के साथ इतने लम्बे संघर्ष से न केवल मुगल राज्य में जान एवं माल की हानि हुई मुगल साम्राज्य पर इसका प्रभाव अन्य रूप से भी पड़ा। राजपूतों का संघर्ष एक प्रकार से हिन्दू मुसलमानों का संघर्ष समझा जाने लगा। उसके कारण मराठों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होते तो शायद मराठों के साथ समझौते में भी आसानी होती। बीकानेर के राठौर व कोटा बूंदी के हाड़ा राजपूतों ने मुगलों को सहयोग दिया, किन्तु उनकी

अपनी महत्ता औरंगजेब के दरबार मे प्रभावपूर्ण नही थी। 1665 ई. में जयसिंह ने शिवाजी के साथ पुरन्दर की सन्धि की। उस समय शिवाजी का राजस्व 10 लाख हूण (50 लाख रूपया) का था। जिसमें से आधा पुराने निजाम शाही राज्य के उस भाग में जो 1636 की सन्धि में बीजापुर को दे दिया गया था। सन्धि के अनुसार निजाम शाही राज्य में बीजापुर को दे दिया गया था। सन्धि के अनुसार निजाम शाही राज्य में स्थित 35 किलों में से 23 किले जिनकी आय 4 लाख हूण की थी, मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गये और बाकी 12 किले जिनकी आय 1 लाख हूण थी। शिवाजी को प्रदान कर दी गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. युआन–चाओ–पी–शी, द सिकेट हिस्ट्र ऑफ द मंगोल डायनेस्टी, अनुवाद (भूमिका व व्याख्या के साथ) वेई क्वई सुन, अलीगढ़, 1957

2. बाबर, बाबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद (तुर्की भाषा की मूलप्रति से) ए. एस. बेवरिज, लन्दन, 1922।

3. बायजीत ब्याज, तजकिरा–ए–हुमायूँ व अकबर, सम्पादक एम. हिदायत हुसैन, बिब. इण्डि. 1941।

4. अबुल फजल, अकबरनामा, बिब. इण्डि., कलकत्ता, 1873–87

5. अब्दुल कादिर कदायूंनी, मुन्तखब–उत–तवारीख, सम्पादक अहमद अली तथा लीस, बिब. इण्डि. कलकत्ता, 1865–68।

6. असद बेग कजवीनी, मेमॉयर्स, पाण्डूलिपि, ब्रि. म्य.ए. ओरि. 1996।

7. अब्दुल बाकी निहाबन्दी, मासीर–ए–रहीमी, सम्पादक हिदायत हुसैन, बिब. इण्डि. 1910–31।

8. जहाँगीर, तुजुक–ए–जहाँगीर, सम्पदाक सैयद अहमद खाँ गाजीपुर तथा अलीगढ़, 1863–64।

9. मोतामद, खाँ इकबालनामा–ए–जहाँगीर, लिथोग्राफ–मुद्रित, नवल किशोर, 1870।

म्ये. ओरि. 1903।

11. अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा, सम्पादक मौलवी कबीरउद्दीन और मौलवी अब्दुर्ररहीम, बिब. इण्डि., कलकत्ता, 1867–68।

12. अमीन कजवीनी, बादशहनामा, पाण्डुलिपि, ग्रि. म्यू. ओरि. 173; एड. 20734; मैने रजा पुस्तकालय (रामपुर) की पाण्डुलिपि, जिसकी प्रतिलिपि इतिहास विभाग (ए.एम.यू.) में उपलब्ध है का भी उपयोग किया है।

13. मुहम्मद सालेह कम्बो, अमल–ए–सालेह, सम्पादक जी. यजदानी, बिब. इण्डि., कलकत्ता, 1923–46। (औरंगजेबकालीन मुगल अमीर–वर्ग)

14. मुहम्मद वारिस, बादशाहनामा (अब्दुल हमीद लाहौरी के बादशाहनामा का अग्र भाग) ब्रि. म्यू., एड 6556, ओरि. 1675। इतिहास विभाग, अलीगढ़ की प्रतिलिपि (यह पाण्डुलिपि अन्त में कुछ दोष युक्त है क्योंकि इसमें मनसबदारों की सूची नही दी गयी है)।

15. सिधरी लाल, तुहफा–ए–शाहजहानी, पाण्डुलिपि, इण्ड. ऑ 337।

16. मुहम्मद सादिक खाँ, शाहजहाँनामा, पाण्डुलिपि ब्रि. म्यू. ओरि. 174; ओरि. 1671; लेखक ने अपने बारे मे कुछ भी नही लिखा है और अपना काल्पनिक नाम दिया है। आत्मचरित्र की कृति जो उसने दी है प्रत्यक्ष रूप में गलत है। तो भी लेखक समोलीन था– सम्भवतः

सी ऐसी महत्वपूर्ण सूचनाएं देता है जो कि समकालीन इतिहासिक ग्रन्थों में अनुपलब्ध है।

17. शिवाबुद्दीन तालिश, फतह–ए–एब्रिया, पाण्डुलिपि बोर्ड. ओरि. 589; इस पुस्तक का प्रथम भाग तारीख–ए–मुलुक–ए–आशाम के नाम से प्रकाशित हुआ था। कलकत्ता, 1848।

18. मुहम्मद काजिम, आलमगिरीनामा का संक्षिप्त संग्रह, परन्तु इससे कुछ और तथ्य भी दिये गये हैं जो मुहम्मद काजिम द्वारा नही दिये गये हैं।

19. आकिल खाँ राजी, वकायत–ए–आलमगिरी, सम्पादक जफर हसन, अलीगढ़, 1946; इसकी रचना आकिल खाँ राजी ने की है सन्देहरहित नही है। यद्यपि इस छोटी पुस्तक के कुछ हिस्से रोचक सूचनाओं से परिपूर्ण है। लेकिन कुछ कथन ऐसे हैं, विशेष रूप से प्रारम्भिक भाग के कुछ हिस्सों पर विश्वास करना कठिन है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक ने सुनी हुई बातों के आधार पर रचना की है।

20. शेख मुहम्मद बका, मीरात–अल–आलम, पाण्डुलिपि अब्दुल आलम, 84/314, आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिर्वसिर्टी, अलीगढ़।

21. शेख मुहम्मद बका, मीरात–ए–जहाँनुमा, (पूर्व उल्लेखित ग्रन्थ का पाठान्तर) पाण्डुलिपि, ब्रि म्यू. 1998।

22. अबुल फजल मामूरी, तारीख–ए–औरंगजेब, पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू. ओरि. 1671। सादिक खाँ के शाहज़हाँनामा का अग्र भाग। सादिक खाँ की अबुल फजल मामूरी ने जो आत्म–कथा सम्बन्धी कथन दिये गये हैं, आंशिक रूप से बनावटी प्रतीत होते हैं। इस नाम का कोई अधिकारी अन्स स्रोतों से प्राप्त नही होता है।

23. अल्लाह यार बल्खी, औसाफनामा–ए–आलमगिरी, पाण्डुलिपि, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की लायब्रेरी; ब्राउन कैटॉ. 100, पर्शियन 477; औरंगजेब की गद्य एवं पद्य में प्रशंसा।

24. सात–ए– नूरजात–ए–पादशाह, पाण्डुलिपि, ब्रॉचेट, 1, 703, सप्लीमेन्ट पर्यियन 477।

25. ईसरदास नागर, फतुहात–ए–आलमगिरी, पाण्डुलिपि ब्रि.म्यू., एड. 23884।

26. सुजानराय भण्डारी, खुलासत–उत–तवारीख, सम्पादक जफर हसन, दिल्ली, 1918।

27. भीमसेन, नुस्खा–ए–दिलकुशा, पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू. ओरि. 23।

28. साकी मुस्तैद खाँ, माआसीर–ए–आलमगिरी, बिब. इण्डि. कलकत्ता, 1871।

29. ऐनल्स ऑफ डेल्ही पादशाहत, असमी ऐतिहासिक वृतान्त अनु.एस. के. भुयान, गौहाटी, 1947।

30. अलकाबनामा, पाण्डुलिपि ब्रि. म्यू. ओरि. 1913; इसमें औरंगजेब के

शहजादों व अमीरों की उपाधियां लिखी हैं।

31. राय चतुर्मन सक्सेना, चहार गुलशन, अब्दुस समाल, 292/62, आजाद पुस्तकालय अलीगढ़। इसके कुछ हिस्सों का सर जदुनाथ सरकार ने अनुवाद एवं व्याख्या की है। (इण्डिया ऑफ औरंगजेब, 1901।)

32. कामराज, आजम–अल–हर्ब, पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू. ओरि. 1899।

33. खाफी खाँ, मुन्तखब उल लुबाब, सम्पादक के.डी. अहमद और हेग, बिब. इण्डि., कलकत्ता, 1860–74। खफी खाँ ने अधिकांशतः सादिक खाँ और अबुल फजल मामूरी से नकल की है, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल के विषय में वह कुछ नवीन सूचनाऐं प्रदान करता है।

34. अली मुहम्मद खाँ, मीरात–ए–अहमदी, सम्पादक सैय्यद नवाब अली, बड़ौदा, 1927–28।

35. कामवार खाँ, तजकिरात–उत–सलातीन–ए–चगता, पाण्डुलिपि, लिटन, 40/2 मौलाना आजाद पुस्तकालय अलीगढ़।

36. मिर्जा मुहम्मद बिम रूस्तम, उर्फ मुतमाद खाँ बिम कदब, उर्फ दियानत खाँ, तारीख–ए–मुहम्मदी, दो भाग पाण्डुलिपि, इण्ड. ऑ. 3890। मैने प्रेसकापी के भाग 6 के चौथे खण्ड का भी प्रयोग किया है जो इमतियाज अली अरसी द्वारा सम्पादित है, 1960; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

(ख) प्रशासकीय साहित्य, लेखा–विधि सम्बन्धी नियम–पुस्तिकाएं आदि

38. अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी नवल किशोर सम्पादित, 1882।

39. यूसुफ मीरक मजहर–ए–शाहजहानी, 1634 ई., भाग 2 सम्पादक पीर हिसामुद्दीन राशिदी, कराची, 1961। भाग 2 में सिन्ध का मुगलकाल में 1634 तक का प्रशासनिक इतिहास लिखा गया है।

40. दस्तूर–अल–अमल–ए–शाहजहानी व शुक्काजात–ए–आलमगिरी, पाण्डुलिपि, ब्रि. म्यू., एड. 6588।

41. दस्तूर–अल–अमल–ए–इल्म–ए–नवीसन्दगी, पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू. एड. 6599, पन्ना 134–85।

42. जवाबित–ए–आलमगिरी, पाण्डुलिपि ब्रि. म्यू., ओरि. 1641।

43. खुलासात–उस–सियक, पाण्डुलिपि, सर सुलेमान संग्रह, 410/143, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

44. हिदायतउल्ला बिहारी, हिदायत–उल–वहायइ, पाण्डुलिपि, अब्दुस समाल संग्रह, 379/149, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

45. जगतराय शुजाई कायथ सक्सेना, फरहंग–ए–करदानी, पाण्डुलिपि, अब्दुल सलाम संग्रह, 315/85, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

46. दस्तूर–उल–अमल–ए– पाण्डुलिपि, बोड. फ्रेजर, 86।

लिथोग्रा–मुद्रित, नवल किशोर, लखनऊ, 1879।

48. दस्तूर–अल–अमल–ए–शाहजहानी, औरंगजेब का उत्तरार्ध, पाण्डुलिपि, सर सुलेमान संग्रह 675/53, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

49. हाजी खैरूल्लाह, दस्तूर–ए–जहान कुशा, पाण्डुलिपि, अब्दुल सलाम संग्रह, 328/98, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

50. जवाहरमल बेकस, दस्तूर–अल–अमल, पाण्डुलिपि, सुभानुल्लाह संग्रह 954/4, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

(ग) अभिलेख व संकलन सहित दस्तावेज

51. इलाहाबाद केन्द्रीय रिकार्ड आफिस (उ.प्र.) सुरक्षित अभिलेख। इस संग्रह में फरमान उपहार पत्र बयनामें, हिबानामें, निर्णय आदि और अन्य दूसरे दस्तावेज, जो अनुवाद से सम्बन्धित है, संग्रहित है।कुछ दस्तावेज 16 वी शताब्दी से सम्बन्धित हैं परन्तु अधिकांशतः 17 वीं तथा 18 वीं शताब्दी से। जयपुर रिकार्डस (सीतामऊ प्रतिलिपि) सम्बोधित अखबारात–ए–मुअला यह दिन प्रतिदिन के दरबारी समाचार और आम्बेर के राजा के प्रतिनिधि द्वारा भेजे गये पत्रों का संग्रह है। अखबारात में हमें मुख्यतः दरबार में सार्वजनिक रूप से किये गये कार्यो का ब्योरा मिलता है, उदाहरणार्थ– मनसबदारों की नियुक्ति, पदोन्नित व पदोन्नित अफसरों की नियुक्ति, प्रान्तों समाचारों की प्राप्ति व सैनिक अभियान आक्रमण, सम्राट की किसी

विशेष समस्या के प्रति प्रशासकीय आज्ञा आदि।

52. जयपुर में सुरक्षित प्रपत्र (जो कि इस समय बीकानेर में है)। अलीगढ़ के इतिहास विभाग में कुछ चुने गये दस्तावेजों की प्रतिलिपि उपलब्ध है।

53. सेलेक्टेड डाक्यूमेन्ट्स ऑफ शाहजहान्स रेन, दफ्तर–ए–दीवानी, हैदराबाद, 1950।

54. सेलेक्टेड वाकिया ऑफ द डकेन (1666–71), सम्पादक युसू हुसैन खाँ, हैदराबाद, 1953।

55. सेलेक्टेड डाक्यूमेन्ट्स ऑफ औरंगजेब रेन, सम्पादक युसू हुसैन खाँ, हैदराबाद, 1959।

56. वाकया–ए–अजमेर, 1678–80 ई. असफिया पुस्तकालय, हैदराबाद, फन–ए–तारीख, 2242, अलीगढ़ के इतिहास विभाग में प्रतिलिपि सं. 15 और 16 इस पुस्तकालय में समाचार लेखक की रिपोर्ट संग्रहित है जिसने पहले रणथम्भैर में, तदुपरान्त अजमेर और अनन्तः राजकीय सेना में पादशाह कुला खाँ के अन्तर्गत राजपूत–युद्ध में भाग लिया। रिपोर्टें मुगल प्रशासन और राठौरों के 1679–80 के विद्रोह के बारे में बहुत लाभदायक सूचनाऐं प्रदान करती हैं।

57. अहकाम–ए–आलमगिरी, सम्पादक सर जदुनाथ सरकार। यह एनक्डिोट्स ऑफ औरंगजेब का फारसी में मूल ग्रन्थ है। जिसको जे.एन. सरकार ने ही अनुवाद किया है।

59. इम्पीरियल फरमान्स (1577–1805 ई.) ग्रान्टेड टू द एनसेस्टर्स ऑफ द तिकायत महाराज, हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती में के.एम. झवेरी द्वारा अनुवादित, बम्बई, 1928।

60. सम फरमान्स सनद्स एण्ड परनवाज (1578–1802), के.के. दत्त द्वारा क्रमबद्ध, पटना, 1962 (बिहार में सुरक्षित)।

(घ) पत्रों का संग्रह

61. खान–ए–जहाँ सैयद मुजफ्फर खाँ बारह, अर्जदश्त – हा – ए – मुजफ्फर, 1656 से पूर्व पाण्डुलिपि, एड. 16859। इस संग्रह में अजीज कोका द्वारा जहाँगीर को भेजे गये पत्रों का संग्रह भी है।

62. बालकृष्ण ब्राहान–शेख जलाल हिसारी तथा बालकृष्ण ब्राहान के पत्र जो शाहजहाँ के अन्तिम और औरंगजेब के शासनकाल के प्रारम्भिक भाग में लिखे गये। पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू. एड. 16859।

63. इंशा–ए–जुबदत–उल–अरैज, पाण्डुलिपि जो प्रो. नूरूल हसन, अलीगढ़ के पास है। यह वे पत्र है जो औरंगजेब ने शाहजहाँ को 1652 के कन्धार–अभियान के सन्दर्भ में लिखे थे।

64. औरंगजेब, आदाब–ए–आलमगिरी, पाण्डुलिपि अब्दुस सलाम संग्रह, 326/96, आजाद पुस्तकालय अलीगढ़ वे पत्र जो काबिल खाँ द्वारा औरंगजेब की तरफ से औरंगजेब की गद्दी पर बैठने के पूर्व लिखे गये थे। यह पत्र शाहजहाँ, शाहजहाँ मुहम्मद सुलतान, मुअज्जम

सम्बोधित करके लिखे गये थे। इस संग्रह में मुहम्मद सादिक द्वारा सहजादा अकबर की तरफ से 1680 में राठौर–विद्रोह के समय के पत्र भी प्राप्त हैं।

65. रूक्कात–ए–आलमगिरी, सम्पादक सैयद नजीब अशरफ, आजमगढ़, 1930। इसमें औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ, जहाँनारा बेगम, दारा शिकोह, शाह शुजा, मुराद बख्श और अन्य शहजादों और अमीरों को लिखे गये पत्रों के संग्रह हैं, सम्पादक द्वारा अधिकांश अंश आदाब–ए–आलमगिरी से उद्घृत किया गया है।

66. मुंशी भगतचन्द्र जामी–अल–इंशा, पाण्डुलिपि, एम. ओरि. 1702; जयसिंह के पत्र और वे पत्र जो ईजाद बख्श रसा रियाज–उल–वदाद, 1673–1695 ई. पाण्डुलिपि, ब्रि. म्यू., ओरि. 1725 इसमें स्वयं लेखक के पत्र हैं।

67. भूपतराय, इंशा–ए–रोशन कलाम, पाण्डुलिपि, अब्दुस सलाम संग्रह, 339/109, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़। बैसवाड़ा के फौजदार रदअन्दाड खाँ की तरफ से लिखे गये पत्र।

68. खतूत–ए–शिवाजी, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, पाण्डुलिपि 173। औरंगजेब, रकायम–ए–करायम, पाण्डुलिपि, सर सुलेमान संग्रह, 412/145 मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

69. औरंगजेब, कलीमात–ए–तैयाबात, इनायतुल्ला खाँ द्वारा संग्रहित किये गये पत्र–पाण्डुलिपि, अब्दुस सलाम, 322/92, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

70. औरंगजेब दस्तूर–अल–अमल–अगाही, राजा बहारमल द्वारा 1743 में संग्रहित किये गये पत्र, पाण्डुलिपि अब्दुस संग्रह, 323/93, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

71. लेखराज मंशी, मातीन–अल–इंशा या मुफीद–अल–इंशा, कूच बिहार के फौजदार अली कुली खाँ की ओर से लिखे गये और चम्पतराय द्वारा 1700 ई. में संग्रह किये गये पत्र–पाण्डुलिपि, बोर्ड 679।

72. दुर्र–अल–उलुम, मुंशी गोपालराय सूरजद से सम्बन्धित पत्रों और दस्तावेजों का संग्रह; इसको साहिब राव सूरदज ने 1688–89 ई. में संग्रहित एवं क्रमबद्ध किया। बोर्ड पाण्डुलिपि, वाकर, 104।

73. मालिकजादा, निगारनामा–ए–मुंशी, 1882। अत्यधिक महत्वपूर्ण पत्रों और सरकारी दस्तावेजों का संग्रह। पत्रों का संग्रह, जिसे लिनडेसियाना सूची–पत्र में रिपोर्टस फाम द डकेन कहा गया है, परन्तु वास्तव में इनमें मेवाड़ और मुगल दरबार इत्यादि के बीच का पत्र व्यवहार प्राप्त होता है; जान रिलैण्ड पुस्तकालय, पाण्डुलिपि 353।

74. शाह वली–उल्लाह, के सियासी मकतुबात, के.ए. निजामी द्वारा उर्दू में अनुवाद के साथ सम्पत्ति, अलीगढ़, 1950।

(ड़) जीवन–वृतान्त एवं तजकिरे

75. सूरत सिंह, तजकिरा–ए–हरसु तेली– 1057 हि. में लिखा गया। पाण्डुलिपि– (सम्भवतः लेखक की हस्तलिखित) अलीगढ़ के

इतिहास विभाग के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

76. शेर खाँ लोदी, मीरात–अल–खयाल, लिथोग्राफ अब्दुस सलाम संग्रह 628/49, आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

77. गुलाम अली आजाद, खजाना–ए–अमीराह, बिब इण्डि.।

78. माआसीर–अल–करम, लिथोग्राफ–मुद्रित, हैदराबाद, 1913।

79. शाहनवाज खाँ, माआसीर–उल–उमरा, सम्पादक मौलवी अब्दुर्रहीम, बिब. इण्डि. 1888; 3 भाग में मुगल अमीरों का जीवन का प्रसिद्ध कोष।

केवलराम, तजकिरात–अल–उमरा, पाण्डुलिपि, ब्रि.म्यू., एड. 16703।

(च) फुटकर ग्रन्थ

80. अमीनुद्दीन खाँ, मालूमात–उल–अफाक, नवल किशोर संस्करण, 1870। मुख्यतः इसमे संसार के आश्चर्यों का तथा अद्भुत घटनाओं का वर्णन है; साथ ही इसमें विभिन्न मुगल अधिकारियों के कार्यों का भी वर्णन है। साथ ही इसमें विभिन्न मुगल अधिकारियों के कार्यों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ– दीवान–ए–आला, बख्शी, दरोगा–ए–दाग–ए–तासीर, सद्र–उस–सुदूर व कानूनगो आदि तथा राजस्व तालिक। अन्त में मनसबदारों के वेतन से सम्बन्धित तालिक है।

81. तारीख–ए–अराकान–ए–तैतूरिया, पाण्डुलिपि, ब्रि. म्यू., ओरि. 1772।

82. चन्द्रभान ब्राह्मण, गुलदस्ता, पाण्डुलिपि, सर सुलेमान संग्रह,

666 / 44 आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़।

(छ) कोश

83. अब्दुर रशीद थट्टवी, फरहंग–ए–रशीदी, 1635–54 ई. सम्पादक अबु ताहिर

84. जुल्फिकार अली मुर्शीदाबादी, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल 1875। मुंशी टेकचन्द्र 'बहार' बहार–ए–आजम, 1739–40 ई. नवल किशोर, 1916।

85. आन्नदराम मुखलिस, मीरात अली इस्तीलाह, टेक्निकल शब्दों का परिभाषिक शब्दकोश; 1745 ई. अलीगढ़ के अंजुमन तरक्की उर्दू पुस्तकालय में पाण्डुलिपि।

(ज) यूरोपीय स्रोत

86. अर्ली ट्रेवेल्स इन इण्डिया (1583–1619), सम्पादक डब्लू. फास्टर, लन्दन, 1927।

87. जहाँगीर एण्ड द जेसुइट्स अनुवाद सी.एच. पेनी, लन्दन, 1930।

88. परचाज हिज पिलग्रिस्म, भाग 3 व 4 जेम्स मैकलिहोज एण्ड सन्स, ग्लैसगो।

89. टामस रो, द एम्बैसी ऑफ सर टामस रो, 1615–19, सम्पादक डब्लू. फास्टर, लन्दन, 1926। द इग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1618–69, सम्पादक डब्लू. फास्टर, 13 भाग। ऑक्सफोर्ड, 1906–27, चूँकि भागों की संख्या नही दी गयी है। इसलिए वे वर्षो

के रूप में उद्घुत किये जाते है जो कि प्रत्येक भाग में पीटर मण्डी ट्रेवेल्स, भाग 2 ट्रेवेल्स दन एशिया 1630–34, सम्पादक आर., सी टेम्पिल हकल्यूत सोसायटी, द्वितीय सिरीज लन्दन, 1914।

90. डि लाएट, डिसक्रिप्सन ऑफ इण्डिया, एण्ड फगमेन्ट ऑफ इण्डिया हिस्ट्री, अनुवादक जे.एस. हायलैण्ड, टिप्पणी एस.एन. बनर्जी, द एम्पायर ऑफ द ग्रेट मुगल किताब महल बम्बई, 1928।

91. जीन बापतिसते टैवनियर, ट्रेवेल इन इण्डिया 1640–69, अनुवाद बी. बाल, लन्दन, 1889।

92. फेन्कोइस बर्नियर, ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर 1656–68, अनुवादक ए. कान्सटेबुल, सम्पादक स्मिथ। जीन दे थेवेनाट, द इण्डियन ट्रेवेल्स ऑफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पुराने अनुवाद, सम्पादक एस.एन. सेप, नयी दिल्ली, 1949।

93. द इंग्लिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, (न्यू. सीरीज), सम्पादक सर चार्ल्स फौसेट, आक्सफोर्ड, 1936।

94. जान मार्शल, नोट्स एण्ड आब्जरवेशन आन ईस्ट इण्डिया, सम्पादक एस.ए. खाँ, जान मार्शल इन इण्डिया, लन्दन, 1927।

95. टामस बावरे, ए जागरफिकल एकाउण्ट ऑफ कन्ट्रीज राउण्ड द बे ऑफ बंगाल, 1669–79, सम्पादक आर.पी. टेम्पिल, केम्ब्रिज, 1905।

96. जान फेयर,ए न्यू एकाउण्ट आफ ईश्ट इण्डिया पार्शिया बीईंग नाइन इयर्स ट्रेवेल्स 1627–81, सम्पादक विलियम कुक, हकल्यूत सोसायटी द्वितीय सिरीज लन्दन, 1909, 1912 और 1915।

97. स्ट्रैशम मास्टर, द डायरीज ऑफ स्ट्रैशम मास्टर, 1675–80 सम्पादक आर.सी. टेम्पिल इण्डियन, अनुवादक गेल व मोरलैण्ड केम्ब्रिज, 1925।

98. निकोलाओ मनूची, स्टोरिया डो मोगोर, 1653–1708, अनुवादक डब्लू. इर्विन, इण्डियन टैक्स्ट सिरीज, गर्वनमेन्ट ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1907–1908।

(झ) आधुनिक ग्रन्थ

99. अब्दुल अजीज, द मनसबदारी सिसटम एण्ड द मुगल आर्मी, लाहौर, 1945।

100. मुहम्मद अकबर, द पंजाब अण्डर द मुगल, लाहौर, 1948।

101. सतीश चन्द्र, पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट (1707–40), अलीगढ़, 1959 ।

102. एम.एस. कामेसेरियट, ए हिस्ट्री ऑफ गुजरात, भाग 2(1573 से 1578) ओरिएण्ट लांगमेन्स, 1957 ।

103. डब्लु. क्रूक, द ट्रइब्स एण्ड कास्ट ऑफ द नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेस कलकत्ता, 1896 ।

104. एच.एस. दास, द नोरिस इम्बैसी टू औरंगजेब, कलकत्ता,1959 । जहीरूद्दीन फारूकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, बम्बई,1935 ।

105. ए. फ्यूरर, द मानुमेन्टल एन्टीक्वाटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन इन द नार्थ–वेस्टर्न प्राविन्सेस एण्ड अवध, इलाहाबाद, 1891 ।

106. इरफान हबीब, द अग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्यिा (1556–1707), बम्बई, 1963 ।

107. इब्न हसन, द सेन्ट्रल स्ट्रक्चर ऑफ द मुगल एम्पायर एण्ड इट्स प्रेक्टिलस वर्किंग अप टु द ईयर 1657, ऑक्सफोर्ड,1936 ।

108. डी. इब्बेटसन, पंजाब कास्ट्स, लाहौर,1916 ।

109. विलियम इर्विन, द आर्मी आफ द इण्डियन मुगल्स, लन्दन, 1903 ।

110. आर. पी. खोसला, द मुगल किंगशिप एण्ड द नोबिलिटी, इलाहाबाद, 1934।

111. लेवी, सोसल स्ट्रक्चर ऑफ इस्लाम केम्ब्रिज, 1957 ।

112. डब्लू एच. मोरलैण्ड, इण्डिया ऐट द डेथ आफ अकबर, लन्दन, 1920

113. –एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया, केम्ब्रिज, 1929 ।

114. –फ्राम अकबर टू औरंगजेब, लंन्दन, 1923 ।

115. मौलाना शिबली नुमानी, औरंगजब आलमगीरी पर एक नजर ।

116. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, राजस्थान का इतिहास, भाग 3, अजमेर, 1937।

117. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री आफ जहाँगीर, दूसरा संस्करण, इलहाबाद, 1930।

118. के. कानूनगो, दारा शिकोह, कलकत्ता, 1952।

120. पी. सरन द प्रोवेन्शियल गवर्नमेन्ट ऑफ द मुगल्स, (1526–1658), इलाहाबाद, 1941।

121. जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब (मेनली बेस्ड ऑन परशियन सोर्सेज) 5 भाग, कलकत्ता, 1912, 1916 और 1930।

122. –हाउस ऑफ शिवाजी, 1960।

123. –शिवाजी हिज टाइम्स, चाथा संस्करण, 1948।

124. –स्टडीज इन औरंगजेब रेन, कलकत्ता, 1933।

125. –मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, कलकत्ता, 1920।

126. जगदीश नारायण सरकार, द लाइफ ऑफ मीर जुमला, कलकत्ता, 1951।

127. बी.पी. सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ डेलही, इलाहाबाद, 1958।

128. एस.आर. शर्मा द रैलिजर्स पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पारर्स, आक्सफोर्ड, 1940; द्वितीय संस्करण, बम्बई, 1962।

129. कविराज श्यामलदास, वीर विनोद, 4 भाग। हिन्दी में यह मेवाड़ का इतिहास है जो मुख्य रूप से फारसी और राजस्थानी स्रोतों पर आधारित है और मुगल शासकों और राजकुमारों द्वारा उदयपुर के राजाओं को जो फरमान व निशान दिये गये थे उनका मूल प्रायः

131. वी.ए. स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल (1542–1605), दूसरा संस्करण, आक्सफोर्ड, 1919।

132. जेम्स टॉड, एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, पॉपुलर एडिशन, 2 भाग, लन्दन, 1914।

133. आर.पी. त्रिपाठी, सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, 1936।

134. –राइज एण्ड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर, इलाहाबाद, 1956।

135. एच.एच. विल्सन, ए ग्लॉसरी ऑफ जुडिशियल एण्ड रेवेन्यू टर्मस् एण्ड सी. ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, लन्दन, 1875।